शहीदेआजम की

जेल नोटबुक

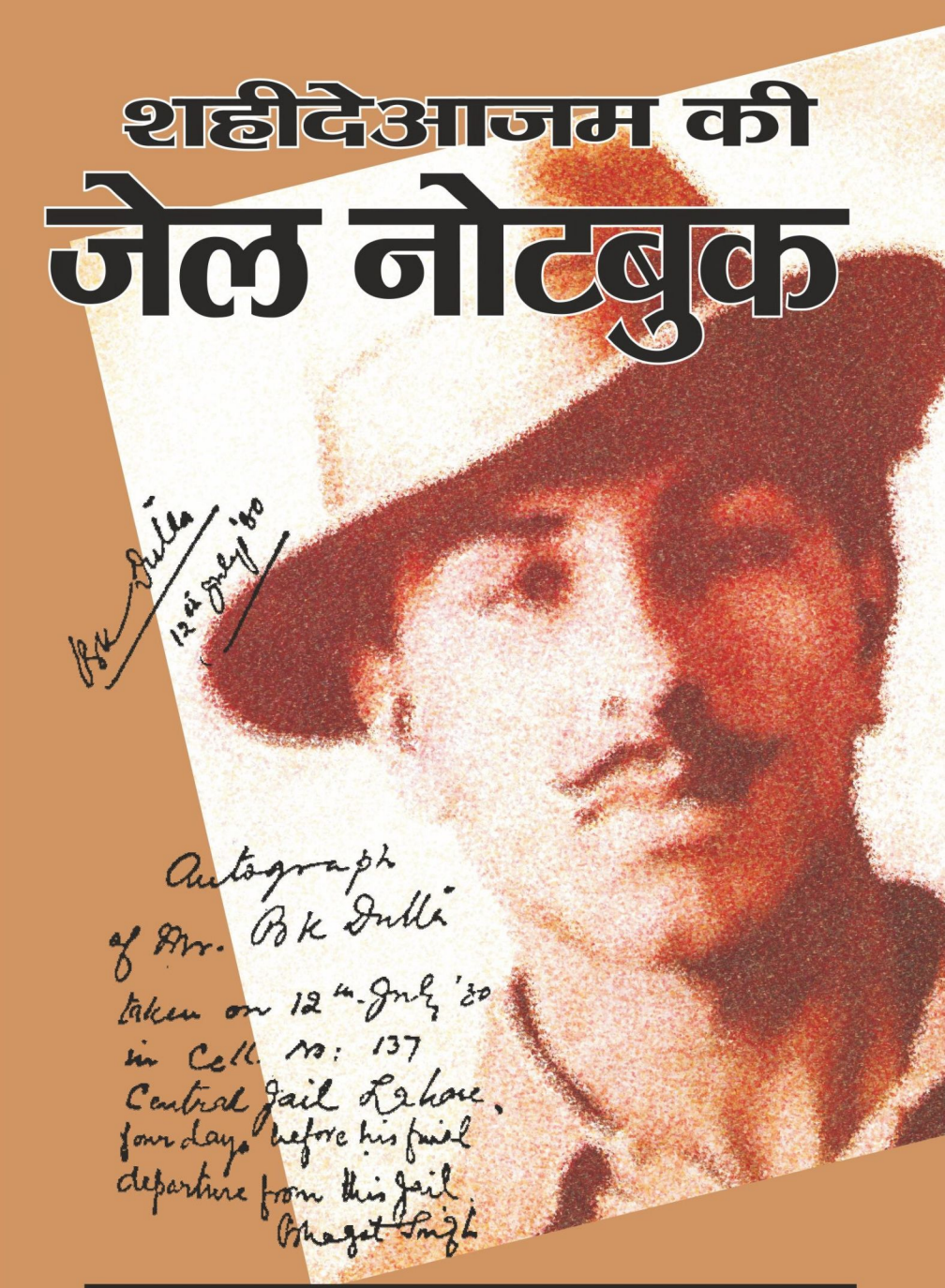

भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज

भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज

शहीदे आजम भगतसिंह की जेल नोटबुक

ये दस्तावेज राहुल फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित किया गया है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाया जा रहा है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से सम्पर्क कर सकते हैं या फिर अमेजन से खरीद सकते हैं।

अमेजन लिंक : https://www.amazon.in/dp/8187728922

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ में
- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक

भगतसिंह द्वारा जेल में (1929–31)
अध्ययन के दौरान लिये गये नोट्स और उद्धरण

अनुवाद
विश्वनाथ मिश्र

सम्पादन
सत्यम वर्मा

राहुल फ़ाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN 978-81-87728-92-4

मूल्य : रु. 65.00

पहला संस्करण : अप्रैल, 1999
छठा पुनर्मुद्रण : नवम्बर, 2005
दूसरा संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण : जनवरी 2009

प्रकाशक : **राहुल फ़ाउण्डेशन**
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ–226 006

आवरण : **रामबाबू**

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस–28, शक्तिनगर, लखनऊ

Shaheed-e-Azam ki Jail Notebook
Translated by ***Vishwanath Mishra***
Edited by ***Satyam Varma***

क्रान्ति परिश्रमी विचारकों और परिश्रमी
कार्यकर्ताओं की पैदावार होती है। दुर्भाग्य से
भारतीय क्रान्ति का बौद्धिक पक्ष हमेशा दुर्बल
रहा है। इसलिए क्रान्ति की आवश्यक चीज़ों और
किये गये काम के प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया
गया। इसलिए एक क्रान्तिकारी को
अध्ययन–मनन को अपनी पवित्र ज़िम्मेदारी
बना लेना चाहिए।

– भगतसिंह

भूमिका

'शहीदेआज़म की जेल नोटबुक' को हिन्दी पाठकों के हाथों में देते हुए हमें मिश्रित अनुभूति हो रही है। इतिहास की इस अनमोल धरोहर को आप तक पहुँचाकर हम गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं, पर साथ ही इसमें हुई देरी की कचोट भी है।

भारतीय इतिहास के इस दुर्लभ दस्तावेज़ का महत्त्व सिर्फ़ इसकी ऐतिहासिकता में ही नहीं है। भगतसिंह के अधूरे सपने को पूरा करने वाली भारतीय क्रान्ति आज एक ऐसे पड़ाव पर है जहाँ से नये, प्रचण्ड वेग से आगे बढ़ने के लिए इसके सिपाहियों को 'इन्क़लाब की तलवार को विचारों की सान पर' नयी धार देनी है। यह नोटबुक उन सबके लिए विचारों की रोशनी से दमकता एक प्रेरणापुंज है जो इस विरासत को आगे बढ़ाने का जज़्बा रखते हैं।

आज जब भारतीय क्रान्ति सामने उपस्थित सवालों-चुनौतियों से जूझ रही है, युवा क्रान्तिकारियों की नयी पीढ़ी के कन्धों पर रास्ता निकालने और उस पर बढ़ने का कार्यभार है तथा एक नये सर्वहारा नवजागरण और प्रबोधन का काम इतिहास के एजेण्डे पर है, तो इस नोटबुक को पढ़ते हुए हमारी आँखों के सामने बार-बार उस नौजवान की छवि उभरती है जो फाँसी के फन्दे के साये में बैठकर भारतीय इन्क़लाब के रास्ते की सही समझ हासिल करने और उसे लोगों तक पहुँचाने के लिए आख़िरी पल तक अध्ययन-मनन और लेखन में जुटा रहा।

जेल में भगतसिंह ने चार पुस्तकें लिखी थीं। हो सकता है ये नोट्स इन पुस्तकों की तैयारी में लिये गये हों। चारों पाण्डुलिपियाँ आज नष्ट हो चुकी हैं। लेकिन आज भी उनके बारे में न तो कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है और न ही किसी ने भारतीय इतिहास के इस अँधेरे पक्ष पर शोध करने की ज़रूरत समझी है।

नोट बुक के महान ऐतिहासिक महत्त्व और आज इसकी विशेष प्रासंगिकता को रेखांकित करने के लिए हमने आलोक रंजन और एल. वी. मित्रोखिन के दो लेख भी शामिल किये हैं। हम चाहेंगे कि आप नोटबुक से पहले इन लेखों को अवश्य पढ़ें। नोटबुक को सही परिप्रेक्ष्य और पृष्ठभूमि में समझने में इन लेखों से काफ़ी मदद मिलेगी। भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के वैचारिक विकास पर हमने भगतसिंह के साथी शिववर्मा का विस्तृत लेख भी शामिल किया है।

नोटबुक की प्रस्तुति के बारे में कुछ बातें

हमारी इच्छा थी कि जहाँ तक सम्भव हो हस्तलिखित नोटबुक की मूल शक्ल बनी रहे, भगतसिंह ने जिस तरीक़े से नोट्स लिये हैं उन्हें लगभग उसी ढंग से प्रस्तुत किया जाये। लेकिन किताब की शक्ल में प्रस्तुत करने के लिए कुछ बदलाव करने पड़े हैं।

पूरी नोटबुक भगतसिंह के छोटे अक्षरों वाली लिखावट में लिखी गयी है। ज़्यादातर नोट्स के भगतसिंह ने छोटे पर सटीक और सारगर्भित शीर्षक दिये हैं। अनेक शीर्षक हाशिये पर भी दिये गये हैं। कहीं-कहीं कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यों या वाक्यांशों को भी हाशिये में लिखा गया है।

– हमने सभी शीर्षकों तथा हाशिये पर अंकित वाक्यों को टेक्स्ट के साथ ही रखा है पर भगतसिंह द्वारा दिये गये महत्त्व के अनुसार उन्हें छोटे या बड़े अक्षरों में दिया गया है।

– भगतसिंह द्वारा रेखांकित किये गये हिस्सों को मोटे अक्षरों में दिया गया है।

– भगतसिंह ने कई जगहों पर कुछ हिस्सों पर अतिरिक्त बल देने के लिए बायीं ओर खड़ी लकीर खींची है। इसे पुस्तक में ऐसे ही दिखाया गया है।

नोटबुक में आये अधिकांश सन्दर्भों की जानकारी हमने पाठकों को देने की कोशिश की है, फिर भी कुछ सन्दर्भ अज्ञात रह गये हैं। पाठकों से अनुरोध है कि यदि उन्हें इस बारे में जानकारी हो तो हमें बतायें। इस सम्बन्ध में हमें श्री भूपेन्द्र हूजा के सम्पादन में 'इण्डियन बुक क्रॉनिकल' द्वारा सर्वप्रथम अंग्रेज़ी में प्रकाशित A Martyr's Notebook से काफ़ी मदद मिली जिसके लिए हम उनका आभार व्यक्त करते हैं।

सत्यम
नई दिल्ली

अनुक्रम

भगतसिंह की जेल नोटबुक जो शहादत के
तिरसठ वर्षों बाद छप सकी / **आलोक रंजन** 11

भगतसिंह की जेल नोटबुक : एक महान विचारयात्रा का
दुर्लभ साक्ष्य / **एल. वी. मित्रोखिन** 19

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक 37

परिशिष्ट – एक
क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास / **शिव वर्मा** 163

परिशिष्ट – दो
जयदेव के नाम पत्र 199

भगतसिंह की जेल नोटबुक जो शहादत के तिरसठ वर्षों बाद छप सकी

आलोक रंजन

रूसी विद्वान **एल.वी. मित्रोखिन** वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1981 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'Lenin and India'** में पहली बार, एक अलग अध्याय में, भगतसिंह की दुर्लभ जेल नोटबुक से विस्तृत हवाले देते हुए उनके द्वारा अन्तिम दिनों में किये गये क्रान्तिकारी और मार्क्सवादी साहित्य के गहन अध्ययन पर प्रकाश डाला था और उन योजक-सूत्रों को संयोजित करने की कोशिश की थी, जो भगतसिंह के चिन्तन के संघटक अवयव थे।

भगतसिंह और उनके साथियों ने 1928 में **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** की स्थापना के समय ही समाजवाद को लक्ष्य और सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया था, पर कमोबेश 1929 के मध्य तक समाजवाद और मार्क्सवाद के प्रति उनका लगाव भावात्मक ही था, बुद्धिसंगत नहीं। भगतसिंह के सहयोगी क्रान्तिकारी **शिववर्मा** सहित अनेक इतिहासकारों ने इस बात का उल्लेख किया है कि 1929 में गिरफ़्तारी के बाद एच.एस.आर.ए. के युवा क्रान्तिकारियों के एक धड़े ने, और विशेषकर भगतसिंह ने जेल में बड़ी मुश्किलों से जुटाकर, क्रान्तिकारी साहित्य और मार्क्सवाद का गहन अध्ययन और उस पर विचार-विमर्श किया। इसके परिणामस्वरूप वे अराजकतावादी और मध्यवर्गीय दुस्साहसवाद को छोड़कर तेज़ी से सर्वहारा क्रान्ति के मार्क्सवादी सिद्धान्तों को अपनाने की दिशा में आगे बढ़े। वैयक्तिक शौर्य एवं बलिदान से जनता को जगाने और आतंकवादी रणनीति द्वारा उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष का रास्ता छोड़कर उन्होंने अपने अतीत की आलोचना व समाहार किया तथा इस बात पर बल दिया कि क्रान्ति की मुख्य शक्ति मज़दूर और किसान हैं, साम्राज्यवाद को केवल सर्वहारा क्रान्ति द्वारा ही शिकस्त दी जा सकती है, मुख्यत: पेशेवर क्रान्तिकारियों पर

आधारित सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के मार्गदर्शन में व्यापक मेहनतकश जनता व मध्यवर्ग के जनसंगठन खड़ा करके जनान्दोलन का मार्ग अपनाया जाना चाहिए और यह कि, इसके बाद ही सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता पलटकर सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना की जा सकती है। एच.एस.आर.ए. के सिद्धान्तकारों में भगतसिंह सर्वोपरि थे और उनकी पूरी विचार-यात्रा को 1929 से मार्च 1931 तक (यानी फाँसी चढ़ने तक) के उनके दस्तावेज़ों, लेखों, पत्रों और वक्तव्यों में देखा जा सकता है। भगतसिंह के सर्वोन्नत विचार फ़रवरी 1931 के दो भाग के उस मसविदा दस्तावेज़ में देखने को मिलते हैं जो 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' नाम से 'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़' (सं. - जगमोहन सिंह, चमनलाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली) में संकलित है।

भगतसिंह की जेल नोटबुक मिलने के बाद भगतसिंह के चिन्तक व्यक्तित्व की व्यापकता और गहराई पर और अधिक स्पष्ट रोशनी पड़ी है, उनकी विकास की प्रक्रिया समझने में मदद मिली है और यह सच्चाई और अधिक पुष्ट हुई है कि भगतसिंह ने अपने अन्तिम दिनों में, सुव्यवस्थित एवं गहन अध्ययन के बाद बुद्धिसंगत ढंग से मार्क्सवाद को अपना मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाया था। एकबारगी तो यह बात अविश्वसनीय-सी लगती है कि क्रान्तिकारी जीवन और जेल की बीहड़ कठिनाइयों में भगतसिंह ने ब्रिटिश सेंसरशिप की तमाम दिक़्क़तों के बावजूद पुस्तकें जुटाकर इतना गहन और व्यापक अध्ययन कर डाला। महज 23 वर्ष की छोटी-सी उम्र में चिन्तन का जो धरातल उन्होंने हासिल कर लिया था, वह उनके युगद्रष्टा युगपुरुष होने का ही प्रमाण था। ऐसे महान चिन्तक ही इतिहास की दिशा बदलने और गति तेज़ करने का माद्दा रखते हैं। भगतसिंह की शहादत भारतीय जनता को आज भी क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह प्रेरणा देती है, पर यह भी सच है कि उनकी फाँसी ने इतिहास की दिशा बदल दी। यह सोचना ग़लत नहीं है कि भगतसिंह को 23 वर्ष की अल्पायु में यदि फाँसी नहीं हुई होती तो राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का इतिहास और भारतीय सर्वहारा क्रान्ति का इतिहास शायद कुछ और ही ढंग से लिखा जाता।

बहरहाल, इतिहास की उतनी ही दुखद विडम्बना यह भी है कि आज भी इस देश के शिक्षित लोगों का एक बड़ा हिस्सा भगतसिंह को एक महान वीर तो मानता है, पर यह नहीं जानता कि 23 वर्ष का वह युवा एक महान चिन्तक भी था। राजनीतिक आज़ादी मिलने के पचास वर्षों बाद भी सम्पूर्ण गाँधी वाङमय, नेहरू वाङमय से लेकर सभी राष्ट्रपतियों के अनुष्ठानिक भाषणों के विशद्ग्रन्थ तक प्रकाशित होते रहे पर किसी भी सरकार ने भगतसिंह और उनके साथियों के सभी दस्तावेज़ों को अभिलेखागार, पत्र-पत्रिकाओं और व्यक्तिगत संग्रहों से निकालकर छापने की सुध नहीं ली।

छिटपुट पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, **अजय कुमार घोष, शिव वर्मा, सोहन सिंह जोश, जितेन्द्र नाथ सान्याल** आदि भगतसिंह के समकालीन क्रान्तिकारियों की विभिन्न पुस्तकों-लेखों, भगतसिंह के अनुज की पुत्री **वीरेन्द्र सिन्धु** की पुस्तकों तथा **गोपाल ठाकुर, जी. देवल, मन्मथनाथ गुप्त, बिपन चन्द्र, हंसराज रहबर, कमलेश मोहन** आदि इतिहासकारों-लेखकों के विभिन्न लेखों एवं पुस्तकों से भगतसिंह के विचारक व्यक्तित्व पर रोशनी अवश्य पड़ती रही है, पर बहुसंख्यक शिक्षित आबादी भी इससे बहुत कम ही परिचित रही है। भगतसिंह के कुछ ऐतिहासिक बयानों-दस्तावेज़ों को सत्तर के दशक के पूर्वार्द्ध में दिल्ली से कुछ क्रान्तिकारी वामपन्थी संस्कृतिकर्मियों की पहल पर प्रकाशित होने वाली **'मुक्ति'** पत्रिका ने प्रकाशित किया। इसके बाद कई पत्रिकाओं ने और क्रान्तिकारी ग्रुपों ने पुस्तिकाओं के रूप में भगतसिंह के चुने हुए कुछ लेखों को छापने का काम किया। भगतसिंह के साथी शिववर्मा ने उनके चुनिन्दा लेखों का संकलन अंग्रेज़ी और हिन्दी में प्रकाशित किया।

सबसे पहले **जगमोहन सिंह** (भगतसिंह की बहन के पुत्र) और **चमनलाल** ने भगतसिंह और उनके साथियों के अधिकांश वक्तव्यों, लेखों, पत्रों और दस्तावेज़ों को एक जगह संकलित किया (हालाँकि यह संकलन भी सम्पूर्ण नहीं है) जो 1986 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

इस तथ्य की चर्चा भगतसिंह के कई साथियों और इतिहासविदों ने की है कि जेल में उन्होंने चार और पुस्तकें लिखी थीं : 'आत्मकथा', 'समाजवाद का आदर्श', 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन' तथा 'मृत्यु के द्वार पर'। दुर्भाग्यवश इनकी पाण्डुलिपियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं और माना यही जाता है कि वे नष्ट हो चुकी हैं। हालाँकि इनके ग़ायब होने की कहानी भी रहस्यमय है और इसमें भी किसी साजिश से पूरी तरह इन्कार नहीं किया जा सकता। बहरहाल, यह भारतीय इतिहास के सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण प्रसंगों में से एक है।

अब हम भगतसिंह की उस ऐतिहासिक जेल नोटबुक की चर्चा पर आते हैं जो पहली बार 1993 में जयपुर से 'इण्डियन बुक क्रॉनिकल' से **'A Martyrs Notebook'** नाम से प्रकाशित हुई। इसका सम्पादन **भूपेन्द्र हूजा** ने किया था। इस डायरी के प्रारम्भ में दी गयी परिचयात्मक टिप्पणी के अनुसार, इसकी हस्तलिखित/डुप्लीकेटेड प्रतिलिपि एक पैकेट के रूप में पहली बार **जी.बी. कुमार हूजा** (*गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के तत्कालीन कुलपति*) को 1981 में गुरुकुल, इन्द्रप्रस्थ के दौरे के समय **स्वामी शक्तिवेश** से मिली थी।

पर इससे भी पहले यह डायरी 1977 में एल.वी. मित्रोखिन ने फ़रीदाबाद में रह रहे भगतसिंह के भाई **कुलबीर सिंह** के पास देखी थी और उसका विस्तृत अध्ययन करके एक लेख लिखा था, जो 1981 में अंग्रेज़ी में प्रकाशित उनकी

पुस्तक 'Lenin and India' में एक अध्याय के रूप में शामिल किया गया। पुनः 1990 में इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी प्रगति प्रकाशन, मास्को से **'लेनिन और भारत'** नाम से प्रकाशित हुआ।

अब तक इस डायरी के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी को हम यहाँ सिलसिलेवार प्रस्तुत कर रहे हैं।

1968 में भारतीय इतिहासकार **जी. देवल** ने **'पीपुल्स पाथ'** पत्रिका में भगतसिंह पर एक लेख लिखा था जिसमें 200 पन्नों की एक कापी का ज़िक्र किया गया है। उक्त कापी में पूँजीवाद, समाजवाद, राज्य की उत्पत्ति, मार्क्सवाद, कम्युनिज़्म, धर्म, दर्शन, क्रान्तियों के इतिहास आदि पर विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन के दौरान भगतसिंह द्वारा जेल में लिये गये नोट्स हैं। यह नोटबुक भगतसिंह की फाँसी के बाद उनके परिवार वालों को सौंप दी गयी थी। देवल ने इसे फ़रीदाबाद में रह रहे भगतसिंह के छोटे भाई कुलबीर सिंह के पास देखा था और अध्ययन करके नोट्स लिये थे। अपने लेख में देवल ने इस बात पर ज़ोर दिया कि यह डायरी प्रकाशित की जानी चाहिए, पर ऐसा हुआ नहीं।

उक्त डायरी की जानकारी होने पर 1977 में रूसी विद्वान मित्रोखिन भारत आये और कुलबीर सिंह के हवाले से उक्त डायरी के विस्तृत अध्ययन के बाद एक लेख लिखा जो उनकी पुस्तक 'Lenin and India' का एक अध्याय बना।

हमें उपलब्ध जानकारी के अनुसार, 1979 के बाद इतिहास के कई शोधार्थियों ने 404 पृष्ठों की उक्त जेल नोटबुक की एक फ़ोटो प्रतिलिपि तीन मूर्ति भवन स्थित जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम व लायब्रेरी में भी देखी-पढ़ी। पर इस पर अलग से कोई शोध निबन्ध कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ।

गुरुकुल कांगड़ी के तत्कालीन कुलपति जी.बी. कुमार हूजा 1981 में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली से 20 किलोमीटर दक्षिण तुगलकाबाद रेलवे स्टेशन के निकट) के दौरे पर गये थे। वहाँ संस्था के तत्कालीन मुख्य अधिष्ठाता स्वामी शक्तिवेश ने गुरुकुल के 'हॉल ऑफ़ फ़ेम' के तहख़ाने में सुरक्षित इस ऐतिहासिक धरोहर की एक हस्तलिखित/डुप्लीकेटेड प्रतिलिपि दिखलायी, जिसे जी.बी. कुमार हूजा ने कुछ दिनों के लिए माँग लिया। बाद में स्वामी शक्तिवेश की हत्या हो गयी और उक्त डायरी (प्रतिलिपि) हूजा जी के पास ही रह गयी।

1989 में भगतसिंह की शहादत के दिन 23 मार्च को जयपुर में कुछ बुद्धिजीवियों ने **'हिन्दोस्तानी मंच'** का गठन किया। उसी की प्रारम्भिक बैठकों में जी.बी. कुमार हूजा ने भगतसिंह की जेल डायरी की जानकारी दी और 'हिन्दोस्तानी मंच' ने इसे प्रकाशित करने का निश्चय किया।

'इण्डियन बुक क्रॉनिकल' पत्रिका (जयपुर) के सम्पादक भूपेन्द्र हूजा को इस परियोजना के सम्पादन की ज़िम्मेदारी दी गयी और 'हिन्दोस्तानी मंच' के महासचिव

सरदार ओबेराय, प्रो. आर.पी. भटनागर और **डॉ. आर.सी. भारतीय** ने उनके सहयोगी की भूमिका निभायी। दुर्भाग्यवश, अर्थाभाव के कारण यह योजना खटाई में पड़ गयी।

इसी दौरान डॉ. आर.सी. भारतीय को उक्त जेल नोटबुक की एक और टाइप की हुई प्रतिलिपि प्राप्त हुई जो एक स्थानीय विद्वान डॉ. प्रकाश चतुर्वेदी मास्को अभिलेखागार से फ़ोटो-प्रतिलिपि कराकर लाये थे। 'मास्को प्रति' और 'गुरुकुल प्रति' शब्दशः एक-दूसरे से मिल रहे थे।

1991 में भूपेन्द्र हूजा ने नोटबुक को किश्तों में अपनी पत्रिका 'इण्डियन बुक क्रॉनिकल' में प्रकाशित करना शुरू किया। भगतसिंह की जेल नोटबुक इस रूप में पहली बार व्यापक पाठक समुदाय तक पहुँची। डॉ. चमनलाल ने भी भूपेन्द्र हूजा को सूचित किया कि उक्त नोटबुक की एक प्रतिलिपि उन्होंने भी नेहरू म्यूजियम लायब्रेरी, नई दिल्ली में देखी थी।

इस तरह भूपेन्द्र हूजा व उनके सहयोगियों की नज़र में उक्त जेल नोटबुक की आधिकारिकता और अधिक पुष्ट हुई। पहली बार 1994 में उक्त जेल नोटबुक 'इण्डियन बुक क्रॉनिकल' की ओर से ही भूपेन्द्र हूजा और जी.बी. कुमार हूजा (बलभद्र भारती) की भूमिकाओं के साथ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। उक्त दोनों भूमिकाओं से भी स्पष्ट है कि जी.बी.कुमार हूजा और भूपेन्द्र हूजा को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि उक्त डायरी की मूल प्रति भगतसिंह के भाई कुलबीर सिंह के पास फ़रीदाबाद में भी मौजूद है। उन्हें जी. देवल के उस लेख की भी सम्भवतः जानकारी नहीं थी जिन्होंने सबसे पहले 1968 में यह तथ्य उद्घाटित किया था, न ही उन्हें मित्रोखिन का वह लेख (1981) ही मिला था जो उक्त डायरी के विशद अध्ययन के बाद लिखा गया था।

बहरहाल, मित्रोखिन ने कुलबीर सिंह के पास उपलब्ध नोटबुक/डायरी से लिये गये हवालों पर जो पृष्ठ अंकित किये हैं, उन्हें देखने से स्पष्ट हो जाता है कि जी. बी. कुमार हूजा को प्राप्त 'गुरुकुल टेक्स्ट' उक्त मूल डायरी की ही डुप्लीकेट/हस्तलिखित प्रतिलिपि है।

ऐसा सम्भव है कि डॉ. प्रकाश चतुर्वेदी ने डायरी/नोटबुक की जो प्रतिलिपि मास्को अभिलेखागार में देखी थी, वह मित्रोखिन ही भारत से ले गये हों। या यह भी हो सकता है कि किसी और रूसी विद्वान ने भी डायरी का अध्ययन किया हो।

बहरहाल, इन तथ्यों से डायरी की आधिकारिकता ही और अधिक पुष्ट होती है।

'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़' पुस्तक के सम्पादक-द्वय जगमोहन सिंह और चमनलाल ने भी पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका (23

मार्च '89) में लिखा है : *"भगतसिंह की जेल में लिखित 404 पृष्ठों की डायरी, जिसमें महत्त्वपूर्ण राजनीतिक व दार्शनिक नोट्स हैं, अब भी सामान्य पाठकों की पहुँच से बाहर है, हालाँकि इसकी फ़ोटो प्रति तीन मूर्ति स्थित जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम व लायब्रेरी में सुरक्षित है। इस पर क्या कहा जा सकता है, पाठक स्वयं ही सोचें।"*

इस टिप्पणी से ऐसा लगता है कि जगमोहन सिंह और चमनलाल को भी यह तथ्य ज्ञात नहीं था कि भगतसिंह की मूल जेल नोटबुक उनके भाई कुलबीर सिंह के पास मौजूद है, जिसका अध्ययन 1968 में जी. देवल ने और 1977 में मित्रोखिन ने किया था। यह विशेष आश्चर्य की बात इसलिए भी है क्योंकि जगमोहन सिंह भी स्वयं भगतसिंह के परिवार के सदस्य हैं। वे भगतसिंह की बहन बीबी अमर कौर के पुत्र हैं। भगतसिंह के दूसरे भाई कुलतार सिंह की पुत्री वीरेन्द्र सिन्धू ने भी भगतसिंह पर दो पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने भी इसका उल्लेख नहीं किया है कि भगतसिंह की जेल नोटबुक उनके परिवार के ही एक सदस्य के पास मौजूद है। यदि इन परिवार-जनों को भी यह तथ्य नहीं पता था तो इस बारे में हमें कुछ नहीं कहना। न ही इसकी अन्तर्कथा को जानने में हमारी कोई रुचि है।

यह सवाल हम यहाँ इसलिए उठा रहे हैं कि यह भारत में इतिहास की एक गम्भीर समस्या है। आज़ाद भारत की कांग्रेसी सरकार ही नहीं, किसी भी पूँजीवादी संसदमार्गी दल से हम यह अपेक्षा नहीं रखते कि उनकी सरकारें भगतसिंह के विचारों को जनता तक पहुँचाने का काम करेंगी। उनका बस चलता तो वे भगतसिंह की स्मृति तक को दफ़्न कर देतीं। पर यह उनके बस के बाहर की बात है।

लेकिन शहीदे-आजम भगतसिंह के परिवार-जनों का उनकी वैचारिक विरासत के बारे में जो रुख रहा, उसके बारे में क्या कहा जाये? सीधा सवाल यह है कि कुलबीर सिंह के पास यदि भगतसिंह की जेल नोटबुक मौजूद थी, तो उन्होंने उसे भारतीय जनता तक पहुँचाने के लिए क्या कोशिश की? उन्होंने अख़बारों में, इतिहासकारों को पत्र लिखकर इसे छपाने और जनता तक पहुँचाने की कोई कोशिश क्यों नहीं की? क्या इसे प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक नहीं मिलते? या जनता से स्रोत-संसाधन नहीं जुटते? हमारी जानकारी के अनुसार, शहीदेआजम के परिवार के लोग स्वयं भी इतने विपन्न नहीं हैं। उन्हें यदि भगतसिंह के आदर्शों से प्यार होता और उनके विचारों को जन-जन तक पहुँचाने की चिन्ता होती तो वे उक्त डायरी स्वयं छपवा सकते थे। आश्चर्य तो तब होता है जब लगता है कि जेल नोटबुक के कुलबीर सिंह के पास उपलब्ध होने का तथ्य स्वयं जगमोहन सिंह या वीरेन्द्र सिन्धू को ही नहीं पता था। क्या यह एक शर्मनाक विडम्बना नहीं है कि भगतसिंह की जेल नोटबुक पर आधारित पहला विस्तृत शोध-निबन्ध 1981 में एक रूसी विद्वान मित्रोखिन की पुस्तक में संकलित होकर सामने आया? वैसे इस काहिली और

गैरज़िम्मेदारी के लिए उन इतिहासकारों को भी माफ़ नहीं किया जा सकता जो इतिहास को केवल प्रोफ़ेसरी का जरिया बनाये हुए हैं और इतिहास की बहुमूल्य विरासत को भी जनता तक पहुँचाने की जिन्हें रत्तीभर चिन्ता नहीं है। और भला क्यों हो? वे इतिहास पढ़ाने वाले मुदर्रिस हैं, इतिहास बनाने से उनका भला क्या सरोकार?

जहाँ तक भगतसिंह के परिवार के उन सदस्यों का सवाल है, जिन्होंने आज़ादी के इतने वर्षों बाद तक इतिहास की एक बहुमूल्य धरोहर को पारिवारिक सम्पत्ति की तरह दाबे रखा और उसे जनता तक पहुँचाने की कोई कोशिश नहीं की; वे भी अपनी इस करनी के चलते इतिहास में अपना नाम दर्ज करा चुके हैं। वैसे हमारे देश में यह कोई नई बात नहीं है। क्रान्तिकारी राजनीति और साहित्य में ऐसे कई उदाहरण हैं कि महान विभूतियों के रक्त-सम्बन्धी उत्तराधिकारी उनसे जुड़े होने के नाते इज़्ज़त तो खूब पा रहे हैं पर उनके आदर्शों और सपनों से उन्हें कुछ भी नहीं लेना-देना। उनकी रुचि या तो सम्मान-प्रतिष्ठा-सुविधा में है या फिर रायल्टी की मोटी रक़म में। भगतसिंह हों या राहुल सांकृत्यायन, उनका कृतित्व आज पूरे राष्ट्र की, पूरी जनता की या उनके वैचारिक उत्तराधिकारियों की धरोहर न बनकर परिवार-जनों की निजी सम्पत्ति बन गयी है। क्रान्तिकारियों के तमाम बेटे-भतीजे-भांजे आज क्रान्तिकारियों के रक्त-सम्बन्धी होने के नाते स्वाभाविक तौर पर जनता से इज़्ज़त पाते हैं और सीना फुलाते हैं। पर उन्हें इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं कि क्या उन क्रान्तिकारियों के सपने पूरे हुए? इसके विपरीत वे उसी सत्ता से सुविधाएँ लेने और उन्हीं राजनीतिक दलों की राजनीति करने तक का काम करते हैं, जिन्होंने क्रान्तिकारियों के सपनों के साथ विश्वासघात किया। क्रान्तिकारियों के ऐसे वारिस भी क्या अपने महान पूर्वजों के आदर्शों का व्यापार नहीं कर रहे हैं?

बहरहाल, 1994 में भूपेन्द्र हूजा और उनके साथियों ने भगतसिंह की जेल नोटबुक का मूल अंग्रेज़ी संस्करण छापकर भारत की जनता और क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए जो उपयोगी कार्य किया उसे कभी भी भुलाया नहीं सकता।

आम जनता को इतिहास की बहुमूल्य धरोहर से परिचित कराने के महत्त्वपूर्ण कार्यभारों में से यह भी एक है कि भगतसिंह की जेल नोटबुक और उनके तथा उनके साथियों के सभी दस्तावेज़ों को सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित करके जन-जन तक पहुँचाया जाये।

भगतसिंह की जेल नोटबुक स्कूली कापी की सामान्य साइज (17.50 से.मी. ग 21 से.मी) की पुस्तिका है। नोटबुक खोलते ही पहले पेज (टाइटिल पेज) पर अंग्रेज़ी में लिखा है : ''भगतसिंह के लिए/चार सौ चार (404) पृष्ठ...'' नीचे एक हस्ताक्षर है और 12.9.29 की तिथि दी गयी है। स्पष्ट है कि यह प्रविष्टि जेल

अधिकारियों द्वारा भगतसिंह को कापी देते समय की गयी है। जेल मैनुअल/ नियमावली के जानकार जानते होंगे कि जब भी कोई क़ैदी लिखने के लिए कापी माँगता है तो जेल अधिकारी को कापी के शुरू और अन्त में ऐसा लिखना होता है और क़ैदी को भी प्राप्त करते समय वहाँ हस्ताक्षर करना होता है। भगतसिंह के हस्ताक्षर (अंग्रेज़ी में) टाइटिल पेज पर भी मौजूद हैं और 12.9.29 की तिथि के साथ कापी के अन्त में भी। नोटबुक की जो डुप्लीकेटेड/हस्तलिखित प्रतिलिपि जी.बी. कुमार हूजा को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में मिली, उसमें नीचे बायें कोने पर अंग्रेज़ी में यह भी लिखा हुआ था : "प्रतिलिपि शहीद भगतसिंह के भतीजे अभय कुमार सिंह द्वारा तैयार।"

मूल नोटबुक के पृष्ठ भगतसिंह की छोटे अक्षरों वाली लिखाई से भरे हुए हैं। ज्यादा नोट्स अंग्रेज़ी में लिये गये हैं, लेकिन कहीं-कहीं उर्दू का भी इस्तेमाल किया गया है।

भगतसिंह की जेल नोटबुक : एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य

एल. वी. मित्रोखिन

अक्टूबर, 1967 में एक वयोवृद्ध भारतीय क्रान्तिकारी **विजय कुमार सिन्हा** से मेरी भेंट हुई। 1929 में अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें उस मुक़दमे में सज़ा दिलवायी थी, जो इतिहास में लाहौर षड्यन्त्र केस के नाम से जाना जाता है। उन दिनों की घटनाओं को याद करते हुए श्री सिन्हा ने महान भारतीय क्रान्तिकारी भगतसिंह के बारे में बताया, जो फाँसी के तख़्ते पर चढ़ने से कुछ घण्टे पहले तक लेनिन की जीवनी पढ़ते रहे थे।

कैसा अनुपम इच्छा-बल था उस वीर का! उन अकथनीय परिस्थितियों में, फाँसी से पहले एक पुस्तक पढ़ना! परन्तु लेनिन के व्यक्तित्व का प्रभाव इतना प्रबल था कि सुदूर औपनिवेशिक भारत में मृत्युदण्ड प्राप्त क़ैदी उनके जीवन का वर्णन करने वाली पंक्तियों को यों पढ़ते थे, मानो जीवनदायी स्रोत से घूँट भर रहे हों।

...सुबह का वक़्त था। इस दिन भगतसिंह तेईस वर्ष, पाँच महीने और छब्बीस दिन के हुए थे। लाहौर का एक अख़बार देखते हुए भगतसिंह की नज़र हाल ही में छपी लेनिन की जीवनी के बारे में एक लेख पर पड़ी।

लेनिन पर एक किताब...वह हर हालत में उसे पढ़ना चाहते थे। भगतसिंह जानते थे कि औपनिवेशिक "न्यायालय" अपना फ़ैसला सुना चुका है और उन्हें फाँसी मिलकर रहेगी। ये ऐसे क्षण होते हैं, जब आदमी की सबसे बड़ी इच्छा होती है कि अपने प्रियजनों के अन्तिम दर्शन पा ले।

'युगदृष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' पुस्तक में भगतसिंह की भतीजी **वीरेन्द्र सिन्धु** ने उनके अन्तिम दिनों का वर्णन इस प्रकार किया है। वह लिखती हैं : "भगतसिंह के लिए लेनिन से अधिक क़रीबी और कौन था? वह अपनी मृत्यु से पहले उनसे मिलने को उत्सुक थे और उनके लिए लेनिन की जीवनी पढ़ने का अर्थ लेनिन से मिलना था।"

एक विलक्षण क्रान्तिकारी और भारत के राष्ट्रीय नायक भगतसिंह का जीवन, जिन्हें ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने 1931 में फाँसी दे दी, एक वीर का जीवन था। भारत के अलावा उनके बारे में सोवियत संघ और दूसरे देशों में भी पुस्तकें लिखी गयी हैं।[1] मेरी 'लेनिन के बारे में भारत' में एक पूरा अध्याय 'वह पुस्तक, जो भगतसिंह ने पढ़ी' इस वीर के जेल के जीवन को समर्पित है।[2]

और अब दस साल बाद मुझे नये दस्तावेज़ों के होने का पता चला, जो भगतसिंह के भाई कुलबीर सिंह ने कृपापूर्वक मुझे दिखाये। उनका सारा परिवार अपने रिश्तेदार से, जिसे नेहरू ने भारतीय लोगों के स्वतन्त्रता संग्राम का प्रतीक कहा, सम्बन्धित सभी दस्तावेज़ जमा करता और सँभालकर रखता है। इन दस्तावेज़ों से इस बात पर नया प्रकाश पड़ता है कि किस प्रकार भगतसिंह एक आतंकवादी से विकसित होते हुए एक आस्थावान मार्क्सवादी बने। इनसे उनके साथियों पर भगतसिंह के प्रभाव तथा उनके विचारधारात्मक विकास में भगतसिंह की भूमिका का पता चलता है।

ये दस्तावेज़ हैं भगतसिंह की जेल डायरी, उन्होंने जो पुस्तकें पढ़ीं, उनके सारांश और उद्धरण। इनके अस्तित्व का ज्ञान भारतीय पत्र-पत्रिकाओं से हुआ। 1968 में भारतीय इतिहासकार जी. देवल ने 'पीपुल्स पाथ' पत्रिका के लिए 'शहीद भगतसिंह' लेख लिखा, जिसमें उन्होंने 200 पृष्ठों की एक कापी का ज़िक्र किया और बताया कि उसमें अनेक विषयों पर भगतसिंह के नोट हैं, जिनसे उनकी रुचि की व्यापकता का पता चलता है। कापी में पूँजीवाद, समाजवाद, राज्य की उत्पत्ति, कम्युनिज़्म, धर्म, समाजविज्ञान, भारत, फ़्रांस की क्रान्ति, मार्क्सवाद, सरकार के रूपों, परिवार और अन्तरराष्ट्रीयतावाद पर नोट हैं। देवल ने ये नोट पढ़े और इस बात पर ज़ोर दिया कि इन्हें प्रकाशित किया जाना चाहिए, हालाँकि उनकी यह इच्छा अभी तक साकार नहीं हो पायी है।

यह कापी, जिसके बारे में श्री देवल ने लिखा, क्रान्तिकारी के दूसरे काग़ज़ात के साथ जेल अधिकारियों ने 23 मार्च, 1931 को भगतसिंह को फाँसी देने के बाद उनके परिवारवालों को सौंप दी और अब फरीदाबाद में रह रहे उनके भाई कुलबीर सिंह के पास है।

इन दस्तावेज़ों की प्रामाणिकता की न केवल इस तथ्य से पुष्टि होती है कि वे क्रान्तिकारी के परिवार में सुरक्षित रखे गये हैं; कापी के पृष्ठ भगतसिंह की छोटे अक्षरों की लिखायी से भरे हुए हैं, वह अंग्रेज़ी में लिखते थे, कहीं-कहीं उर्दू का भी इस्तेमाल उन्होंने किया। पृष्ठ 68 पर तिथि अंकित है : 12.7.1930 और हस्ताक्षर हैं : 'भगतसिंह'।

ये दस्तावेज़ युवा क्रान्तिकारी के समृद्ध आत्मिक जीवन पर, आत्म शिक्षा के लिए उनके घोर परिश्रम तथा जेल में क़ैद के दौरान उनकी विचारधारात्मक खोज

पर प्रकाश डालते हैं। इन काग़ज़ों को सरसरी तौर पर देखने पर भी यह पता चलता है कि इनका लेखक प्रखर बुद्धि का धनी व्यक्ति था, जो सोचने के आदतन ढंग को त्यागने में सफल रहा और जिसने प्रगतिशील पश्चिमी चिन्तकों के विचारों को आत्मसात किया। इन नोटों में मार्क्सवाद में भगतसिंह की रुचि ही शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके दृष्टिकोणों के इस पहलू को ही भारत और दूसरे देशों के बुर्जुआ इतिहासकार छिपाने का यत्न करते हैं। अमेरिकी इतिहासकारों **जी. डी. ओवरस्ट्रीट** और **एम. विण्डमिलर** का दावा है कि "ज़्यादातर इस सम्बन्ध के आधार पर ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भगतसिंह को पार्टी का हीरो दिखाने की कोशिश की है।"[3]

भगतसिंह के नोट, जो उन्होंने संक्षिप्त, सारगर्भित शीर्षकों के साथ लिखे, उनकी व्यक्तिगत भावनाओं को भी प्रतिबिम्बित करते हैं। वह आज़ादी के लिए तड़प रहे थे, इसीलिए उन्होंने **बायरन, व्हिट्मैन** और **वर्ड्सवर्थ** की स्वतन्त्रता के विषय पर पंक्तियाँ अपनी कापी में उतारीं। उन्होंने **इब्सन** के नाटक, **दोस्तोयेव्स्की** का **'अपराध और दण्ड'** और **ह्यूगो** का **'पददलित'** उपन्यास पढ़े । रूसी क्रान्तिकारी **वेरा फ़िग्नर** तथा रूसी विद्वान और क्रान्तिकारी **न. मोरोज़ोव** की रचनाओं से जेल जीवन की कठिनाइयों के जो उद्धरण उतारे, वे उनकी मनोभावनाओं के अनुरूप थे। **उमर ख़य्याम** की पंक्तियाँ भी थीं, जो यह दिखाती हैं कि किस प्रकार भगतसिंह ने जीवन और मृत्यु के प्रश्नों पर मनन किया, जबकि वे औपनिवेशिक अदालत के फ़ैसले की प्रतीक्षा कर रहे थे। भगतसिंह ने अपने को मुक़दमे के लिए तैयार करने के उद्देश्य से क़ानून का भी अध्ययन किया।

जेल में पुस्तकें भगतसिंह की चिन्ता का प्रमुख विषय थीं। जुलाई, 1930 में उन्होंने अपने मित्र **जयदेव गुप्ता** को लिखा : *"कृपया लाहौर के द्वारकादास पुस्तकालय के लाइब्रेरियन से पूछना कि बोर्स्टेल जेल में क़ैदियों को किताबें भेजी गयी हैं या नहीं। उन्हें किताबों की बहुत तंगी है। उन्होंने सुखदेव के भाई जयदेव के हाथ सूची भेजी थी, मगर किताबें उन्हें नहीं मिलीं। अगर सूची खो गयी है, तो जरा लाला फ़िरोज़चंद से विनती करना कि उसके बदले अपनी पसन्द से कुछ रोचक पुस्तकें भेज दें। इस इतवार को उन्हें किताबें मिल जानी चाहिए थीं। कृपया विनती करना कि किताबें ज़रूर भेज दें।"*[4]

16 सितम्बर, 1930 को उन्होंने दुखी मन से अपने भाई कुलबीर सिंह को लिखा कि फ़ैसला सुनाये जाने तक उनसे मिलने कोई नहीं आ सकता : *"इसलिए मेरी विनती है कि तुम ख़ान साहब के दफ़्तर जाना और वहाँ से मेरी किताबें और दूसरी जो चीज़ें मैंने वहाँ छोड़ी हैं, ले लेना। मुझे लाइब्रेरी की पुस्तकों की बड़ी चिन्ता है। फ़िलहाल मेरे लिए कोई किताबें लाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि मेरे पास अभी कुछ हैं। अच्छा हो, अगर तुम लाइब्रेरी से उन किताबों की सूची माँग*

लो, जो मैंने वहाँ से निकलवायी थीं।"

क्रान्तिकारी **जे. सान्याल** ने, जो कुछ समय तक भगतसिंह के साथ जेल में रहे थे, इस बात पर ज़ोर दिया है कि वह बड़े ध्यान से पढ़ने के लिए पुस्तकें चुनते थे, **डिकेंस, सिंक्लेयर, वाइल्ड** और **गोर्की** उन्हें अधिक पसन्द थे।[5]

जेल में उन्होंने जिस राजनीतिक और वैज्ञानिक साहित्य की माँग की, उससे उनकी रुचियों का पता चलता है। जुलाई, 1930 में उन्होंने **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन** और **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म** ("वामपन्थी" कम्युनिज़्म : एक बचकाना मर्ज – प्रत्यक्षत: ये दोनों पुस्तकें लेनिन की थीं), **प. क्रोपोत्किन** की **'परस्पर सहायता'** तथा **मार्क्स** की **'फ़्रांस में गृहयुद्ध'** रचनाएँ मँगवायीं।

भगतसिंह के कुछ नोट उनकी जीवनी का आदर्शवाक्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिकी समाजवादी **यूजीन वी. डेब्स** का निम्न कथन : *"जब तक निम्न वर्ग है, मैं उसमें हूँ। जब तक कोई अपराधी तत्त्व है, मैं उसमें हूँ। जब तक कोई जेल में है, मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ"* (भगतसिंह की डायरी का पृष्ठ 21। आगे उनकी डायरी की पंक्तियों के बाद उसका पृष्ठ इंगित किया गया है)। पृष्ठ 29 पर उन्होंने लिखा : *"निरर्थक घृणा की ख़ातिर नहीं, सम्मान, यश और आत्मश्लाघा की ख़ातिर नहीं, बल्कि अपने ध्येय की कीर्ति की ख़ातिर तुमने ऐसा कुछ किया है, जो कभी भुलाया नहीं जायेगा।"*

स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष और दूसरों के लिए आत्मबलिदान के विचार हम उनकी डायरी के हर पृष्ठ पर पाते हैं। पृष्ठ 23 पर भगतसिंह ने **टॉमस जैफरसन**[5] के ये प्रसिद्ध शब्द लिखे : *"आज़ादी के बिरवे को समय-समय पर देशभक्तों और तानाशाहों के ख़ून से ताज़ा किया जाना चाहिए। यह कुदरती खाद है।"* इतिहास, दर्शन और अर्थशास्त्र के विभिन्न विद्वानों की पुस्तकों से जो उद्धरण भगतसिंह ने अपनी डायरी में उतारे, वे अत्यन्त रोचक हैं। कहना न होगा कि जेल के हालात में वह कोई सुव्यवस्थित अध्ययन नहीं कर सकते थे, उनके लिए तो बाहर से किताबें पाना तक मुश्किल था। उनके नोट पढ़ते हुए एक बात की ओर ध्यान जाता है : उन्होंने ठेठ भारतीय समस्याओं की ओर कहीं कम ध्यान दिया। केवल कुछेक बार ही लाला लाजपत राय, बिपिनचन्द्र पाल और मदन मोहन मालवीय जैसे स्वतन्त्रता सेनानियों का उल्लेख किया। एक ब्रिटिश लेखक की पुस्तक में से उन्होंने महात्मा गाँधी का केवल एक उद्धरण उतारा। वर्षों तक अंग्रेज़ों द्वारा भारत के शोषण की विधियों का विश्लेषण और औपनिवेशिक राज्यतन्त्र के निरंकुश उपायों का भण्डाफोड़ भारतीय देशभक्तों के अध्ययन का परम्परागत विषय रहा था। भगतसिंह ने केवल दो-तीन बार इसका ज़िक्र किया है, शायद यह मानते हुए कि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, कि औपनिवेशिक दासता से उनके देश को मुक्त कराने की आवश्यकता सबके लिए स्पष्ट और प्रमाणित बात हो गयी है। उस समय

उनका ध्यान समाज के विकास की आम समस्याओं में अधिक था, सो वह भारतीय चिन्तकों की अपेक्षा पश्चिमी चिन्तकों की ओर अधिक उन्मुख हुए। जहाँ उनके पूर्ववर्ती – राष्ट्रीय क्रान्तिकारी – भारत को ही विश्व के अन्तरविरोधों का केन्द्र मानते थे, वहीं भगतसिंह संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी पूर्वाग्रहों से पूरी तरह ऊपर उठ गये थे और यह मानते थे कि भारत की समस्याएँ विश्व के विकास की परिधि में ही हल की जा सकती हैं।

जिन लेखकों के उद्धरण भगतसिंह ने अपनी डायरी में उतारे, उनके प्रति उनके रुख में पूरी सुसंगति है। शुरू में वह 18वीं सदी की अमेरिकी और फ़्रांसीसी क्रान्तियों तथा विचारकों के प्रति भारतीय क्रान्तिकारियों का परम्परागत लगाव दर्शाते हैं। उन्होंने **रूसो**[7], **टॉमस पेन**[8], **टॉमस जैफरसन** और **पैट्रिक हेनरी**[9] के स्वतन्त्रता तथा मानव के जन्मसिद्ध अधिकारों पर विचार नोट किये। पृष्ठ 16 पर उन्होंने पैट्रिक हैनरी का निम्न भावपूर्ण कथन नोट किया : *"क्या ज़िन्दगी इतनी प्यारी और चैन इतना मीठा है कि बेड़ियों और दासता की क़ीमत पर उन्हें ख़रीदा जाये। क्षमा करो, सर्वशक्तिमान प्रभु! मैं नहीं जानता कि वे क्या रास्ता अपनायेंगे, मुझे तो बस: 'स्वतन्त्रता या मौत' दो।"*

तानाशाही की भर्त्सना करने के लिए भगतसिंह दर्शन की रचनाओं का ही नहीं, ललित साहित्य का भी सहारा लेते हैं। मार्क ट्वेन के निम्न शब्द उन्होंने अपनी डायरी में उतारे : *"हम इस बात को भयानक मानते हैं कि लोगों की गरदनें उड़ायी जाती हैं, लेकिन हमें यह देखना नहीं सिखाया गया है कि ज़िन्दगीभर लम्बी वह मौत कितनी भयानक है, जो ग़रीबी और तानाशाही पूरी आबादी पर लादती है।"*

पूँजीवादी विकास के नियमों को समझने के भगतसिंह के प्रयासों को प्रदर्शित करती भी बहुत सारी सामग्री है। उन्होंने इस विषय को गम्भीरता से लिया और सांख्यिक सामग्रियों का अध्ययन किया। ज्वलन्त सामाजिक अन्तरविरोधों को दिखाते आँकड़ों की ओर उन्होंने सबसे पहले ध्यान दिया। विभिन्न लेखकों से जो उद्धरण उन्होंने लिये, वे संक्षिप्त, किन्तु प्रभावोत्पादक हैं। उदाहरण के लिए, वह लिखते हैं कि ब्रिटेन की आबादी का नौवाँ हिस्सा वहाँ के आधे उत्पाद को हथियाता है और इस उत्पाद का केवल सातवाँ हिस्सा दो तिहाई आबादी के हिस्से में आता है; कि अमेरिका की आबादी का एक प्रतिशत से कम अंश वह धनिक वर्ग है, जिसके पास 67 अरब डालर तक की सम्पत्ति है, जबकि 70 प्रतिशत आबादी सर्वहाराओं की है, जो राष्ट्रीय उत्पाद के केवल चार प्रतिशत पर दावा कर सकती है।

बहुत से उद्धरण यह दिखाते हैं कि श्रमिकों के प्रति उनके मन में गहरी सद्भावना थी और पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति उनका रुख आलोचनात्मक था। उदाहरणत:, **फूरिये** का एक उद्धरण उन्होंने नोट किया और उसका शीर्षक रखा : 'सबके ख़िलाफ़ अकेला' : *"वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एक बेहूदा कार्यतन्त्र*

है, जिसमें समग्र के अंश एक-दूसरे के विपरीत हैं और समग्र के ख़िलाफ़ काम करते हैं। हम देखते हैं कि समाज में प्रत्येक वर्ग अपने स्वार्थ के कारण दूसरे वर्गों का अहित चाहता है, हर तरह से व्यक्तिगत हित को जन कल्याण के ख़िलाफ़ रखता है" (और आगे यह लिखते हैं कि डॉक्टर का स्वार्थ यह है कि समाज में ज़्यादा से ज़्यादा रोग हों, वकील ज़्यादा से ज़्यादा मुक़दमे चाहता है, वास्तुकार और बढ़ई चाहते हैं कि मकान जलें, इत्यादि)। इसी भावना में **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** के जापानी विद्यार्थियों के समक्ष उस भाषण का उद्धरण है, जिसमें ठाकुर ने जापान में पैसे के पीछे दौड़ को *"मानवजाति के लिए भयानक ख़तरा"* बताया, जो *"शक्ति के आदर्श को परिष्कार के ऊपर रखती है"*।

ये सभी उद्धरण दिखाते हैं कि भगतसिंह पूँजीवाद को अस्वीकार करते हैं। इसीलिए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला : *"सवाल यह नहीं है कि वर्तमान सभ्यता को बदला जाना चाहिए या नहीं, बल्कि यह कि उसे कैसे बदला जायेगा।"*

भगतसिंह ने पूँजीवाद की आलोचना सामाजिक और राजकीय, दोनों व्यवस्थाओं के प्रसंग में की। पृष्ठ 46 पर लेनिन का नाम पहली बार आया है। यहाँ भगतसिंह ने अमेरिकी समाजवादी **मॉरिस हिलक्विट** की पुस्तक **'मार्क्स से लेनिन तक'** से बुर्जुआ लोकतन्त्र के सीमित स्वरूप पर उद्धरण लिया : *"पूँजीवाद में लोकतन्त्र एक सार्विक अमूर्त लोकतन्त्र नहीं था, बल्कि विशिष्ट बुर्जुआ लोकतन्त्र, या जैसाकि लेनिन ने इसे कहा था, बुर्जुआ वर्ग के लिए लोकतन्त्र।"* आगे वह लिखते हैं : *"लोकतन्त्र सिद्धान्ततः राजनीतिक और क़ानूनी समानता की व्यवस्था है, किन्तु ठोस और व्यावहारिक रूप में यह झूठ है, क्योंकि जब तक आर्थिक सत्ता में भारी असमानता है, तब तक कोई समानता नहीं हो सकती, न राजनीति में और न ही क़ानून के सामने।...पूँजीवादी शासन में लोकतन्त्र की सारी मशीनरी शासक अल्पमत को श्रमिक बहुमत की यातनाओं के जरिये सत्ता में बनाये रखने के लिए काम करती है।"*

भगतसिंह ने बुर्जुआ व्यवस्था की विचारधारात्मक संरचना की ओर भी ध्यान दिया और इस सिलसिले में बुर्जुआ समाज में धर्म की भूमिका में रुचि ली। अपने लिए वह धर्म का प्रश्न हल कर चुके थे, इस समय तक वह एक पक्के निरीश्वरवादी बन चुके थे। लेकिन उन्होंने भारतीय समाज में धर्म की भूमिका और स्थान को तथा अपने साथियों, राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों की विचारधारा पर इसके प्रभाव को समझना चाहा।

'धर्म - स्थापित व्यवस्था का समर्थक : 'दासता' शीर्षक से उन्होंने अमेरिका के प्रेसबिटेरियन चर्च की महासभा (1835) के प्रस्ताव का यह उद्धरण नोट किया कि *"दासता को बाइबिल के पुराने और नये धर्मग्रन्थों में मान्यता प्राप्त है और ईश्वर की सत्ता उसकी निन्दा नहीं करती।"* भगतसिंह आगे लिखते हैं कि

उसी वर्ष चार्ल्सटन बैपटिस्ट एसोसिएशन ने *"अपने दासों के समय का उपयोग करने के मालिकों के अधिकार"* की पुष्टि की। इस सिलसिले में भगतसिंह ने इस बात पर ज़ोर दिया कि धर्म ने *"पूँजीवाद का समर्थन"* किया है।

धर्म की उत्पत्ति के कारणों और उसके मर्म को समझने की चेष्टा में वह मार्क्स की ओर उन्मुख हुए। पृष्ठ 40 पर हम **मार्क्स** की रचना **'हेगेल के न्याय-दर्शन की समालोचना का प्रयास'** से **'धर्म के बारे में मार्क्स के विचार'** शीर्षक का एक उद्धरण पाते हैं : *"...मनुष्य धर्म की रचना करता है, धर्म मनुष्य की रचना नहीं करता।...मनुष्य का अर्थ है मनुष्य का संसार, राज्य, समाज। यह राज्य, यह समाज धर्म को, एक विकृत विश्वदृष्टिकोण को जन्म देते हैं, क्योंकि वे स्वयं एक विकृत संसार हैं। धर्म इस संसार का सामान्य सिद्धान्त, उसका सार-संग्रह, सुबोध रूप में उसका तर्क है।...धर्म के विरुद्ध संघर्ष परोक्ष रूप से उस संसार के विरुद्ध संघर्ष है, जिसका आध्यात्मिक सन्तोष धर्म है।.. धर्म जनता के लिए अफ़ीम है।"* उल्लेखनीय है कि पृष्ठ 192 पर भगतसिंह ने अन्तिम वाक्य दोहराया है।

सो, अपने नोटों में भगतसिंह ने पूँजीवाद के उन्मूलन के पक्ष में ठोस तर्क पेश किये। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों की भाँति वह भी यही मानते थे कि भावी समाज केवल समाजवादी समाज ही हो सकता है। उनके नोटों में भावी समाज का कोई विस्तृत विवरण तो नहीं है, किन्तु कुछ विचार यह दिखाते हैं कि वह समाजवाद की धारणा का वैज्ञानिक अर्थ लगाते थे। उन्होंने भावी समाज के दक्षिणपन्थी सामाजिक-जनवादियों के आदर्श को अस्वीकार किया तथा पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद लाने की समस्या के प्रति सामाजिक-सुधारवादी रुख को भी। उन्होंने पश्चिम के दक्षिणपन्थी समाजवादियों की भर्त्सना की और आर. मैकडोनाल्ड को *"ब्रिटिश लेबर पार्टी का साम्राज्यवादी नेता"* कहा (पृष्ठ 13)। पृष्ठ 52 पर दूसरे इण्टरनेशनल के नेताओं द्वारा मज़दूर वर्ग के ध्येय से की गयी ग़द्दारी के बारे में हिलक्विट की पुस्तक से एक उद्धरण है।

जेल में वह पूरी तरह पूँजीवादी व्यवस्था का तख़्ता पलटने तथा सारी मानवजाति के हित में अर्थव्यवस्था और सारी प्राकृतिक सम्पदा पर नियन्त्रण स्थापित करने की ओर लक्षित विश्व समाजवादी क्रान्ति के विचार में तल्लीन रहे। पृष्ठ 190 पर उन्होंने लिखा : *"समाजवादी व्यवस्था : प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।"* भगतसिंह समाजवाद में संक्रमण को सर्वहारा के संघर्ष के साथ जोड़ते थे, जो भावी समाज में शासक वर्ग बनेगा। पृष्ठ 69 पर **'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र'** का एक उद्धरण है : *"...मज़दूर वर्ग की क्रान्ति का पहला क़दम सर्वहारा वर्ग को उठाकर शासक वर्ग के आसन पर बैठाना और जनवाद के लिए होने वाली लड़ाई को जीतना है।*

"सर्वहारा वर्ग अपना राजनीतिक प्रभुत्व पूँजीपति वर्ग से धीरे-धीरे कर सारी

पूँजी छीनने के लिए, उत्पादन के सारे औज़ारों को राज्य, अर्थात शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग, के हाथों में केन्द्रीकृत करने के लिए तथा समग्र उत्पादक शक्तियों में यथाशीघ्र वृद्धि के लिए इस्तेमाल करेगा।"[10]

भगतसिंह ने यह भी इंगित किया कि यदि सर्वहारा का पथप्रदर्शन उसका हरावल दस्ता, उसकी पार्टी, जो सर्वहारा क्रान्ति का अनिवार्य उपकरण है, न कर रही हो, तो कोई क्रान्ति नहीं हो सकती। उन्होंने सर्वहारा गीत 'इण्टरनेशनल' के शब्द अपनी डायरी में उतारे।

यह तर्कसंगत ही था कि भगतसिंह क्रान्ति के आरम्भ के नाते सशस्त्र विद्रोह के प्रश्न पर पहुँचे। ऐसा विद्रोह भारतीय क्रान्तिकारियों की अनेक पीढ़ियों का लक्ष्य रहा था, परन्तु वे इसे ला पाने में सफल नहीं रहे थे। यही कारण है कि भगतसिंह ने इस विषय पर मार्क्सवादी रचनाओं में ख़ास दिलचस्पी ली। उन्होंने एंगेल्स की रचना **'जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति'** से लम्बे उद्धरण उतारे, हालाँकि ऐसा उन्होंने मूल रचना से नहीं, बल्कि एक अन्य पुस्तक से किया था और इसीलिए वह इस भ्रम में रहे कि वह मार्क्स को उद्धृत कर रहे हैं : *"पहली चीज़ – विद्रोह से तब तक खिलवाड़ न करें, जब तक आप उस खेल के परिणामों का सामना करने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं होते। विद्रोह तो एक ऐसा कलन है, जिसके परिमाण सर्वथा अनिश्चित होते हैं, जिनका मूल्य रोज़ बदल सकता है। मुक़ाबले में खड़ी शक्तियों को संगठन, अनुशासन तथा परम्परागत प्रतिष्ठा के सारे लाभ उपलब्ध होते हैं। यदि विद्रोही अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ और बड़ी ताक़त मैदान में नहीं उतारेंगे, तो वे हार जायेंगे और बरबाद हो जायेंगे। दूसरी चीज़ – एक बार विद्रोह शुरू होने पर अधिकतम दृढ़संकल्प के साथ काम करने तथा प्रहार करने की ज़रूरत होती है। प्रतिरक्षा की स्थिति प्रत्येक सशस्त्र विद्रोह की मौत हुआ करती है; अपने शत्रु से मुक़ाबला होने से पहले ही मैदान हाथ से निकल जाता है।"* [11]

इस उद्धरण में प्रत्येक शब्द विद्रोह के प्रश्न पर भगतसिंह के साथियों के सतही रुख के ख़िलाफ़ तथा कुछ हद तक क्रान्तिकारी गतिविधियों के आरम्भ में स्वयं भगतसिंह के दृष्टिकोण के ख़िलाफ़ चेतावनी देता है।

काफ़ी लम्बे समय तक भारतीय क्रान्तिकारियों ने न तो भावी स्वतन्त्र भारत में सत्ता के स्वरूप पर और न ही उसकी सरकार की सामाजिक-आर्थिक नीति के प्रश्न पर विचार किया। वे यह सोचते थे कि स्वतन्त्रता ही एक "रामबाण" होगी। मार्क्सवादी साहित्य से प्रभावित होकर भगतसिंह ने इन सभी प्रश्नों में गहरी दिलचस्पी ली। उनके कुछ नोट यह दिखाते हैं कि उन्होंने सर्वहारा अधिनायकत्व के विचार को स्वीकार कर लिया था। शुरू में उन्होंने एंगेल्स का यह कथन नोट किया कि विजयी सर्वहारा को वर्ग-शत्रु को कुचलने के लिए अधिनायकत्व की ज़रूरत है और इसलिए एक "स्वतन्त्र लोक राज्य" की बात करना बेतुका है (पृष्ठ

62)। इसके आगे उन्होंने लेनिन की परिभाषा जोड़ी : *"अधिनायकत्व प्रत्यक्ष रूप से हिंसा पर आधारित और किसी भी क़ानून से न बँधी हुई सत्ता है।*

"सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी अधिनायकत्व सर्वहारा वर्ग द्वारा बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध हिंसा द्वारा हासिल की जाने वाली और बरक़रार रखी जाने वाली सत्ता है, किसी भी क़ानून से न बँधी हुई सत्ता है।" [12]

भगतसिंह के नोटों में सर्वहारा अधिनायकत्व के सार पर संशोधनवादी रुखों की आलोचना हम पाते हैं। उन्होंने लेनिन की रचना **'सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की'** से लम्बे उद्धरण उतारे और लेनिन के इस विचार पर ख़ास ध्यान दिया कि बुर्जुआ निन्दक "शुद्ध लोकतन्त्र" के नारे का सहारा लेकर सोवियत सरकार पर अत्याचार का आरोप लगाते हैं : *"परन्तु अब चूँकि श्रमिक तथा शोषित वर्गों ने साम्राज्यवादी युद्ध के कारण विदेशों के अपने भाइयों से कटे रहकर भी इतिहास में पहली बार स्वयं अपनी सोवियतों की स्थापना कर ली है, उन जन समूहों को राजनीतिक निर्माण के काम में जुटा दिया है, जिनका बुर्जुआ वर्ग उत्पीड़न करता था, जिन्हें वह कुचलता था और जिन्हें मतिमूढ़ बनाता था, अब चूँकि उन्होंने स्वयं एक नये, सर्वहारा राज्य का निर्माण करना आरम्भ कर दिया है, भीषण संघर्ष की ज्वाला के बीच, गृहयुद्ध की ज्वाला के बीच शोषकों से मुक्त राज्य के बुनियादी सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार करनी शुरू कर दी है – इसलिए सारे लुच्चे बुर्जुआ जन, ख़ून चूसने वालों का पूरा गिरोह 'मनमानेपन' का शोर मचाने लगा है और काउत्स्की भी उन्हीं के स्वर को प्रतिध्वनित कर रहे हैं!"* [13]

सर्वहारा अधिनायकत्व को नये समाज के निर्माण का उपकरण मानते हुए भगतसिंह ने ऐसे समाज की स्थापना के पथों की ओर बहुत ध्यान दिया। इस सिलसिले में वह सोवियत रूस के अनुभव और वहाँ कुछ समय पहले हुए क्रान्तिकारी पुनर्गठन की ओर निरन्तर उन्मुख होने लगे। डायरी के पृष्ठ 36 पर पहली बार "बोल्शेविक रूस" का ज़िक्र आया है। इसके आगे हाशियों पर विभिन्न लेखकों द्वारा रूस पर लिखी गयी पुस्तकों की सूची है : **रेने फुलोप-मिलर** की *'बोल्शेविज़्म का चेहरा और दिमाग़'*, **एम. ओ'हारा** की *'रशिया'*, **लैंसलो लोटन** की *'रूसी क्रान्ति'*, **एण्टन कार्लग्रीन** की *'बोल्शेविक रूस'* और *'मार्क्स, लेनिन तथा क्रान्ति का विज्ञान'* (पृष्ठ 191)। इस सूची में रूस पर वे सभी पुस्तकें नहीं हैं, जिनमें भगतसिंह ने जेल में दिलचस्पी दिखायी थी। जे. सान्याल के अनुसार भगतसिंह ने **जॉन रीड** की **'दस दिन जब दुनिया हिल उठी'**, **गोर्की** की **'माँ'** और **स. स्तेप्न्याक-क्राव्चींस्की** की **'रूसी लोकतन्त्र का जन्म'** भी पढ़ी थीं।[14]

जे. सान्याल आगे लिखते हैं : *"हालाँकि समाजवाद उनका विशेष विषय था, तथापि उन्होंने 19वीं सदी के आरम्भ में रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन की उत्पत्ति से लेकर 1917 की अक्टूबर क्रान्ति तक उसके इतिहास का गहराई से अध्ययन*

किया। यह माना जाता है कि भारत में बहुत कम लोग ऐसे थे, जिनके इस विषय पर ज्ञान की तुलना भगतसिंह के ज्ञान की जा सकती है। बोल्शेविक शासन में रूस में हो रहे आर्थिक प्रयोग में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी।"[15]

भगतसिंह यह समझते थे कि समाजवादी क्रान्ति के सम्मुख विराट सृजनात्मक कार्यभार हैं जो इसे बुर्जुआ क्रान्ति से अलग करते हैं। निम्न उद्धरण में इस भेद पर ज़ोर दिया गया है : *"बुर्जुआ क्रान्ति आमतौर पर सत्ता पाने के साथ समाप्त हो जाती है। सर्वहारा क्रान्ति के लिए सत्ता पाना एक शुरुआत ही है; सत्ता पा लेने पर उसका उपयोग पुरानी अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करने और नयी अर्थव्यवस्था गठित करने के लिए किया जाता है।"* (पृष्ठ 120)

क्रान्ति के मार्क्सवादी सिद्धान्त का स्वयं ही स्वतन्त्र रूप में अध्ययन करते हुए भगतसिंह ने उसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व पहचाने। उन्होंने पुरानी राजकीय मशीनरी को तोड़ने और नयी मशीनरी बनाने की आवश्यकता पर लेनिन के विचार नोट किये और यह इंगित किया कि आन्तरिक कार्यों के अलावा समाजवादी क्रान्ति के सामने अन्तरराष्ट्रीय कार्यभार भी होते हैं, क्योंकि विश्व क्रान्ति के बिना किसी एक देश में कम्युनिस्ट शासन ख़तरे से मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय पूँजीवादी हस्तक्षेप का ख़तरा उसके सिर पर सदा मँडराता रहेगा (पृष्ठ 120)।

भारतीय क्रान्तिकारी हरावल के, जिसका जनसाधारण के साथ पहले कोई सम्पर्क नहीं रहा, प्रतिनिधि के नाते भगतसिंह द्वारा लेनिन के इस विचार को स्वीकार किया जाना एक बहुत बड़ी बात थी कि जनता पर पार्टी का प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। पृष्ठ 121 पर उनके नोट लेनिन के इस विचार को प्रतिबिम्बित करते हैं कि सर्वहारा को आबादी के बड़े भाग को अपने पक्ष में लाना होता है और साथ ही वर्ग-सहयोग की वकालत करने वाले बुर्जुआ और टुटपुँजिया तत्त्वों के श्रमिकों पर प्रभाव को मिटाना होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि जेल में थोड़े समय में ही भगतसिंह ने मार्क्सवादी शिक्षा के प्रमुख सिद्धान्तों को समझ लिया और आत्मसात कर लिया। उनके जीवन का ऐसे क्षण में त्रासद अन्त हो गया, जबकि वह मार्क्सवाद के ज्ञान का उपयोग करने के लिए तैयार हो गये थे।

परन्तु जेल में उन्होंने जो भगीरथ परिश्रम किया, वह निरर्थक नहीं था। भगतसिंह ने स्वयं जो कुछ जाना-समझा, उसे उन्होंने अपने मित्रों और साथियों तक पहुँचाने की कोशिश की, यह समझते हुए कि भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के विकास के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्त कितना महत्त्वपूर्ण है। यह कोई संयोग की बात नहीं कि अपने एक पत्र में उन्होंने अपने को एक स्वतन्त्रता सेनानी नहीं, समाजवादी विचारों का प्रचारक कहा।[16]

जेल में भगतसिंह ने अपने क्रान्तिकारी साथियों के साथ ही नहीं, बल्कि **ग़दर**

पार्टी के बहुत से सदस्यों के साथ भी सम्पर्क स्थापित किये, जो प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों से जेल में बन्द थे। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की समस्याओं पर उन्होंने ग़दर पार्टी वालों से लम्बी बातें कीं। जी. देवल ने ग़दर पार्टी के सदस्यों के साथ भगतसिंह के सम्बन्धों के बारे में एक लेख लिखा है।[17] जेल में वह ग़दर पार्टी के एक नेता **सोहन सिंह भकना** से मिले, जो कालान्तर में भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक प्रमुख नेता बने।[18]

भगतसिंह अपने साथियों को सलाह देते थे कि वे मार्क्सवाद का अध्ययन करें। उदाहरण के लिए, उन्होंने मार्क्स की **'पूँजी'** के अध्ययन की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। जयदेव प्रसाद गुप्त को 24 जुलाई, 1930 को लिखे पत्र में उन्होंने अपने लिए किताबें मँगवायी थीं और कहा था कि अपने साथियों के लिए किताबों की सूची पहले भेज चुके हैं और विनती की थी कि उनका यह अनुरोध जल्दी पूरा किया जाये, क्योंकि उन्हें किताबों की सख़्त तंगी है।[19]

इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि जो साथी सौभाग्यवश जेल जाने से बच गये, उनके साथ भी भगतसिंह ने सम्पर्क बनाये रखे। अपनी कालकोठरी से भी वह 1929 में लाहौर में हुई **नौजवान भारत सभा** की कांग्रेस को एक महत्त्वपूर्ण सन्देश भेजने में सफल रहे। अपनी क्रान्तिकारी पुस्तिकाओं की, जिनमें **'बम का दर्शन'** भी था, पाण्डुलिपियाँ उन्होंने जेल से बाहर भिजवा दीं। फाँसी पर चढ़ने से कुछ दिन पहले ही उन्होंने **युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम** अपनी घोषणा लिखी और बाहर भिजवायी, जिसे उनकी अन्तिम इच्छा और वसीयतनामा कहा जा सकता है।[20*]

जेल में उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं : 'आत्मकथा', 'समाजवाद का आदर्श' और 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन'। दुर्भाग्यवश, इन पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ नहीं बची रहीं, हालाँकि उनके व्यक्तिगत और राजनीतिक पत्र बचे रहे। इन पत्रों से भगतसिंह के इस आत्ममूल्यांकन की पुष्टि होती है कि वह समाजवादी विचारों का प्रचारक हैं और इस बात की भी कि उन्होंने अपने साथियों की मार्क्सवादी रुख अपनाने में मदद करने की कोशिश की।

सुखदेव को, जिन्हें भगतसिंह के साथ ही फाँसी दी गयी, उनका एक पत्र प्रकाशित हुआ है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि भगतसिंह इस सच्चाई को समझने लगे थे कि भारत में व्याप्त परिस्थितियों में समाजवाद एक तर्कसंगत रास्ता है। इससे यह भी पता चलता है कि भगतसिंह भारत के सामाजिक जीवन पर अपने प्रभाव को समझते थे।

उन्होंने लिखा कि अपने साथियों के साथ उन्होंने (राजनीतिक) वातावरण को काफ़ी बदला और वे अपने समय की पैदाइश थे। मार्क्स का हवाला देते हुए, जिन्होंने, भगतसिंह के शब्दों में, औद्योगिक क्रान्ति से जन्मी विचारधारा को निरूपित

किया, उन्होंने लिखा कि उन्होंने और उनके साथियों ने भारत में समाजवादी और कम्युनिस्ट विचारों की रचना नहीं की है, वे तो काल और परिस्थितियों के प्रभाव का परिणाम हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने यथाशक्ति इन विचारों का प्रचार करने में मदद की है।[21]

भगतसिंह अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक मार्क्सवादी विचारों का प्रचार करते रहे। 'बम का दर्शन' पुस्तिका में उन्होंने वर्ग रहित समाज और सर्वहारा अधिनायकत्व का समर्थन किया।[22] फाँसी की सज़ा सुनायी जा चुकने के बाद पंजाब के गवर्नर को भेजे एक पत्र में भगतसिंह ने लिखा कि भारत में मेहनतकश जनसाधारण और उनके उत्पीड़कों के बीच लम्बा संघर्ष चल रहा है, कि यह संघर्ष दुगने उत्साह, साहस और अटूट संकल्प के साथ तब तक चलता रहेगा, जब तक कि एक समाजवादी गणतन्त्र की स्थापना नहीं हो जाती, वर्तमान व्यवस्था का स्थान एक नयी व्यवस्था नहीं ले लेती, जिसका उद्देश्य जन कल्याण होगा और जिसमें हर तरह के शोषण का अन्त हो जायेगा और मानवजाति सच्ची और विश्वव्यापी शान्ति के युग में पदार्पण करेगी। (इस पत्र की एक नक़ल मुझे भगतसिंह के साथी विजय कुमार सिन्हा ने दी।)

भारत की स्वतन्त्रता के अदम्य सेनानी भगतसिंह ने अपना तन-मन देश की आज़ादी के संघर्ष की समस्याओं में तथा राष्ट्रीय क्रान्तिकारी संगठनों को सुदृढ़ करने में लगाया। व्यक्तिगत आतंक की नीति से उन्होंने पूरी तरह इन्कार कर दिया। उन्होंने सारी पेचीदगियों, अप्रत्याशित मोड़ों और उतार-चढ़ावों के साथ राजनीतिक संघर्ष के महत्त्व को स्वीकार किया और वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि उनके जो साथी जेल जाने से बच गये हैं, वे ठीक ऐसे संघर्ष में जुटें। 2 फ़रवरी, 1931 के अपने पत्र में साथियों को यह सलाह देते हुए उन्होंने लेनिन के अनुभव को ध्यान में रखा। इससे पता चलता है कि उन्होंने तत्कालीन भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए लाक्षणिक बहुत से "वामपन्थी" दृष्टिकोणों से छुटकारा पा लिया था। उन्हें इस बात का क़ायल करने के लिए कि संघर्ष की कुछ मंज़िलों में शत्रु के साथ बातचीत की जा सकती है, उन्होंने लिखा कि समझौता अपनेआप में कोई बुरी बात नहीं है और अपना उद्देश्य पाने में आरम्भ में उसका उपयोग किया जा सकता है। 1905-1907 में दूमा के प्रति लेनिन की नीति का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा कि "समझौता" एक ऐसा हथियार है, जिसका राजनीतिक संघर्ष में इस्तेमाल किया जाना चाहिए, ताकि राष्ट्र को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके और वह अपने को आगे के संघर्ष के लिए तैयार कर सके। भगतसिंह ने क्रान्तिकारियों का आह्वान किया कि वे अपने अन्तिम लक्ष्य को कभी न भूलें।

मई, 1931 में यह पत्र भारतीय प्रेस में छप गया था। इसे प्रकाशित करने वालों में इलाहाबाद का साप्ताहिक 'अभ्युदय' और पंजाब का 'केसरी' था।[23] इस तरह

भारतीय जनता इससे अवगत हो पायी और इसने वह प्रयोजन पूरा किया, जिसके लिए लेखक ने इसे लिखा था।

भगतसिंह की अप्रकाशित रचनाओं में वह भूमिका ध्यान देने योग्य है, जो उन्होंने ग़दर पार्टी के लाला रामशरण की यूटोपियाई रचना 'स्वप्नलोक' (ड्रीमलैण्ड) के लिए 15 जनवरी, 1931 को लिखी थी। यह पुस्तक तो नहीं छपी, लेकिन इसकी भूमिका भगतसिंह के परिवारवालों ने सँभालकर रखी हुई है।[24] इस भूमिका की अन्तर्वस्तु पुस्तक के विषय से कहीं अधिक व्यापक है : भगतसिंह ने घनीभूत रूप में अपने विचार व्यक्त करने के लिए तथा अपने साथियों को सलाह देने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया।

भूमिका इस कथन से आरम्भ होती है कि भारत के राजनीतिक आन्दोलन का कोई सुस्पष्ट आदर्श नहीं है और इस दृष्टि से क्रान्तिकारी आन्दोलन भी कोई अपवाद नहीं है। केवल ग़दर पार्टी ने ही अपना आदर्श स्पष्टत: निरूपित किया था : शासन के गणतन्त्रीय रूप का समर्थन किया था। भगतसिंह ने लिखा कि यह साफ़-साफ़ समझना चाहिए कि क्रान्ति का अर्थ उथल-पुथल या ख़ूनी युद्धमात्र नहीं है। क्रान्ति का आशय अनिवार्यत: एक ऐसे कार्यक्रम को लागू करना है, जो नये तथा अधिक अच्छे आधार पर समाज का पुनर्गठन करे। उन्होंने कहा कि न केवल वामपन्थी कांग्रेसी, बल्कि राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रतिनिधि भी "क्रान्तिकारी" कहलाने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि संघर्ष के उग्र उपायों को मानना ही इसके लिए पर्याप्त नहीं है।

लाला रामशरण की पुस्तक की चर्चा करते हुए भगतसिंह ने लिखा कि लेखक उस दर्शन के विवेचन से शुरू करता है, जिसे वह बंगाल और पंजाब के सारे क्रान्तिकारी आन्दोलन का आधार मानता है। उन्होंने कहा कि वह लेखक से सहमत नहीं है, क्योंकि लेखक संसार की प्रयोजनपरक और अधिभूतवादी व्याख्या करता है, जबकि वह स्वयं भौतिकवादी हैं। उन्होंने ईश्वर में विश्वास और रहस्यवाद के लिए लेखक की आलोचना की, अलग-अलग धर्मों में सामंजस्य बिठाने के लेखक के प्रयासों को अस्वीकार किया और इस प्रश्न पर अपना रुख मार्क्स के शब्दों में व्यक्त किया : *"धर्म जनता के लिए अफ़ीम है।"*

लेखक द्वारा चित्रित भावी समाज का विश्लेषण करते हुए भगतसिंह ने सामाजिक प्रगति में यूटोपियाई सिद्धान्तों की उपयोगी भूमिका को स्वीकार किया : *"सेंट-सिमों, फूरिये और राबर्ट ओवेन और उनके सिद्धान्तों के बिना मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद निरूपित नहीं हो सकता था।"* उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि भावी समाज कम्युनिस्ट समाज होगा, जिसके निर्माण के लिए वह और उनके साथी प्रयत्नशील हैं। एकाधिक बार वह सोवियत रूस के इतिहास की ओर उन्मुख हुए, शारीरिक और बौद्धिक श्रम के लिए समान पारिश्रमिक तथा जन शिक्षा के क्षेत्र

में उसकी नीति का उदाहरण दिया। भावी समाज में युद्धों के उन्मूलन की भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने लिखा कि सोवियत रूस को सर्वहारा अधिनायकत्व का देश होने के कारण पूँजीवादी समाज से अपनी रक्षा के लिए फ़ौज रखनी पड़ रही है।

भगतसिंह की जेल की डायरी और दूसरी सामग्रियाँ, जिन पर यहाँ ग़ौर किया गया है, इस युवा क्रान्तिकारी के दृष्टिकोण का विकास दिखाती हैं। साथ ही वे इस लिहाज़ से भी अमूल्य हैं कि इनमें हमें भगतसिंह की विचारधारात्मक खोजों का पता चलता है, हम देखते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों का मार्क्सवाद की ओर रुझान था और वे लेनिन तथा अक्टूबर क्रान्ति के विचारों से प्रभावित हुए थे।

भगतसिंह तत्कालीन मध्यवर्गीय नौजवानों की, जो कांग्रेस के बुर्जुआ नेताओं से निराश थे, भावनाओं का मूर्त रूप हैं। इन नौजवानों को भगतसिंह ने यह दिखाया कि उन्हें कौन-सा रास्ता पकड़ना चाहिए। जब इस क्रान्तिकारी को फाँसी दे दी गयी, तो उनके उदाहरण का अनुसरण करते हुए क्रान्तिकारी दलों ने जेल में ही मार्क्सवाद के अध्ययन के लिए पाठ्यक्रमों का प्रबन्ध किया।

सोवियत संघ में हो रहे क्रान्तिकारी कायाकल्प तथा पार्टी कार्यकर्ताओं को शिक्षित करने की उसकी विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रणाली से भगतसिंह बहुत आकर्षित हुए। वह अक्टूबर क्रान्ति के अनुभव का प्रत्यक्ष अध्ययन करना चाहते थे और उन्होंने अपने साथियों से ऐसे योग्य उम्मीदवार चुनने को भी कहा, जिन्हें इस उद्देश्य से मास्को भेजा जा सके।

सुविख्यात स्वतन्त्रता सेनानी **बाबा पृथ्वी सिंह आज़ाद** ने **'लेनिन की धरती में'** नामक अपनी पुस्तक में लिखा है :

"उन दिनों भगतसिंह जेल में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन कर रहे थे और उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि को एक नया, अधिक परिपक्व आयाम प्राप्त हो रहा था। वह भारत की स्वतन्त्रता तथा जनसाधारण की शोषण से मुक्ति की समस्या पर अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार कर रहे थे। वह भली भाँति जानते थे कि उन्हें फाँसी होगी। परन्तु शहीद होने से पहले वह आश्वस्त हो जाना चाहते थे कि भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन उस नयी अवस्था में पदार्पण कर ले, जिसकी कल्पना उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों और सोवियत क्रान्ति के अध्ययन के आधार पर की थी।"

आगे वह लिखते हैं : *"चन्द्रशेखर और धन्वन्तरि ने मुझसे कहा : सरदार भगतसिंह जेल में मार्क्स और लेनिन के कम्युनिस्ट दर्शन का गहरा अध्ययन करते रहे थे और अपने साथियों को भी इसकी प्रेरणा देते रहे थे।...उन्होंने ही तुमसे मिलने और तुम्हें इण्डियन सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी का सदस्य बनाकर सोवियत संघ में अध्ययन के लिए भेजने को कहा था।"* [25]

गिरफ़्तारी से पहले भगतसिंह ख़ुद भी सोवियत संघ जाकर समाजवाद के देश को अपनी आँखों से देखना चाहते थे। **'सोवियत संघ में नव मानव'** पुस्तक में विजय कुमार सिन्हा लिखते हैं :

"उन दिनों ही शौक़त उस्मानी, जो कुछ दूसरे लोगों के साथ तीसरे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की छठी कांग्रेस में भाग लेने के लिए चोरी-छिपे मास्को जा रहे थे, कानपुर में मुझसे मिले और अपने साथ चलने को कहा।...मैंने भगतसिंह से बात की : हमें लगा कि यह उचित समय नहीं है। हमने तय किया कि हम दोनों कुछ समय बाद मास्को जायेंगे।"[26] दुर्भाग्यवश, यह योजना कभी साकार नहीं हो पायी।

कुलबीर सिंह ने, जिनकी कृपा से मैं उनके बड़े भाई भगतसिंह की जेल डायरी का अध्ययन कर और उसकी नक़ल उतार सका, उनके जीवन तथा कार्यकलाप पर अद्वितीय सामग्री जमा की है, जिसका बारीक़ी से अध्ययन किया जाना चाहिए। उनके विचार में भगतसिंह जेल में कूट भाषा में भी एक डायरी रखते थे, जो अभी तक नहीं मिल पायी है।

भगतसिंह के दूसरे भाई, कुलतार सिंह भी बड़े सौहार्द से मुझसे मिले। उनकी सुपुत्री वीरेन्द्र सिन्धू ने उपरोक्त पुस्तक लिखी है। इसमें वह बताती हैं कि जुलाई, 1929 में दिल्ली में मुक़दमे की सुनवाई में भगतसिंह ने कहा था : हम उस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर ज़ोर देते हैं, जिस पर हम पहुँचे हैं।...जिस तरह फाँसी के तख़्ते और साइबेरिया की ख़ानों के डर से रूस में क्रान्ति की ज्वाला नहीं बुझी, उसी तरह सरकार के आदेश और "असाधारण" क़ानून भारत में स्वतन्त्रता संग्राम की ज्वाला नहीं बुझा सकते।

21 जनवरी, 1930 को लेनिन की पुण्य तिथि पर भगतसिंह और उनके साथी लाल रूमाल गले में बाँधकर अदालत में आये। कटघरे में पहुँचते ही उन्होंने नारे लगाये : "समाजवादी क्रान्ति ज़िन्दाबाद", "कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल ज़िन्दाबाद", "लेनिन का नाम अमर है", "जनता ज़िन्दाबाद", "साम्राज्यवाद मुर्दाबाद"।

इसके बाद भगतसिंह ने वह तार पढ़ा, जो उन्होंने और उनके साथियों ने तीसरे इण्टरनेशनल को भेजने के लिए अदालत को दिया था। इसमें कहा गया था : *लेनिन दिवस पर हम उन सब लोगों का हार्दिक अभिवादन करते हैं, जो महान लेनिन के विचारों को आगे ले जाने के लिए प्रयत्नशील हैं। रूस जो महान प्रयोग कर रहा है, उसमें सफलता की कामना हम करते हैं। हम अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन की आवाज़ में आवाज़ मिलाते हैं। सर्वहारा की जीत होकर रहेगी, पूँजीवाद की हार होगी। साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।*

भारत में एक ऐसे व्यक्ति से भी मेरी मुलाक़ात हुई, जो भगतसिंह को फाँसी दिये जाने से कुछ घण्टे पहले ही उनसे मिले थे। यह थे **प्राणनाथ मेहता**, भगतसिंह के मित्र और वकील। उन्होंने मुझे बताया :

"उन दिनों मैं डायरी रखता था (अपने काम के लिए भी मुझे इसकी ज़रूरत होती थी)। बदक़िस्मती से 1947 में पार्टिशन के वक़्त मुझे लाहौर छोड़ना पड़ा, मेरे काग़ज़ात वहीं रह गये, कुछ पता नहीं उनका क्या हुआ।

"बहरहाल डायरियाँ तो खो गयी हैं, मगर उन दिनों की घटनाओं ने मेरे दिमाग़ पर इतनी गहरी छाप छोड़ी है कि उसे न वक़्त मिटा सका है, न कोई दूसरी घटनाएँ।...

"23 मार्च, 1931 को मुझे वह किताब मिल गयी, जो भगतसिंह ने मँगवायी थी। मैं उससे मिलने गया। जेल के गेट पर मुझे बताया गया कि भगतसिंह और उसके दोस्तों ने किसी से भी मिलने से इन्कार कर दिया है। वजह यह थी कि जेल के अधिकारियों ने क़रीबी रिश्तेदारों को छोड़कर और किसी से मिलने पर पाबन्दी लगा दी थी। इसके विरोध में भगतसिंह और उसके साथियों ने कहा कि वे किसी से भी नहीं मिलेंगे।

"कुछ करना चाहिए था। मैं जेल के अधिकारियों से मिलने गया। उनमें एक मि. पुरी नेक इन्सान निकला। उसने मुझे सलाह दी कि तीन क़ैदियों के वकील के नाते मैं अर्जी दूँ कि मुझे उनकी आख़िरी इच्छा लिखने के लिए उनसे मिलना है। फिर उसने मुझे भगतसिंह की कालकोठरी में ही उससे मिलने की इजाज़त दे दी। थोड़ी देर बाद राजगुरू और सुखदेव को भी वहाँ लाया गया।

"उस वक़्त मुझे यह पता नहीं था कि लाहौर जेल के इन तीन क़ैदियों से यह मेरी आख़िरी मुलाक़ात है, कि दो घण्टे बाद इन्हें फाँसी दे दी जायेगी।

"भगतसिंह ने मुझसे पूछा कि मैं किताब लाया हूँ या नहीं। मैंने उसे किताब दी, तो वह बड़ा ख़ुश हुआ। किताब लेते हुए बोला : 'आज रात को ही इसे ख़त्म कर दूँगा, इससे पहले कि वे...' उस बेचारे को क्या पता था कि वह किताब आख़िर तक कभी नहीं पढ़ पायेगा।"

मैंने प्राणनाथ मेहता से पूछा कि उन्हें उस किताब का नाम याद है, जो वह भगतसिंह के लिए ले गये थे। उनका जवाब था : "सच पूछें, तो मुझे याद नहीं कि यह लेनिन के बारे में किताब थी, या लेनिन की। एक छोटी-सी किताब थी।. ..अगले दिन जेल के सन्तरी ने मुझे बताया कि जब भगतसिंह को लिवाने आये थे, तो वह यह किताब पढ़ रहा था। बाद में भगतसिंह मेरे लिए जो चीज़ें छोड़ गये थे, उनके साथ मुझे वह किताब भी मिली।"

"शायद उसी सन्तरी ने," मेहता ने आगे कहा, "भगतसिंह के रिश्तेदारों को उनके अन्तिम क्षणों के बारे में बताया।"

वीरेन्द्र सिन्धू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि भगतसिंह प्राणनाथ मेहता की लायी लेनिन की जीवनी पढ़ रहे थे, जब दरवाज़ा खुला। दहलीज पर अफ़सर खड़ा था।

"'सरदार जी,' उसने कहा। 'फाँसी लगाने का हुक्म आ गया है। तैयार हो जाइये।'

"भगतसिंह के दायें हाथ में किताब थी, उससे नज़रें उठाये बिना ही उन्होंने बायाँ हाथ उठाकर कहा : 'ठहरिये। यहाँ एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है।'

"कुछ पंक्तियाँ और पढ़कर उन्होंने किताब एक तरफ़ रख दी और उठ खड़े हुए बोले : 'चलिए!'"

भगतसिंह के क्रान्तिकारी दल में से एक और कर्मठ क्रान्तिकारी निकला, जो आगे चलकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव बना। यह थे **अजय कुमार घोष**।

'भगतसिंह और उनके साथी' नामक पुस्तक में अजय घोष ने लिखा कि भगतसिंह भारत के राजनीतिक क्षितिज पर अल्पांश के लिए एक उल्का पिण्ड की तरह चमके और लुप्त होने से पहले वह लाखों लोगों के लिए एक नये भारत की आत्मा और आशाओं का प्रतीक बन गये, उन लोगों के लिए, जिन्हें मृत्यु का डर नहीं था, जो साम्राज्यवादी अंकुश को उतार फेंकने और अपने महान देश में एक स्वतन्त्र राज्य का भवन खड़ा करने के लिए कृतसंकल्प थे।

भगतसिंह और उनके साथियों जैसे निडर क्रान्तिकारियों का बलिदान व्यर्थ नहीं था। उनके दल के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मुट्ठीभर नौजवान क्रान्ति नहीं ला सकते, कि बड़े धीरज और परिश्रम के साथ जनसाधारण के बीच काम करना चाहिए, लोगों को संघर्ष के लिए संगठित करना चाहिए, ठोस कार्यनीतियाँ तैयार करना, उन पर अमल करना तथा लोगों को सत्ता के अन्तिम संघर्ष की ओर ले जाना चाहिए।

(1981)

टिप्पणियाँ

1. अ. व. राइकोव, 'भगतसिंह और उनकी विचारधारात्मक धरोहर', 'नरोदी आज़ीइ ई आफ़्रीकी' ('एशिया और अफ़्रीका के जनगण'), अंक 1, 1971 (रूसी में)
2. ल.व. मित्रोखिन, 'लेनिन के बारे में भारत', 'नाऊका' ('विज्ञान') प्रकाशन, मास्को, 1971, पृष्ठ 124–130 (रूसी में)
3. M. Windmiller and G.D. Overstreet, Communism in India, Berkley, 1959, p. 240
4. पूरा पत्र परिशिष्ट में देखें
5. J. Sanyal, Sardar Bhagat Singh, Lahore, 1930, p. 104

सान्याल की पुस्तक पर औपनिवेशिक अधिकारियों ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। उल्लेखनीय है कि भगतसिंह और उनके साथियों के बारे में पुस्तकों, कविताओं और उनकी रक्षा की अपीलों का निषिद्ध साहित्य की सूची में विशेष स्थान था। अमेरिकी शोधकर्ता एन. जेरल्ड बैरियर

की पुस्तक में सोलह ऐसे प्रकाशन गिनाये गये हैं (देखें : N. Gerald Barrier, Banned Controversial Literature and Political Control in British India, 1907-1947, pps. 224-225)

6. टॉमस जैफ़रसन (1743–1828) – अमेरिकी राजनेता, 1801–1809 में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति

7. ज्याँ जाक रूसो (1712–1778) – फ़्रांसीसी दार्शनिक और प्रबोधक

8. टॉमस पेन (1737–1809) – अमेरिकी और ब्रिटिश सामाजिक एवं राजनीतिक नेता, प्रबोधकों के क्रान्तिकारी पक्ष के प्रतिनिधि

9. पैट्रिक हेनरी (1736–1799) – अमेरिकी राजनीतिज्ञ और वक्ता

10. कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र', 1847–1848 (का. मार्क्स, फ़्रे. एंगेल्स, संकलित रचनाएँ, तीन खण्डों में, हिन्दी संस्करण, मास्को, प्रगति प्रकाशन, खण्ड 1, भाग 1, 1978, पृष्ठ 152–153)

11. फ़्रे. एंगेल्स, 'जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति', 1851–1852 (का. मार्क्स, फ़्रे. एंगेल्स, संकलित रचनाएँ, तीन खण्डों में, खण्ड 1, भाग 2, 1978, पृष्ठ 103)

12. व्ला. इ. लेनिन, 'सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्सकी', 1918 (व्ला. इ. लेनिन, संकलित रचनाएँ, दस खण्डों में, खण्ड 8, 1984, पृष्ठ 88

13. व्ला. इ. लेनिन, 'सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की', 1918 (व्ला. इ. लेनिन, संकलित रचनाएँ, दस खण्डों में, खण्ड 8, 1984, पृष्ठ 137)

14. J. Sanyal, Sardar Bhagat Singh, Lahore, 1930, p. 104

15. Ibid., p. 103. वीरेन्द्र सिन्धू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि भगतसिंह रूसी क्रान्ति को, उसने जो रास्ते तय किये थे और जो नतीजे हासिल किये थे, उनको समझ पाने के लिए रात दिन प्रयास करते रहे

16. N. K. Singh, The impact of the Marxist ideas on Indian Revolutionary Movement after the October Revolution, Mitteilgen des Institus fur Orientforschung, BD. XVII, H. 2, 1971, S. 248

17. G. Deol, The Ghadarites and Shaheed Bhagat Singh, Peoples Path, March 1968

18. S.S. Josh, Baba Sohan Singh Bhakna, New Delhi, 1970, pp. 61 and 62

19. Peoples Path, June 1968, p. 17

20. N. K. Singh, The Impact of the Marxist Ideas on Indian Revolutionary Movement after the October Revolution., p. 247

21. Ibid., p. 71

22. B. Hardas, Armed Struggle for Freedom, Poona, 1958. pp. 383-389

23. M. N. Gupta, History of the Indion Revolutionary Movement, Bombay-New Delhi, 1972, p. 132

24. इस भूमिका का सारांश 'लिंक' ने 24 अगस्त, 1969 के अंक में छापा था।

25. Baba Prithvi Singh Azad, In Lenin's Land, New Delhi, 1978, pp. 29, 32 and 35

26. Bejoy Kumar Sinha, the New Man in The Soviet Union, Peoples Publishing House, New Delhi, 1971, p. 2

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक

भगतसिंह द्वारा जेल में (1929-31)
अध्ययन के दौरान लिये गये
नोट्स और उद्धरण

नोटबुक खोलते ही पहले पेज (टाइटिल पेज) पर अंग्रेज़ी में लिखा है:

"भगतसिंह के लिए
चार सौ चार (404) पृष्ठ..."

नीचे एक हस्ताक्षर है और 12.9.29 की तिथि दी गयी है। स्पष्ट है कि यह प्रविष्टि जेल अधिकारियों द्वारा भगतसिंह को कापी देते समय की गयी है।

इसके नीचे भगतसिंह के दो पूरे और दो लघु हस्ताक्षर हैं।

पृष्ठ के ऊपरी दायें किनारे पर भी अंग्रेज़ी में भगतसिंह का नाम लिखा है। *(देखें सामने का पृष्ठ)*

जेल मैनुअल/नियमावली के जानकार जानते होंगे कि जब भी कोई क़ैदी लिखने के लिए कापी माँगता है तो जेल अधिकारी को कापी के शुरू और अन्त में ऐसा लिखना होता है और क़ैदी को भी प्राप्त करते समय वहाँ हस्ताक्षर करना होता है। भगतसिंह के हस्ताक्षर (अंग्रेज़ी में) टाइटिल पेज पर भी मौजूद हैं और 12.9.29 की तिथि के साथ कापी के अन्त में भी।

नोटबुक की जो डुप्लीकेटेड/हस्तलिखित प्रतिलिपि जी.बी. कुमार हूजा को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में मिली, उसमें नीचे बायें कोने पर अंग्रेज़ी में यह भी लिखा हुआ था : "प्रतिलिपि शहीद भगतसिंह के भतीजे अभय कुमार सिंह द्वारा तैयार।"

नोटबुक आम स्कूली कॉपी के आकार की थी, लगभग 6.75 X 8.50 इंच या 17.50 X 21 सेण्टीमीटर।

– सम्पादक

Bhagat Singh Paper

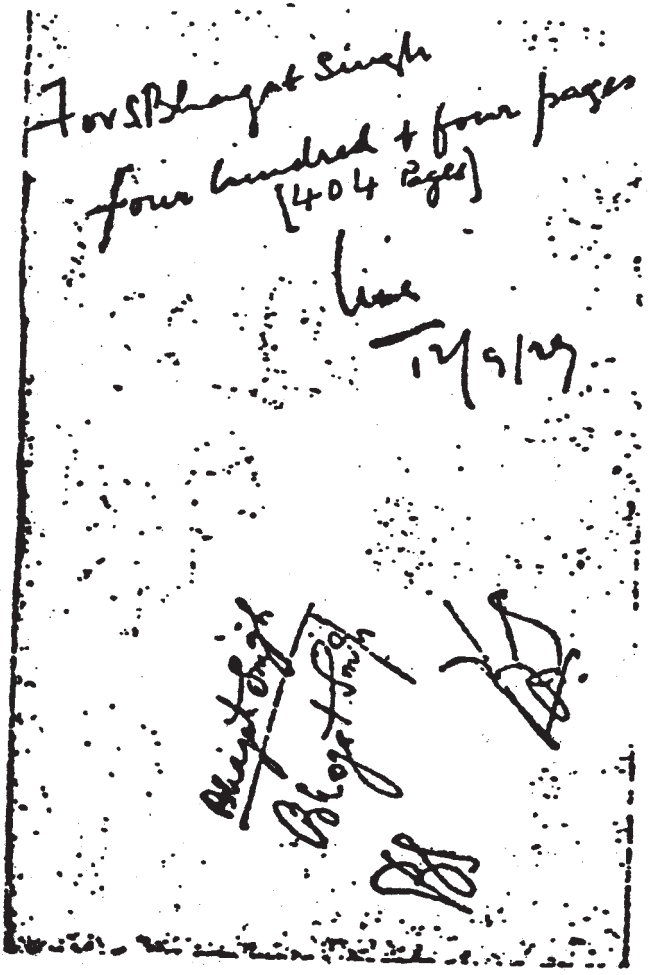

Copy by Abhey Kumar Singh
Nephew of Shaheed Bhagat Singh

पृष्ठ 2 (2)[1]

ज़मीन के माप[2] :

जर्मन 20 हेक्टेयर – 50 एकड़ अर्थात 1 हेक्टेयर = 2½ एकड़

1. नोटबुक की पृष्ठ संख्या टाइटिल पृष्ठ से गिनी गयी है। कोष्ठक में दी गयी संख्या उन पृष्ठों की है जिन पर लिखा हुआ है। उदाहरण के लिए पृष्ठ 2 (2) के बाद तीन पृष्ठ सादे हैं और अगली लिखावट पृष्ठ 6 (3) पर है। नोटबुक में बीच-बीच में कुछ पृष्ठ नहीं हैं तथा कई पृष्ठ ख़ाली छोड़े हुए हैं। कुल 145 पृष्ठों पर भगतसिंह ने नोट्स लिये हैं।
2. नोटबुक के पृष्ठ दो पर ज़मीन की माप सम्बन्धी सिर्फ़ इन्हीं दो इकाइयों – हेक्टेयर और एकड़ की आपसी तुलना अंकित है।

पृष्ठ ६ (३)

सम्पत्ति से मुक्ति – "सम्पत्ति की स्वतन्त्रता"...जहाँ तक छोटे पूँजीपति और किसान सम्पत्तिधारकों का सवाल है, "सम्पत्ति से मुक्ति" बन गयी।

विवाह अपनेआप में, पहले की भाँति ही, वेश्यावृत्ति का क़ानूनी तौर पर स्वीकृत रूप, औपचारिक आवरण, बना रहा...।

(सोशलिज़्म, साइण्टिफ़िक एण्ड यूटोपिया)[1]

दिमाग़ी ग़ुलामी – "एक शाश्वत सत्ता ने मानवसमाज को वैसा ही रचा, जैसा आज वह है, तथा 'श्रेष्ठतर' और 'सत्ता' के प्रति समर्पण दैवी इच्छा से ही 'निम्नतर' वर्गों पर लागू किया गया है।" उपदेशक गण, उपदेश मंच और प्रेस की ओर से दिये जाने वाले इस सन्देश ने आदमी के दिमाग़ को सम्मोहित कर रखा है और यह शोषण के सबसे मज़बूत स्तम्भों में से एक है।

(*ओरिजिन ऑफ़ द फ़ैमिली* में अनुवादक की भूमिका)[2]

पृष्ठ ७ (४)

एंगेल्स कृत द *ओरिजिन ऑफ़ द फ़ैमिली...*

आदिम समाज के इतिहास में एक तर्कसंगत व्यवस्था प्रस्तुत करने का प्रयास सबसे पहले मार्गन ने किया।[3]

वह इसे तीन मुख्य युगों में बाँटता है :

1. असभ्यता, 2. बर्बरता, 3. सभ्यता

1. असभ्यता पुन: तीन अवस्थाओं में विभाजित :

1. निम्नतर; 2. मध्य; 3. उच्चतर

1. **असभ्यता की निम्नतर अवस्था** : मानवजाति की शैशवावस्था।

---

1. फ़्रेडरिक एंगेल्स; *समाजवाद, काल्पनिक एवं वैज्ञानिक*
2. फ़्रेडरिक एंगेल्स; *परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति*
3. लुइस एच. मार्गन (1818–1881); अमेरिकी समाजशास्त्री जिन्होंने 1877 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *प्राचीन समाज (Ancient Society, or Researches in the Lines of Human Progress from Savagery through Barbarism to Civilization)* में विस्तृत सामाजिक अध्ययन के आधार पर इतिहास विकास की भौतिकवादी धारणा को पुष्ट किया था। एंगेल्स ने अपनी पुस्तक *परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति* लिखने में मुख्य रूप से मार्गन द्वारा प्रस्तुत सामग्री को आधार बनाया था।

1. पेड़ों पर रहना। 2. भोजन था फल, गिरीफल और कन्दमूल। 3. सुसंगत बोली का विकास इस काल की प्रधान उपलब्धि।

2. **मध्य अवस्था :** 1. आग की खोज। 2. मछली भोजन के रूप में प्रयुक्त। 3. शिकार के लिए पत्थर के औज़ार आविष्कृत। 4. मानव मांसभक्षण अस्तित्व में आ जाता है।[1]

3. **उच्चतर अवस्था :** 1. धनुष और बाण, कुम्हारी नहीं। 2. ग्रामीण बस्तियाँ। 3. घर बनाने में इमारती लकड़ी का इस्तेमाल। 4. कपड़े बुने जाने लगे।

असभ्यता की अवस्था में धनुष और बाण वैसे ही थे, जैसे बर्बरता की अवस्था में लोहे की तलवार, और सभ्यता की अवस्था में आग्नेयास्त्र – यानी, प्रभुत्व के हथियार।

पृष्ठ ४ (ऽ)

2. बर्बरता :

1. निम्नतर अवस्था : 1. कुम्हारी का आरम्भ। पहले लकड़ी के बरतनों पर मिट्टी की परतें चढ़ायी जाती थीं, लेकिन बाद में चलकर मिट्टी के बरतन आविष्कृत कर लिये गये।

2. मानवजातियाँ दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित :

(i) पूर्वी, जो जानवर पालती थीं और अनाज पैदा करती थीं;

(ii) पश्चिमी, जिनके पास सिर्फ़ 'मक्का' था।

2. मध्य अवस्था :

(अ) *पश्चिमी गोलार्द्ध :* अर्थात अमेरिका में वे खाद्य-फ़सलें उगाते थे, (खेती और सिंचाई), और घर बनाने के लिए ईंटें पकाते थे।

(ब) *पूर्वी :* वे दूध और मांस के लिए पशुपालन करती थीं। इस अवस्था में कोई खेती नहीं।

3. उच्चतर अवस्था :

1. कच्चे लोहे को गलाना।

2. दस्तावेज़ लिखने के लिए अक्षर-लिपि का विकास और उसका इस्तेमाल। इस अवस्था में अनेक आविष्कार होते हैं। यूनानी नायकों का यही काल है।

3. बड़े पैमाने पर मक्का की खेती करने के लिए पशुओं द्वारा लोहे के हल खींचे जाते हैं।

4. जंगलों की कटाई, तथा लोहे की कुल्हाड़ियाँ एवं लोहे की कुदालें इस्तेमाल में आने लगीं।

---

1. यहाँ भगतसिंह ने हाशिये पर लिखा है : *वेनिज़न = शिकार से प्राप्त पशु-मांस*

5. महान उपलब्धियाँ : (i) लोहे के उन्नत औज़ार, (ii) भाथियाँ, (iii) जान्ता, (iv) कुम्हार का चाक, (v) तेल और शराब निकालना, (vi) धातुओं की ढलाई, (vii) गाड़ी और रथ (viii) जहाज़-निर्माण [पृष्ठ 9 (6)] (ix) कलात्मक वास्तु-शिल्प, (x) शहर और क़िलों का निर्माण, (xi) होमर युग और सम्पूर्ण मिथकशास्त्र

इन उपलब्धियों के साथ ही, यूनानी तीसरी अवस्था - **"सभ्यता"** - में प्रवेश कर जाते हैं।

संक्षेप में :

1. *असभ्यता* : मुख्य तौर पर तैयारशुदा प्राकृतिक उत्पादों के विनियोजन का काल; मानवीय बुद्धि-कुशलता मुख्यत: इस विनियोजन में सहायक सिद्ध होने वाले उपयोगी औज़ारों का आविष्कार करती है।

2. *बर्बरता :* पशुपालन, कृषि एवं मानवीय अभिकर्ता द्वारा प्रकृति की उत्पादकता बढ़ाने के नये-नये तरीक़ों का ज्ञान हासिल करने का काल।

3. *सभ्यता :* प्राकृतिक उत्पादों के व्यापकतर उपयोग सीखने का, मैन्युफ़ैक्चरिंग का, तथा कला का काल।

इस प्रकार, हमें, मानव-विकास की तीन मुख्य अवस्थाओं से आमतौर पर मेल खाते हुए परिवार के तीन मुख्य रूप मिलते हैं :

1. असभ्यता के काल में : "यूथ विवाह"

2. बर्बरता के काल में : युग्म परिवार

3. सभ्यता के काल में : एकनिष्ठ विवाह के साथ-साथ व्यभिचार और वेश्यावृत्ति। युग्म परिवार और एकनिष्ठ विवाह के दरम्यान, बर्बरता की उच्चतर अवस्था में, दासियों के ऊपर पुरुषों के शासन और बहुपत्नी-विवाह का प्रवेश।

(पृष्ठ 90)

पृष्ठ 10 (7)

विवाह के दोष

ख़ासतौर से एक दीर्घकालिक लगाव, दस मामलों में से नौ में, व्यभिचार का एक पक्का प्रशिक्षण स्कूल होता है। *(पृष्ठ 91)*

समाजवादी क्रान्ति और विवाह संस्था

अब हम एक ऐसी सामाजिक क्रान्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप एकनिष्ठ विवाह का वर्तमान आर्थिक आधार उतने ही निश्चित रूप

से मिट जायेगा, जितने निश्चित रूप से एकनिष्ठ विवाह के अनुपूरक का, वेश्यावृत्ति का आर्थिक आधार मिट जायेगा। एकनिष्ठ विवाह की प्रथा एक व्यक्ति के – और वह भी एक पुरुष के – हाथों में बहुत-सा धन एकत्रित हो जाने के कारण और इस इच्छा के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी कि वह यह धन किसी दूसरे की सन्तान के लिए नहीं, केवल अपनी सन्तान के लिए छोड़ जाये। इस उद्देश्य के लिए स्त्री की एकनिष्ठता आवश्यक थी, पुरुष की नहीं। इसलिए नारी की एकनिष्ठता से पुरुष के खुले या छिपे बहुपत्नीत्व में कोई बाधा नहीं पड़ती थी।

परन्तु आने वाली सामाजिक क्रान्ति स्थायी दायाद्य धन-सम्पदा के अधिकतर भाग को – यानी उत्पादन के साधनों को – सामाजिक सम्पत्ति बना देगी और ऐसा करके सम्पत्ति की विरासत के बारे में इस सारी चिन्ता को अल्पतम कर देगी। पर एकनिष्ठ विवाह चूँकि आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुआ था, इसलिए क्या इन कारणों के मिट जाने पर वह भी मिट जायेगा? *(पृष्ठ 91)*[1]

पृष्ठ 11 (8)

"भर दो प्याला हे प्रिय मेरे, जो दूर करे
आज विगत के दुख औ' आगत के भय को –
कल? – क्यों, कल हो सकता मैं हो जाऊँ
सात हज़ार वर्षों के कल का अतीत।

... ...

यहाँ घने गाछ के नीचे, साथ में रोटी,
मदिरा की सुराही, शायरी की किताब – और तुम
गा रही बगल में मेरे इस निर्जन बीहड़ में!
अब तो स्वर्ग बना यह निर्जन बीहड़ ही!

"उमर ख़य्याम"

राज्य : राज्य की पूर्वापेक्षा है बल प्रयोग की एक सार्वजनिक सत्ता, जो अपने सदस्यों के सम्पूर्ण निकाय से पृथक हो चुकी हो।

– (एंगेल्स) (पृष्ठ 116)[2]

---

1. एंगेल्स; *परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति*
2. वही

राज्य की उत्पत्ति :

...पुराने ज़माने में क़बीलों के बीच होने वाले युद्धों द्वारा भ्रष्ट होते हुए नया रूप धारण – जीविकोपार्जन के साधन के रूप में ढोर, दास और धन-दौलत लूटने के लिए ज़मीन और पानी के रास्ते से बाक़ायदा धावे; संक्षेप में, धन-दौलत को दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ समझा जाने लगा, उसे प्रशंसा और आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा और पुराने गोत्र-समाज की संस्थाओं और प्रथाओं को भ्रष्ट किया जाने लगा ताकि धन-दौलत को ज़बरदस्ती लूटना उचित ठहराया जा सके। अब केवल एक चीज़ दरकार थी : ऐसी संस्था की, जो न केवल अलग-अलग व्यक्तियों की नयी हासिल की हुई सम्पत्ति को गोत्र-व्यवस्था की पुरानी सामुदायिक परम्पराओं से बचा सके, जो निजी स्वामित्व को, जिसकी पहले अधिक प्रतिष्ठा नहीं थी, न केवल पवित्र क़रार दे और इस पवित्रता को मानवसमाज का चरम लक्ष्य घोषित कर दे, बल्कि जो सम्पत्ति प्राप्त करने, और इसलिए धन-दौलत को लगातार बढ़ाते रहने के नये और विकसित होते हुए तरीक़ों पर सार्वजनिक मान्यता की मुहर भी लगा दे; ऐसी संस्था की, जो न केवल समाज के नवजात वर्ग-विभाजन को, बल्कि सम्पत्तिवान वर्ग द्वारा सम्पत्तिहीन वर्ग के शोषण किये जाने के अधिकार को और सम्पत्तिहीन वर्ग पर सम्पत्तिवान वर्ग के शासन को भी स्थायी बना दे।

और यह संस्था भी आ पहुँची। **राज्य** का आविष्कार हुआ।

(पृष्ठ 129-130)[1]

———o———

एक अच्छी सरकार की परिभाषा : "अच्छी सरकार स्व-शासन का विकल्प कभी नहीं हो सकती।"

"हेनरी कैम्पबेल बैनरमैन"[2]

———o———

"हमें यक़ीन है कि सरकार का केवल एक ही रूप है, चाहे इसे जिस नाम से भी पुकारा जाये, जिसमें अन्तिम नियन्त्रण जनता के हाथों में होता है।"

"अर्ल ऑफ़ बालफोर"[3]

———o———

1. एंगेल्स; *परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति*
2. सर हैनरी कैम्पबेल-बैनरमैन (1836-1908) : ब्रिटिश उदारवादी राजनेता, 1905-08 तक प्रधानमन्त्री रहे।
3. सम्भवत: आर्थर जेम्स (1848-1930) : प्रथम अर्ल ऑफ़ बालफोर, ब्रिटिश राजनयिक एवं प्रधानमन्त्री (1902-1905)

धर्म : "धर्म के प्रति मेरा अपना दृष्टिकोण वही है जो ल्यूक्रेतियस का है। मैं इसे भय से पैदा हुई एक बीमारी के रूप में, और मानवजाति के लिए एक अकथनीय दुख के रूप में मानता हूँ। लेकिन, मैं इससे इन्कार नहीं कर सकता कि इसने सभ्यता में कुछ योगदान भी किया है। इसने आरम्भिक काल में पंचांग-निर्धारण में मदद की, और इसी के चलते मिस्र के पुरोहितों ने ग्रहणों का लेखा-जोखा इतनी सावधानी के साथ रखा कि बाद में वे इनके बारे में भविष्यवाणी कर सकने में समर्थ हो गये। इन दो सेवाओं को तो मैं मानने के लिए तैयार हूँ, लेकिन और किसी के बारे में मैं नहीं जानता।

-बर्ट्रेण्ड रसेल[1]

पृष्ठ 13 (10)

परोपकारी निरंकुशता : मॉण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड[2] ने ब्रिटिश सरकार को एक 'परोपकारी निरंकुशता' कहा है और, ब्रिटिश लेबर पार्टी के साम्राज्यवादी नेता, रैम्जे मैक्डोनाल्ड[3] के अनुसार "एक 'परोपकारी निरंकुशता' द्वारा किसी देश पर शासन करने के सभी प्रयासों में, शासितों को कुचल डाला जाता है। वे व्यवहारशील नागरिक नहीं, आज्ञाकारी प्रजा बन जाते हैं। उनका साहित्य, उनकी कला, उनकी आत्मिक अभिव्यक्ति मर जाती है।"

———o———

भारत सरकार : भारत के प्रभारी विदेशमन्त्री, आनरेबल एस. मॉण्टेग्यू ने हाउस ऑफ़ कामंस में 1917 में कहा "भारत सरकार, आधुनिक उद्देश्यों के लिए किसी भी काम लायक होने की दृष्टि से बेहद जड़, बेहद निर्मम, बेहद आदिम, और बेहद दकियानूस है। भारत सरकार असमर्थनीय है।"

———o———

1. महान गणितज्ञ और दार्शनिक बर्ट्रेण्ड आर्थर विलियम रसेल (1872-1972)
2. भारत में संवैधानिक सुधारों के सम्बन्ध में मॉण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट (1918) जिसके आधार पर भारत सरकार अधिनियम, 1919 के तहत दोहरा शासन लागू हुआ। एडविन सैमुअल मॉण्टेग्यू (1877-1924) 1917 से 1922 तक भारत के मामलों का प्रभारी ब्रिटिश विदेशमन्त्री और लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड 1916 से 1920 तक भारत का वायसराय रहा।
3. जेम्स रैम्जे मैक्डोनाल्ड (1866-1937) : ब्रिटिश राजनयिक और ब्रिटिश लेबर पार्टी का संस्थापक सदस्य। 1923-24 में तथा 1929-35 में ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री रहा।

भारत में ब्रिटिश शासन : डॉ. रथफ़ोर्ड[1] के शब्द : "भारत में ब्रिटिश शासन जैसे चलाया जा रहा है वह दुनिया में सरकार की सबसे निकृष्ट और सबसे अनैतिक प्रणाली – एक राष्ट्र द्वारा दूसरे का शोषण – है।"

आज़ादी और अंग्रेज़ लोग "अंग्रेज़ लोग आज़ादी को स्वयं अपनी ख़ातिर ही प्यार करते हैं। वे अन्याय की सभी कार्रवाइयों से घृणा करते हैं, सिवाय उनके जो वे स्वयं करते हैं। वे ऐसे आज़ादी-प्रेमी लोग हैं कि कांगो में दख़लअन्दाज़ी करते हैं, और बेल्जियनों पर "शर्म-शर्म" चिल्लाते हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि उनकी एड़ियाँ भारत की गरदन पर हैं।"

– *एक आयरिश लेखक*[2]

पृष्ठ 14 (11)

भीड़ का प्रतिशोध

..."अब आइये हम देखें कि कैसे लोग इस ढंग से सज़ा देने के विचार के कायल हुए।

"वे इसे उन्हीं सरकारों से सीखते हैं जिनके अन्तर्गत वे जी रहे होते हैं, और बदले में वही सज़ा देते हैं जिसको भोगने के वे आदी हो चुके होते हैं। सूली पर टँगे सिर, जो वर्षों तक टेम्पल बार के ऊपर लगे रहे, पेरिस में सूली पर टाँगे जाने वाले सिरों के दृश्य की भयावहता से तनिक भी भिन्न नहीं थे; फिर भी अंग्रेज़ सरकार ने यही किया। शायद कहा जा सकता है कि इससे आदमी को कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता कि मरने के बाद उसके साथ क्या किया जाता है; लेकिन जीवितों को इससे काफ़ी फ़र्क़ पड़ता है, इससे या तो उनकी भावनाएँ विदीर्ण हो जाती हैं या उनके दिल पत्थर हो जाते हैं, और दोनों ही सूरतों में, यह उन्हें शिक्षित करता है कि जब सत्ता उनके हाथ में आये तो वे कैसे सज़ा दें।

"तब कुल्हाड़ी से जड़ पर ही प्रहार करो, और सरकारों को मानवता सिखा दो। ये उनकी खूंखार सज़ाएँ ही हैं जो मानवजाति को भ्रष्ट करती हैं...। जनसामान्य के सामने प्रदर्शित इन क्रूर दृश्यों का प्रभाव संवेदनशीलता को ख़त्म करने या प्रतिशोध भड़काने के रूप में सामने आता है, तथा विवेक के बजाय आतंक के

---

1. डॉ. वी.एच. रदरफ़ोर्ड की पुस्तक *मॉडर्न इण्डिया : इट्स प्रोब्लम्स एण्ड देयर सोल्यूशंस*, लन्दन, 1927 से
2. सम्भवत: उपरोक्त पुस्तक में उद्धृत

द्वारा लोगों पर शासन करने की इसी निकृष्ट और झूठी धारणा के जरिये वे मिसाल बनते हैं।"

(राइट्स ऑफ़ मैन, (पृष्ठ 32), टी. पेन)[1]

पृष्ठ 15 (12)

राजा और राजतन्त्र : राष्ट्र ने लुई चौदहवें के विरुद्ध नहीं, बल्कि सरकार के निरंकुश सिद्धान्तों के विरुद्ध विद्रोह किया। ये सिद्धान्त मूलत: उससे नहीं, बल्कि कई सदी पहले स्थापित आरम्भिक व्यवस्था से पैदा हुए थे, और इतनी गहराई में जड़ जमा चुके थे कि ख़त्म नहीं किये जा सके थे, तथा परजीवियों एवं लुटेरों का गन्दगी से भरा हुआ अस्तबल भी इतने घृणास्पद रूप से गन्दा था कि एक सम्पूर्ण क्रान्ति ही उसे साफ़ कर सकती थी। जब कोई काम करना ज़रूरी हो जाता है, तो उसे दत्त-चित्त होकर करना चाहिए, या उसे करने की कोशिश ही नहीं करनी चाहिए...। राजा और राजतन्त्र दो अलग-अलग भिन्न चीज़ें थीं; और पूर्वोक्त (यानी राजा - स.) या उसके सिद्धान्तों के ही विरोध में यह विद्रोह हुआ और क्रान्ति की गयी।

- (पृष्ठ 19)[2]

प्राकृतिक और नागरिक अधिकार मनुष्य ने समाज में प्रवेश इसलिए नहीं किया कि वह पहले से भी बदतर हो जाये, बल्कि इसलिए कि उसके अधिकार पहले से बेहतर ढंग से सुरक्षित हों। उसके प्राकृतिक अधिकार ही उसके सभी नागरिक अधिकारों की आधारशिला हैं।

प्राकृतिक अधिकार वे हैं जो मनुष्य के जीने के अधिकार से सम्बन्धित हैं (बौद्धिक-मानसिक आदि)।

नागरिक अधिकार वे हैं जो मनुष्य के समाज का एक सदस्य होने से सम्बन्धित हैं।

- (पृष्ठ 44)[3]

---

1. टॉमस पेन की कृति, द *राइट्स ऑफ़ मैन;* अंग्रेज़ लेखक और प्रचारक टॉमस पेन (1737-1809) अमेरिकी स्वतन्त्रता-संग्राम और फ़्रांसीसी क्रान्ति में अपनी अविस्मरणीय भूमिका के लिए सारी दुनिया में विख्यात है; उसका परचा *कामन सेंस* तथा यह कृति *राइट्स ऑफ़ मैन,* इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। अमेरिकी स्वतन्त्रता-संग्राम के दौरान लिखा गया *राइट्स ऑफ़ मैन* अमेरिकी संविधान का मुख्य आधार बना।
2. द *राइट्स ऑफ़ मैन* से
3. वही

पृष्ठ 16 (13)

राजा की तनख़्वाह : एक व्यक्ति के भरण-पोषण के लिए, किसी देश के सार्वजनिक टैक्सों में से, दस लाख स्टर्लिंग सालाना देने की बात करना अमानवीय है, जबकि हज़ारों लोग जो इसमें योगदान करने के लिए मजबूर किये जाते हैं, अभाव से त्रस्त और बदहाली से जूझ रहे हैं। **सरकार जेलों और राजमहलों के बीच, या कंगाली और शान-शौक़त के बीच किसी समझौते के रूप में नहीं होती;** यह इसलिए नहीं गठित की जाती कि ज़रूरतमन्द से उसकी दमड़ी भी लूट ली जाये और ख़स्ताहालों की दुर्दशा और बढ़ा दी जाये।

- (पृष्ठ 204)[1]

"मुझे आज़ादी दो या मौत"

"...मामले को हलका बनाना बेकार है, महाशय। शरीफ लोग शान्ति, शान्ति चिल्ला सकते हैं - लेकिन कोई शान्ति नहीं है। युद्ध तो वास्तव में शुरू ही हो चुका है। अब अगला झंझावात जो उत्तर से उठकर...हमारे कानों तक पहुँच रहा है, गुंजायमान हथियारों की टकराहटों का है। हमारे बन्धु-बान्धव तो पहले ही से लड़ाई के मैदान में हैं। हम यहाँ बेकार क्यों खड़े हैं? आख़िर शरीफ लोग चाहते क्या हैं? वे क्या करेंगे? क्या जीवन इतना प्यारा या शान्ति इतनी मीठी है कि उसे बेड़ियों और ग़ुलामी की क़ीमत पर भी ख़रीद लिया जाये?

रोको इसे, हे सर्वशक्तिमान ईश्वर। मैं नहीं जानता कि और लोग कौन-सा रास्ता अख़्तियार करेंगे। लेकिन जहाँ तक मेरी बात है, मुझे "आज़ादी" दो या "मौत"।

- पैट्रिक हेनरी[2]

मज़दूर का अधिकार :

'जो कोई भी कठिन श्रम से कोई चीज़ पैदा करता है उसे यह बताने के लिए किसी ख़ुदाई पैग़ाम की ज़रूरत नहीं कि पैदा की गयी चीज़ पर उसी का अधिकार है।"

- राबर्ट जी. इंगरसोल[3]

---

1. वही
2. *पैट्रिक हेनरी* (1736-1790) : अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के नेताओं में से एक, प्रखर वक्ता और सांसद
3. रॉबर्ट जी. इंगरसोल (1832-1899) : अमेरिकी वकील, वक्ता और लेखक

पृष्ठ 17 (14)

"लोगों के सिर कलम कर दिये जाने को तो हम भयंकर मानते हैं, पर हमें जीवन-पर्यन्त बरक़रार रहने वाली मृत्यु की उस भयंकरता को देखना नहीं सिखाया गया है जो ग़रीबी और अत्याचार द्वारा व्यापक आबादी पर थोप दी गयी है।"

– *मार्क ट्वेन*[1]

अराजकतावादी : "...साहित्य के चयन में अराजकतावादियों और विद्रोह भड़काने वालों को भी स्थान मिल जाता है; और यदि उसकी कुछ चीज़ें पाठक को महज आक्रोश का उद्‌गार ही लगें, तो भी मैं कहना चाहूँगा कि इसके लिए साहित्य के समर्पित चयनकर्ता को दोष नहीं देना चाहिए, यहाँ तक कि रचनाकार को भी दोष नहीं देना चाहिए – उसे (यानी पाठक को – स.) को स्वयं अपनेआप को ही दोष देना चाहिए, कि उसने उन परिस्थितियों की मौजूदगी में चुप्पी साध ली है, जिनके चलते उसके देश-समाज के लोग पागलपन और निराशा की चरम सीमा पर जा पहुँचे हैं।"

– *अप्टन सिंक्लेयर*[2], भूमिका, 19, *क्राइ फ़ॉर जस्टिस*

बूढ़ा मज़दूर : "...वह (बेरोज़गार बूढ़ा मज़दूर) उम्र से, प्रकृति से, और परिस्थितियों से जूझ रहा था; समाज, क़ानून और व्यवस्था का सारा बोझ उसके ऊपर भारी पड़ता हुआ, उसे अपना आत्मसम्मान और आज़ादी खो देने पर मजबूर कर रहा था...। उसने फार्मों के दरवाज़े खटखटाये और वह सिर्फ़ मनुष्य में ही अच्छाई पा सका – क़ानून और व्यवस्था में नहीं, बल्कि सिर्फ़ मनुष्य में ही।"

– *रिचर्ड जेफरीज़ (80)*[3]

पृष्ठ 18 (15)

ग़रीब मज़दूर : "...और हम लोग, जिन्होंने इस काम को अंजाम देने का बीड़ा उठाया, इस दुनिया में कुजात ही रहे। एक अन्धी क़िस्मत, एक विराट निर्मम तन्त्र ने काट-छाँटकर हमारे अस्तित्व का ढांचा निर्धारित कर दिया। हम उस वक़्त तिरस्कृत हुए, जब हम सबसे अधिक उपयोगी थे, हमें

1. असली नाम सैमुअल लैंग्हॉर्न क्लीमेंस (1835-1910) : मशहूर अमेरिकी उपन्यासकार और व्यंग्यकार

2. मशहूर अमेरिकी उपन्यासकार और समाजवादी-सुधारक (1878-1968)। *क्राइ फ़ॉर जस्टिस* सामाजिक प्रतिरोध के साहित्य का एक अनूठा संकलन है जो सिंक्लेयर के सम्पादन में 1915 में प्रकाशित हुआ था। आगे कई पृष्ठों तक के नोट्स इसी पुस्तक से लिये गये हैं।

3. अंग्रेज़ प्रकृतिवादी और उपन्यासकार (1848-1887)

उस वक़्त दुत्कार दिया गया, जब हमारी ज़रूरत नहीं थी, और हमें उस वक़्त भुला दिया गया, जब हमारे ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूटा हुआ था। हमें बीहड़-बंजर साफ़ करने के लिए, उसकी सारी आदिम भयंकरताओं को दूर करने के लिए, तथा उसके विश्व-पुरातन अवरोधों को छिन्न-भिन्न कर डालने के लिए भेज दिया जाता। हम जहाँ भी काम करते, वहाँ एक दिन एक नया शहर जन्म ले लेता; और जब यह जन्म ले ही रहा होता, तब यदि हममें से कोई वहाँ चला जाता, तो उसे 'बिना निश्चित पते का आदमी' कहकर पकड़ लिया जाता और सिरफिरा-आवारा कहकर उस पर मुक़दमा चलाया जाता।"

- (पैट्रिक मैकगिल की कृति,
चिल्ड्रेन ऑफ़ द डेड एण्ड, सी.जे. 48 से)[1]

नैतिकता : "नैतिकता और धर्म उस व्यक्ति के लिए महज शब्दभर हैं जो आजीविका का जुगाड़ करने के लिए गन्दे नाले में मछली मारता है, और जाड़े की रात में कड़ाके की शीतलहरी से बचने के लिए सड़कों पर पीपों के पीछे पनाह लेता है।"

- होरेस ग्रीले (128)[2]

भूख : "शासक के लिए उचित यही है कि उसके शासन में कोई भी आदमी ठण्ड और भूख से पीड़ित न रहे। आदमी के पास जब जीने के मामूली साधन भी नहीं रहते, तो वह अपने नैतिक स्तर को बनाये नहीं रख सकता।"

- कोंको होशी
(जापान का बौद्ध भिक्षु, 14वीं सदी, पृष्ठ 135)

पृष्ठ 11 (16)

मुक्ति

अरे मनुष्यो! करते हो गर्वोक्ति
कि तुम सन्तति हो मुक्त और वीर पितरों की,
पर यदि लेता साँस एक भी दास धरा पर,
तो क्या सचमुच तुम हो मुक्त और वीर?
यदि तुमको अहसास नहीं जब

---

1. पैट्रिक मैकगिल (1889-1963) : आइरिश पत्रकार, कवि और उपन्यासकार। (सी.जे. - *क्राइ फ़ॉर जस्टिस* का संक्षिप्त)
2. अमेरिकी पत्रकार और राजनीतिज्ञ (1811-1872)

बेड़ी पीड़ा देती एक भाई को,
तो क्या सचमुच तुम नहीं अधम दास
जो क़ाबिल नहीं मुक्त होने के?
क्या है वह सच्ची मुक्ति, जो तोड़े
ज़ंजीरें बस अपनी ख़ातिर,
और भुला दे संगदिल होकर
कि मानवता का क़र्ज़ है हम पर?
नहीं, सच्ची मुक्ति तभी जब हम बाँटें
सब ज़ंजीरें, जो पहने हैं अपने भाई,
और भाव औ' कर्म से लगकर
हाँ औरों की मुक्ति में तत्पर!
दास तो वे जो भय खाते हैं स्वर देने में
गिरे हुए और दुर्बल की ख़ातिर;
दास तो वे जो नहीं चुनेंगे
घृणा, डाँट और गाली
और दुबककर मुँह मोड़ेंगे
सच से, इस पर सोच ज़रूरी;
दास तो वे जो हिम्मत न करें
दो या तीन भी हों गर सच के हक़ में।

– *"जेम्स रसेल लॉवेल" (पृष्ठ 189)*[1]

पृष्ठ 20 (11)

भरे पड़े हैं शुभ्र और निर्मल आभा के रत्न घनेरे
सागर के गहन अगाध गह्वर में,
खिलते हैं बहुतेरे फूल अनदेखे लज्जारुण होते,
और लुटा देते अपनी सुगन्ध निर्जन बयार में।[2]

आविष्कार : अब तक यह सवाल क़ायम है कि क्या अब तक किये गये सारे के सारे आविष्कार किसी भी आदमी की रोज़मर्रा की कड़ी मशक़्क़त भरी ज़िन्दगी को आसान बना पाये हैं।

– *जे.एस. मिल*[3]*, 199*

भीख : "धरती पर उस आदमी से अधिक घृणास्पद और

1. अमेरिकी कवि, निबन्धकार और सम्पादक (1819–91)
2. अंग्रेज़ कवि टॉमस ग्रे (1716–7) की रचना *एलिजी रिटेन इन एक कण्ट्री चर्चयार्ड* से
3. जॉन स्टुअर्ट मिल, अंग्रेज़ निबन्धकार और उदारवादी दार्शनिक (1808–73)

अरुचिकर और कोई नहीं है जो भीख देता है। और, वैसे ही उस आदमी से अधिक दयनीय और कोई नहीं है जो उसे स्वीकार करता है।

मक्सिम गोर्की[1], पृष्ठ 204

स्वतन्त्रता

वे मृत शरीर नवयुवकों के,
वे शहीद जो झूल गये फाँसी के फन्दे से –
वे दिल जो छलनी हो गये भूरे सीसे से,
सर्द और निष्पन्द जो वे लगते हैं, जीवित हैं और कहीं
अबाधित ओज के साथ।
वे जीवित हैं अन्य युवा-जन में, ओ राजाओ।
वे जीवित हैं अन्य बन्धु-जन में, फिर से तुम्हें चुनौती देने को तैयार।
वे पवित्र हो गये मृत्यु से –
शिक्षित और समुन्नत।

पृष्ठ 21 (18)

दफ़न न होते आज़ादी पर मरने वाले
पैदा करते हैं मुक्ति-बीज, फिर और बीज पैदा करने को।
जिसे ले जाती दूर हवा और फिर बोती है और जिसे
पोषित करते हैं वर्षा जल और हिम।
देहमुक्त जो हुई आत्मा उसे न कर सकते विच्छिन्न
अस्त्र-शस्त्र अत्याचारी के
बल्कि हो अजेय रमती धरती पर, मरमर करती,
बतियाती, चौकस करती।

(वाल्ट हिटमैन[2], पृष्ठ 268)

मुक्त चिन्तन : "यदि कोई ऐसी चीज़ हो जो मुक्त चिन्तन को बरदाश्त न कर सके, तो वह भाड़ में जाये।"

– विण्डेल फिलिप[3], पृष्ठ 271

साम्य : "राज्य दफ़ा हो जाये! मैं ऐसी क्रान्ति में भाग लूँगा। राज्य की समूची

1. मक्सिम गोर्की (1868-1936) : प्रसिद्ध रूसी सर्वहारा क्रान्तिकारी लेखक
2. वाल्ट व्हिटमैन (1819-92): प्रसिद्ध अमेरिकी कवि; उनकी विख्यात कविता *लीव्ज़ ऑफ़ ग्रास* से
3. विण्डेल फिलिप्स (1811-1884) : अमेरिकी वक्ता, सुधारक, और दासता विरोधी आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता

अवधारणा का मूलोच्छेदन कर दो, मुक्त चयन और आत्मिक बन्धुता को ही किसी एकता की एकमात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शर्तें होने की घोषणा करो, और तभी तुम एक ऐसी आज़ादी की शुरुआत करोगे जिसकी कोई सार्थकता होगी।"

– हेनरिक इब्सन[1], पृष्ठ 273

उत्पीड़न : "उत्पीड़न निश्चय ही एक समझदार आदमी को पागल बना देता है।"

– (पृष्ठ 278)[2]

पृष्ठ 22 (11)

शहीद : जो आदमी अपने साथी मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले अत्याचार का विरोध करने के प्रयास में, अपनी जान पर खेलते हुए, अपनी सारी ज़िन्दगी निछावर कर देता है, वह अत्याचार और अन्याय के सक्रिय और निष्क्रिय समर्थकों की तुलना में एक सन्त है, भले ही उसके विरोध से उसकी अपनी ज़िन्दगी के साथ-साथ अन्य ज़िन्दगियाँ भी क्यों न नष्ट हो जाती हों। ऐसे व्यक्ति पर पहला पत्थर वही मारने का हक़दार हो सकता है जिसने कभी कोई पाप न किया हो।

(पृष्ठ 287)[3]

निचला वर्ग : जब तक कोई निचला वर्ग है, मैं उसमें ही हूँ।
जब तक कोई अपराधी तत्त्व है, मैं उसमें ही हूँ।
जब तक कोई जेल में क़ैद है, मैं आज़ाद नहीं हूँ।

– यूजीन बी. डेब्स[4] (144)

सबके विरुद्ध एक

(चार्ल्स फूरिए : 1772-1837)[5]

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एक हास्यास्पद तन्त्र है, जिसमें सम्पूर्ण के अंश, इस सम्पूर्ण के विरुद्ध एक टकराव में सक्रिय हैं। हम देखते हैं कि समाज का प्रत्येक वर्ग,

---

1. हेनरिक इब्सन (1828-1906) : नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार, आधुनिक गद्य नाटक की शुरुआत करने वाले माने जाते हैं।
2. *एक्लेज़िआस्तिज़* (हिब्रू बाइबिल का एक हिस्सा) अध्याय 7, पद 7
3. अमेरिकी अराजकतावादी एमा गोल्डमान (1869-1940) के एक निबन्ध से
4. यूजीन वी. डेब्स (1855-1926): अमेरिकी समाजवादी नेता, 1918 में प्रथम विश्वयुद्ध विरोधी एक भाषण के कारण हुई दस वर्ष क़ैद की सज़ा सुनाये जाते वक़्त अदालत में बयान
5. फ्राँस्वा मेरी चार्ल्स फूरिये (1772-1837): फ्रांसीसी समाजवादी लेखक; उद्धरण का स्रोत अज्ञात

सार्वजनिक हित के स्थान पर हर तरह से, अपने निजी हित को आगे रखते हुए, दूसरे वर्गों के दुर्भाग्य की क़ीमत पर, अपने हित की कामना करता है। वकील, ख़ासतौर से धनिकों के बीच, मुक़दमेबाज़ी और मुक़दमों की कामना करता है; डॉक्टर बीमारी की कामना करता है। (यदि हर कोई बिना बीमारी के मरने लगे तो ये (डॉक्टर) वैसे ही बरबाद हो जायेंगे, जैसे यदि सारे झगड़े बातचीत से हल होने लगें तो (वकील) हो जायेंगे। सैनिक लड़ाई चाहता है, ताकि उसके आधे साथी मर जायें और उसकी तरक़्क़ी सुनिश्चित हो जाये; अन्त्येष्टि कराने वाला कफ़न-दफ़न की कामना करता है; इज़ारेदार और जमाख़ोर, अनाज की क़ीमत दुगुनी या तिगुनी करने के लिए, अकाल चाहते हैं, वास्तुकार, बढ़ई, राजगीर आगजनी चाहते हैं, ताकि सैकड़ों घर जलकर भस्म हो जायें और उनकी अपनी-अपनी शाखाओं का कारोबार चलता रहे।

– (पृष्ठ 202)

पृष्ठ 23 (20)

नया सिद्धान्त : समाज हत्या, व्यभिचार या ठगी को नज़रअन्दाज़ कर सकता है; पर वह एक नये सिद्धान्त के प्रचार को कभी माफ़ नहीं करता।

– फ्रेडरिक हैरिसन[1] (पृष्ठ 327)

आज़ादी का बिरवा : आज़ादी के बिरवे का समय-समय पर देशभक्तों और अत्याचारियों के ख़ून से सींचा जाना आवश्यक है। यही इसकी क़ुदरती खाद है।

– टॉमस जेफरसन[2] (पृष्ठ 332)

शिकागो के शहीद :

अब कोई भले ही यह कहे कि उसने भारी ग़लती की, परन्तु यदि उनकी ग़लती दस गुना भी अधिक बड़ी होती, तो भी इसे उसकी क़ुर्बानी मानव-स्मृति पटल से पोंछ ही डालेगी...

चलिए हम यह पूरी तरह मान लेते हैं कि उन्होंने अपनी नज़र में विरोध का जो सबसे अच्छा तरीक़ा अपनाया, उसकी धारणा पूरी तरह ग़लत और असम्भव थी, मान लिया कि उन्होंने कार्रवाई का सबसे अच्छा रास्ता नहीं अपनाया। लेकिन वह क्या चीज़ थी जिसने उन्हें अपनी मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध धावा बोलने के लिए उकसाया? वे और हज़ारों लोग जो उनके साथ उठ खड़े हुए, बुरे आदमी

1. फ्रेडरिक हैरिसन (1831-1923) : प्रसिद्ध विधिवेत्ता; इतिहास, राजनीति और साहित्य पर कई पुस्तकों के लेखक

2. टॉमस जेफरसन (1743-1826): अमेरिका के तीसरे राष्ट्रपति, अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी नेता और संविधान निर्माताओं में प्रमुख

नहीं थे, भ्रष्ट नहीं थे, ख़ून के प्यासे नहीं थे, संगदिल नहीं थे, अपराधी नहीं थे, और न ही स्वार्थी या पागल थे। तब वह क्या चीज़ थी जिसने इतने तीखे और गहरे प्रतिवाद को उकसावा दिया...?

किसी ने भी इस सरल-सीधी बात पर ग़ौर नहीं किया कि मनुष्य अपनेआप को किसी विरोध के लिए बिना इस विश्वास के एकजुट नहीं करते कि कोई न कोई चीज़ ऐसी है जिसका उन्हें विरोध करना है और कि किसी भी संगठित समाज में व्यापक विरोध एक ऐसी चीज़ है जो गहरी छानबीन की दरकार रखती है।

– चार्ल्स एडवर्ड रसेल[1] (333)

पृष्ठ 24 (21)

क्रान्तिकारी की वसीयत

"मैं अपने दोस्तों से यह भी कहना चाहूँगा कि वे मेरे बारे में कम से कम चर्चा करेंगे या बिल्कुल ही चर्चा नहीं करेंगे, क्योंकि जब आदमी की तारीफ़ होने लगती है तो उसे इन्सान के बजाय देवप्रतिमा-सा बना दिया जाता है और यह मानवजाति के भविष्य के लिए बहुत बुरी बात है...। सिर्फ़ कर्मों पर ही ग़ौर करना चाहिए, उन्हीं की तारीफ़ या निन्दा होनी चाहिए, चाहे वे किसी के द्वारा किये गये हों। अगर लोगों को इनसे सार्वजनिक हित के लिए प्रेरणा मिलती दिखायी दे, तो वे इनकी तारीफ़ कर सकते हैं, लेकिन अगर ये सामान्य हित के लिए हानिकर लगें, तो वे इनकी निन्दा भी कर सकते हैं, ताकि फिर इनकी पुनरावृत्ति न हो सके।

"मैं चाहूँगा कि किसी भी अवसर पर, मेरी क़ब्र के निकट या दूर, किसी भी क़िस्म के राजनीतिक या धार्मिक प्रदर्शन न किये जायें, क्योंकि मैं समझता हूँ कि मरे हुए के लिए ख़र्च किये जाने वाले समय का बेहतर इस्तेमाल उन लोगों की जीवन-दशाओं को सुधारने में किया जा सकता है, जिनमें से बहुतेरों को इसकी भारी आवश्यकता है।"

– फ्रांसिस्को फेरेर[2] की वसीयत

दान : "मेरे पीछे आओ", ईसा मसीह ने धनी युवक को कहा।

1. चार्ल्स ई. रसेल (1860-1941) : *मकरेकर्स* नाम से प्रसिद्ध अमेरिकी लेखकों, पत्रकारों के समूह के प्रमुख सदस्य थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं में पूँजीवादी व्यवस्था की बुराइयों का भण्डाभोड़ किया।

2. पूरा नाम फ्रांसिस्को फेरेर गुआर्दिया (1859-1909) : स्पेनी शिक्षाशास्त्री, जो बाद में समाजवादी बन गये; यद्यपि उन्होंने हिंसा का विरोध किया था, फिर भी उन पर मुक़दमा चलाया गया, और फाँसी दे दी गयी, जिसे बाद में चलकर "अदालती हत्या" नाम दिया गया।

लेकिन अपने व्यवसाय में लगे रहना और अपनी कुछ दौलत को दान-कर्म में लगाना तुलनात्मक रूप से आसान था। परोपकार हरेक युग का चलन रहा है। दान ग़रीबी के विद्रोही तेवर को नष्ट कर देता है। अत: परोपकारी धनी आदमी अपने सरीखे दौलतमन्दों का ही हितैषी होता है, और उन्हीं की एहसानमन्दी महसूस करता है; उसके लिए सभ्य समाज के सारे दरवाज़े खुले होते हैं। इसीलिए उन्होंने (यानी ईसा मसीह ने - स.) भिक्षा-दान को सामाजिक काया के गहरे घावों की मरहम-पट्टी के रूप में स्वीकार्यता देने से इन्कार कर दिया...। परोपकार को न्याय के एक विकल्प के रूप में उन्होंने कतई तरजीह नहीं दी।

[पृष्ठ 25 (22) पर जारी]

दान दोहरा अभिशाप है - यह दाता को संगदिल और प्राप्तकर्ता को नरमदिल बनाता है। यह ग़रीबों का शोषण से कहीं अधिक नुक़सान करता है, क्योंकि यह उन्हें शोषित होने का इच्छुक बनाता है। यह दास भावना को जन्म देता है, जो नैतिक आत्महत्या ही है। ईसा मसीह ने अथाह दौलत के लिए सिर्फ़ एक ही इजाज़त दी थी और वह यह थी कि उसे क्रान्तिकारी प्रचार के लिए समर्पित कर दिया जाये, ताकि बाद में अथाह दौलत का जमा होना ही हमेशा के लिए असम्भव हो जाये...।

- बक ह्वाइट, पादरी, जन्म 1870, यू.एस.ए. पृष्ठ(353)[1]

मुक्ति-युद्ध

फ़ौजों की ताक़त एक दिखायी देने वाली चीज़ है
सुस्पष्ट, और देश काल में आबद्ध,
लेकिन कौन खोज सकता उस शक्ति की सीमाओं को
जिसे एक बहादुर जनता ही प्रकट कर सकती है
या चाहे तो, छिपा सकती है - मुक्ति-युद्ध में।
भड़क उठे न्यायसंगत प्रतिरोध का - कोई पाँव पीछा नहीं कर सकता,
कोई आँख नहीं देख सकती उस जानलेवा जगह को,
यह ताक़त चाहे तो उड़ान भरे पंख लगाकर
प्रचण्ड वायु की भाँति, या सोये मन्द वायु की भाँति
अपनी डरावनी गुफाओं में - साल दर साल
फैलाती मिट्टी से जन्मे इस विचार को - निकट और दूर,
नहीं बाँध सकती कोई भी कला - इस सूक्ष्म ताक़त को

---

1. बक ह्वाइट (1874-1951) : अमेरिकी समाजवादी और लेखक

जो फूटती ज़मीन से जलधारा की भाँति,
और पा लेती हर कोने में एक होंठ
जो इसकी क़द्र करे।

– *डब्ल्यू. वर्ड्सवर्थ*[1]

पृष्ठ 26 (23)

लाइट ब्रिगेड का धावा

आधा लीग आधा लीग,
आधा लीग और,
मौत की घाटी में
बढ़ चले छः सौ वीर।

'बढ़े चलो लाइट ब्रिगेड!
भर लो बन्दूक़ें!' वह बोला,
मौत की घाटी में
बढ़ चले छः सौ वीर।

'बढ़े चलो लाइट ब्रिगेड!'
क्या कोई था घबराया?
नहीं, गोकि मालूम था सैनिकों को
किसी न कर दी थी भारी भूल,

उनका काम नहीं था उत्तर देना,
उनका काम नहीं था सवाल पूछना,
उन्हें था बस लड़ना और मर जाना
मौत की घाटी में
बढ़ चले छः सौ वीर।

तोपें उनके दायें बाज़ू,
तोपें उनके बायें बाज़ू,
तोपें उनके ठीक सामने,
दगतीं और गरजतीं,

गोलाबारी की आँधी में,
बढ़ चले निडर वे सीधे
मौत के जबड़ों के भीतर,

1. विलियम वर्ड्सवर्थ (1750–1850) : प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि, जो अपनी युवावस्था में रैडिकल और गणतन्त्र समर्थक रहे।

नर्क के मुँह के भीतर,
बढ़ चले छः सौ वीर।
चमकाते सब नंगी तलवारें,
हवा में जब उनको लहराते
काटते जाते तोपचियों को,
हमला करते सेना पर, जबकि
सारी दुनिया चकराती,

पृष्ठ 27 (24)

पिल पड़े तोप के धुएँ में
बढ़ चले तोड़कर मोर्चा
कज़्ज़ाक और रूसी सिपाही
खाकर तलवार की चोटें
छिन्न-भिन्न हो जाते।
तोपें उनके दायें बाज़ू,
तोपें उनके बायें बाज़ू,
तोपें उनके पीछे से,
दगतीं और गरजतीं,
गोलाबारी की आँधी में,
भले गिरे अश्व और नायक
फिर भी वे इतना अच्छा जूझे
कि होकर मौत के जबड़ों से
लौटे वे नर्क के मुँह से,
जो भी थे बचे रह गये
छः सौ में से बचे रह गये।
कब हो सकता धूमिल उनका यश?
अरे वह उनकी विकट चढ़ाई!
सारी दुनिया चकराती।
आदर, उस हमले को
आदर, लाइट ब्रिगेड को!
श्रेष्ठ छः सौ वीरों को।

– लॉर्ड टेनीसन[1]

---

1. लॉर्ड अल्फ़्रेड टेनीसन (1809–1897) : प्रसिद्ध अंग्रेज़ राष्ट्रवादी कवि

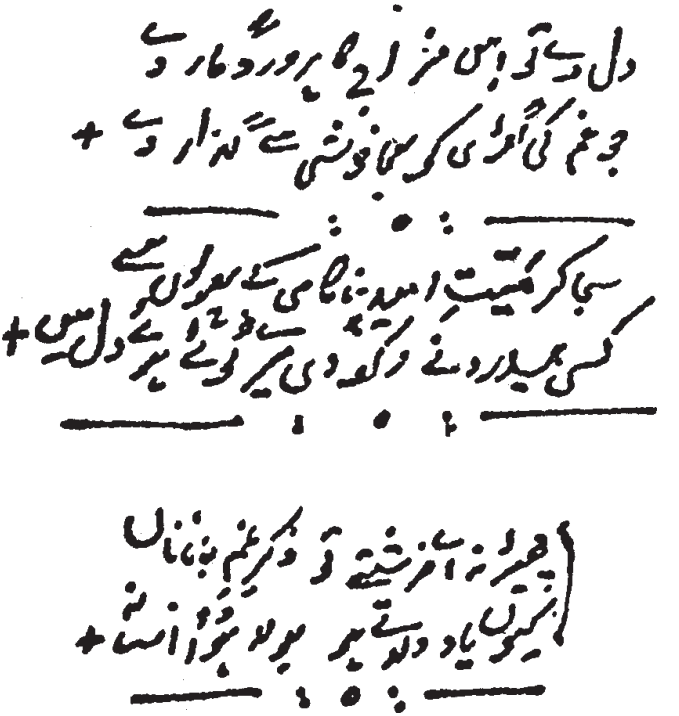

नोट : पृष्ठ 27 (24) के अन्त में ये तीन शे'र उर्दू में लिखे हुए हैं। ये किस शायर के हैं, यह स्पष्ट नहीं है। नीचे ये शे'र देवनागरी में प्रस्तुत हैं :

दिल दे तू इस मिज़ाज का परवरदिगार दे
जो ग़म की घड़ी को भी ख़ुशी से गुज़ार दे।

सज़ा कर मय्यत-ए-उम्मीद नाकामी के फूलों से
किसी हमदर्द ने रख दी मेरे टूटे हुए दिल में।

छेड़ ना ऐ फ़रिश्ते! तू ज़िक्रे ग़मे-जानाँ।
क्यों याद दिलाते हो भूला हुआ अफ़साना।

जन्मसिद्ध अधिकार :

हम बेटे हैं उन पितरों के जिन्होंने मात दी थी
तख़्तो-ताज और पुरोहितों[1] के अत्याचार को;
उन्होंने दी थी चुनौती मैदाने-जंग में और फाँसी के तख़्ते से
अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए - हम भी यही करेंगे!

(टी. कैम्पबेल)[2]

लक्ष्य की महिमा :

अरे! बेकार की नफ़रत के लिए नहीं,
न सम्मान के लिए, न ही अपनी शाबासी के लिए
बल्कि लक्ष्य की महिमा के लिए,
किया जो तुमने, भुलाया नहीं जायेगा।

(आर्थर क्लो)[3]

आत्मा की अमरता :

यदि तुम्हें कभी एक ऐसा आदमी मिल जाये जो अमरता में विश्वास रखता हो, तो बस समझ लो कि अब तुम्हारी कोई भी कामना शेष नहीं रह जायेगी; तुम उसकी सारी की सारी चीज़ें ले सकते हो - अगर तुम चाहो तो जीते-जी उसकी खाल उतार सकते हो - और वह इसे एकदम ख़ुशी-ख़ुशी उतार लेने देगा।

(अप्टन सिंक्लेयर 403) सी.जी.

ख़ुदाई अत्याचारी

एक अत्याचारी शासक के लिए ज़रूरी है कि वह ज़ाहिरा तौर पर धर्म में असाधारण आस्था दिखाये। जनता एक ऐसे शासक के दुर्व्यवहार के प्रति कम सचेत

1. अंग्रेज़ी में शब्द स्पष्ट नहीं
2. टॉमस कैम्पबेल (1777-1844) : स्कॉट कवि के गीत *मैन ऑफ़ इंग्लैण्ड* की अन्तिम पंक्तियाँ। नोटबुक के पिछले संस्करणों में त्रुटिवश 'टी' को 'जे' पढ़ा जाने के कारण इनका परिचय आइरिश कवि जोज़ेफ़ कैम्पबेल के रूप में दिया गया था।
3. आर्थर ह्यू क्लो (1819-61) : अंग्रेज़ कवि की कविता *पेस्चिएरा* की पंक्तियाँ। जिसमें इटली के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के दौरान पेस्चिएरा नामक स्थान पर 1848 में हुई लड़ाई का वर्णन है।

होती है, जिसे वह ईश्वर से डरने वाला और पवित्र मानती है। दूसरे, वह आसानी से उसके विरोध में भी नहीं जाती, क्योंकि उसे विश्वास रहता है कि देवता भी शासक के साथ हैं।[1]

पृष्ठ 25 (26)

सैनिक और चिन्तन :

"यदि मेरे सैनिक सोचना शुरू कर दें, तब तो उनमें से कोई भी सेना में नहीं रहेगा।"

(फ़्रेडरिक महान[2]) 562

मरे जो सर्वश्रेष्ठ वीर :

मारे गये हैं सर्वश्रेष्ठ वीर। दफ़ना दिये गये वे
चुपचाप, एक निर्जन भूमि में,
कोई आँसू नहीं बहे उन पर
अजनबी हाथों ने उन्हें पहुँचा दिया क़ब्र में,
कोई सलीब नहीं, कोई घेरा नहीं, कोई समाधि-लेख नहीं
जो बता सके उनके गौरवशाली नाम।
घास उग रही है उन पर, एक दुर्बल पत्ती
झुकी हुई, जानती है इस रहस्य को,
बस एकमात्र साक्षी थीं उफनती लहरें,
जो प्रचण्ड आघात करती हैं तट पर,
लेकिन वे प्रचण्ड लहरें भी नहीं ले जा सकतीं
अलविदा के सन्देश
उनके सुदूर घर तक।

(वी.एन. फ़िग्नर)[3]

कारागार :

"तारे नहीं, देश नहीं, काल नहीं,
ठहराव नहीं, बदलाव नहीं, नेकी नहीं, बदी नहीं,

1. अरस्तू, *पॉलिटिक्स*
2. प्रशा का फ़्रेडरिक (1712-1786): प्रबुद्ध निरंकुश शासक के रूप में प्रसिद्ध
3. वेरा निकोलायेव्ना फ़िग्नर (1852-1942) रूसी महिला क्रान्तिकारी और शहीद, ज़ारशाही के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने वाली प्रथम रूसी महिलाओं में एक

बल्कि ख़ामोशी, और एक निष्पन्द साँस
जो न जीवन की, न मृत्यु की।

(द प्रिज़नर ऑफ़ चिलोन)[1]

पृष्ठ 30 (27)

आरोप-सिद्धि के बाद :

अपनी सज़ा सुन लेने के तुरन्त बाद के क्षणों में सज़ा के लिए अभिशप्त व्यक्ति का दिमाग़ कई मायनों में उस आदमी के दिमाग़ जैसा हो जाता है जो मौत के कगार पर झूल रहा होता है। चुपचाप, और मानो अन्त:प्रेरित होकर, अब वह उन सभी चीज़ों से विरक्त हो जाता है जिन्हें उसे छोड़ जाना है, और वह, दृढ़भाव से, अपने सामने देखता हुआ, उस सच्चाई के प्रति पूरी तरह सचेत हो जाता है, जो अपरिहार्यत: घटित होने वाली होती है।

(वी.एन. फ़िग्नर)

क़ैदी :

"घुटन होती है इस नीची, गन्दी छत के नीचे;
निचुड़ती जा रही है मेरी ताक़त साल दर साल;
उत्पीड़ित करते हैं मुझे - यह पथरीला फ़र्श,
यह लौह-ज़ंजीरों से बँधी मेज
यह खाट, यह कुर्सी, बँधी हुई ज़ंजीर से
दीवारों के साथ, ताबूत के पटरों की भाँति,
इस चिरस्थायी, मूक, मुर्दा ख़ामोशी में
खुद को बस एक लाश ही समझा जा सकता है।"

"एन.ए. मोरोज़ोव"[2]

1. प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि लॉर्ड बायरन (1788-1824) की इस कविता में जेनेवा झील के पास चिलोन के क़िले में क़ैद एक देशभक्त फ़्राँस्वा दि बोनिवार के जेल-जीवन का वर्णन किया गया है।

2. निकोलाई अलेक्सान्द्र मोरोज़ोव (1854-1946) : रूसी क्रान्तिकारी, लेखक, कवि और वैज्ञानिक; 1880 में लन्दन में मार्क्स से मुलाक़ात और *मेनिफ़ेस्टो ऑफ़ द कम्युनिस्ट पार्टी* के रूसी में अनुवाद का जिम्मा, 1875 से 1878 तक, तथा 1881 से 1905 तक, क़रीब 25 वर्षों तक जेल की सज़ा के दौरान, रसायन विज्ञान, भौतिकी, गणित और खगोल विज्ञान पर 28 पुस्तकों के अलावा कविताएँ और कहानियाँ भी लिखीं।

नंगी दीवारें, जेल के ख़्यालात,
कितने अँधियारे और उदास हो तुम,
कितना मुश्किल है कि बन्दी हो निष्क्रिय रहना
और देखना सपने आज़ादी के दिनों के।

(मोरोज़ोव)

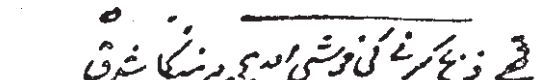

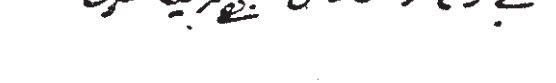

تجھے ذبح کرنے کی خوشی اور مجھے مرنے کا شوق
میری بھی مرضی وہی جو میرے صیاد کی ہے

1

पृष्ठ 31 (28)

"हर चीज़ यहाँ है कितनी ख़ामोश, बेजान, फीकी
वर्षों गुज़र जाते हैं यों ही, कुछ पता नहीं चलता,
हफ़्ते और दिन कटते हैं बड़ी मुश्किल से,
देता है सिर्फ़ बोरियत इनका यह सिलसिला।

(मोरोज़ोव)

लम्बी क़ैद से हमारे ख़्याल हो जाते हैं मनहूस;
भारीपन महसूस होता है हमारी हड्डियों में;
यन्त्रणा की पीड़ा से, लम्हे लगते हैं अन्तहीन
चार डग चौड़ी इस कोठरी में।

हमें जीना है पूरी तरह अपने हमसफ़र भाइयों के लिए,
हमें देना होगा अपना सर्वस्व उनके लिए,
और उन्हीं की ख़ातिर लड़ना होगा बदनसीबी के ख़िलाफ़!
... ...

(मोरोज़ोव)

1. मूल में उर्दू में यह शे'र लिखा हुआ है :
तुझे जबह करने की ख़ुशी, मुझे मरने का शौक़,
मेरी भी मर्ज़ी वही है, जो मेरे सैयाद की है।

आये मुझे आज़ाद करने :

आख़िर लोग आये मुझे आज़ाद करने;
मैंने न पूछा क्यों और न सोचा कहाँ,
मेरे लिए तो कुल मिलाकर एक ही था,
बँधे रहना या बन्धनमुक्त होना,
मैंने निराशा से प्यार करना सीख लिया था,
और इस तरह अन्ततः जब वे प्रकट हुए,
और उतार डाले मेरे सारे बन्धन
ये भारी दीवारें बन चुकी थीं मेरे लिए
एक संन्यास-आश्रम – पूरी तरह अपना।

(द प्रिज़नर ऑफ़ चिलोन)

पृष्ठ 32 (29)

"और हम सम्मानित किये गये हैं एक मिशन देकर!
हमने एक कठिन स्कूल पास किया, लेकिन हासिल कर लिया
ऊँचा ज्ञान।
निर्वासन, जेल, और मुश्किल दिनों की बदौलत
हम जान गये हैं और क़ीमत समझते हैं सच्चाई और आज़ादी की
दुनिया की।"

(प्रिज़नर ऑफ़ श्लुसेलबर्ग)[1]

एक शिशु की मृत्यु और पीड़ा

'एक बच्चा पैदा हुआ। उसने सचेत तौर पर न तो कोई बुरा काम किया, न अच्छा काम किया। वह बीमार पड़ गया, वह लम्बे समय तक काफ़ी तकलीफ़ झेलता रहा, तब तक जब तक कि उस असह्य वेदना से मर नहीं गया। क्यों? क्या वजह थी? दार्शनिक के लिए यह एक शाश्वत पहेली है।'[2]

1. लेनिनग्राद क्षेत्र में स्थित श्लुसेलबर्ग क़स्बे के पास एक द्वीप पर पीटर महान की सेना द्वारा 1702 में बनाये गये क़िले को बाद में एक कारागार में बदल दिया गया था। इस कारागार में अनेक दिसम्बरवादी क्रान्तिकारी, अराजकतावादी बाकुनिन, पोलिश देशभक्त लुकासोविस्लाग, मार्शल दोलगोरुकी, और लेनिन के भाई अलेक्सान्द्र को क़ैद करके रखा गया था (लेनिन के भाई को यहीं फाँसी दी गयी)
2. स्रोत अज्ञात

एक क्रान्तिकारी के दिमाग़ की बनावट :

"जो व्यक्ति कभी भी ईसा मसीह के जीवन से प्रभावित रहा है, जिन्होंने एक आदर्श के नाम पर पीड़ा, अपमान और मृत्यु का वरण किया; जिसने उन्हें कभी एक आदर्श तथा उनके जीवन को अनासक्त प्रेम की प्रतिमूर्ति माना है – वही उस क्रान्तिकारी के दिमाग़ की बनावट को समझ सकता है जिसे सज़ा दी गयी है, और जनता की आज़ादी के लिए काम करने के जुर्म में जीवित ही मक़बरे में डाल दिया गया है।" (वेरा एन. फ़िग्नर)

अधिकार :

अधिकार माँगो नहीं। बढ़कर ले लो। और उन्हें किसी को भी तुम्हें देने मत दो। यदि मुफ़्त में तुम्हें कोई अधिकार दिया जाता है तो समझो कि उसमें कोई न कोई राज ज़रूर है। ज़्यादा सम्भावना यही है कि किसी ग़लत बात को उलट दिया गया है।[1]

पृष्ठ 33 (30)

कोई दुश्मन नहीं?

तुम कहते हो, तुम्हारा कोई दुश्मन नहीं?
अफ़सोस! मेरे दोस्त, इस शेख़ी में दम नहीं,
जो शामिल होता है फ़र्ज़ की लड़ाई में,
जिसे बहादुर लड़ते ही हैं
उसके दुश्मन होते ही हैं। अगर नहीं हैं तुम्हारे
तो वह काम ही तुच्छ है जो तुमने किया है।
तुमने किसी ग़द्दार के कूल्हे पर वार नहीं किया है,
तुमने झूठी क़समें खाने वाले होंठ से प्याला नहीं छीना है,
तुमने कभी किसी ग़लती को ठीक नहीं किया है,
तुम कायर ही बने रहे लड़ाई में।

(चार्ल्स मैके, 747)[2]

बाल-श्रम :

गौरैये का बच्चा गौरैये को दाना नहीं चुगाता,

---

1. रोजर एन. बाल्डविन : अमेरिकन सिविल लिबर्टी यूनियन के निदेशक रहे। *फ़्री स्पीच फ़ाइट ऑफ़ द आई. डब्ल्यू. डब्ल्यू.* (इण्डस्ट्रियल वर्कर्स ऑफ़ द वर्ल्ड) से
2. चार्ल्स मैके (1814-1889) : स्कॉट कवि, पत्रकार और गीतकार

चूज़ा मुर्ग़ी को चुग्गा नहीं कराता,
बिल्ली का बच्चा बिल्ली के लिए चूहे नहीं मारता –
यह महानता तो सिर्फ़ मनुष्य को नसीब है।
हम सबसे बुद्धिमान, सबसे बलवान नस्ल हैं –
हम क़ाबिले तारीफ़ हैं।
एकमात्र ज़िन्दा प्राणी
जो जीता है अपने बच्चों की मेहनत पर।

(शार्लोट पर्किन्स गिलमैन)[1]

पृष्ठ 34 (31)

कोई वर्ग नहीं! कोई समझौता नहीं!!

(जॉर्ज डी. हेरसन)

समाजवादी आन्दोलन के दौरान एक ऐसा वक़्त आ रहा है, और सम्भव है, वह वक़्त आ चुका है, जब सुधरी हुई दशाएँ या समायोजित उजरतें मज़दूरों की माँग का जवाब नहीं रह जायेंगी, और तब ये चीज़ें सामान्य बुद्धि के लिए एक अपमान के अलावा और कुछ नहीं सिद्ध होंगी। आज दुनियाभर में जो समाजवादी आन्दोलन चल रहा है वह बेहतर उजरतों, सुधरी हुई पूँजीवादी दशाओं या पूँजीवादी मुनाफ़े में हिस्सा बँटाने के लिए नहीं चल रहा है; यह चल रहा है उजरतों और मुनाफ़ों के ख़ात्मे के लिए, और पूँजीवाद एवं निजी पूँजीपतियों की समाप्ति के लिए। *सुधरी* हुई राजनीतिक संस्थाएँ, पूँजी और श्रम के बीच समझौता कराने वाली परिषदें, परोपकार और विशेषाधिकार जो पूँजीपतियों की खैरातों के अलावा और कुछ नहीं हैं – इनमें से कोई भी चीज़ उस सवाल का जवाब नहीं दे सकती जो मन्दिरों, सत्ता के सिंहासनों और संसदों को कँपकँपा रहा है। जो लोग दबे-कुचले हैं और जो लोग उनकी पीठ पर सवार होकर आगे बढ़े हुए हैं, अब इन दोनों के बीच कोई अमन-चैन नहीं रह सकता। अब वर्गों के बीच कोई मेल-मिलाप नहीं हो सकता; अब तो वर्गों का सिर्फ़ अन्त ही हो सकता है। जब तक पहले न्याय न हो, तब तक सद्भावना की बात करना अनर्गल प्रलाप है, और जब तक इस दुनिया का निर्माण करने वालों का अपनी मेहनत पर अधिकार न हो, तब तक न्याय की बात करना बेकार है। दुनिया के मज़दूरों की माँग का जवाब उनकी मेहनत की समूची कमाई के अलावा और कुछ नहीं हो सकता। *(जॉर्ज डी. हेरसन)*[2]

---

1. शार्लोट पर्किन्स गिलमैन (1860-1935) : अमेरिकी उपन्यासकार, कहानीकार और समाज सुधारक की कविता जिसे 1920 के दशक में अमेरिका में बालश्रम क़ानून में संशोधन पर चली बहस में एक सांसद द्वारा उद्धृत किया गया।

2. सम्भवत: जॉर्ज डेविस हैरोन (1862-1925), जो एक ज़माने में क्रिश्चियन सोशलिस्ट पादरी थे और अमेरिका की सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य भी रहे।

पृष्ठ 35 (32)

पूँजीवाद की बर्बादियाँ[1]

आस्ट्रेलिया के बारे में आर्थिक अनुमान, *थिओडोर हर्ट्ज़का*[2] (1886) द्वारा :

प्रत्येक परिवार = 40 वर्ग फुट में 5 कमरों वाला मकान 50 वर्षों तक चलने लायक।[3]

मज़दूरों की काम करने की उम्र = 16-50 (वर्ष - स.)

इस प्रकार हमारे पास हैं 5,000,000 (मज़दूर - स.)

615,000 मज़दूरों का श्रम = श्रम का 12.3 प्रतिशत 22,000,000 लोगों का भोजन पैदा करने के लिए पर्याप्त है।

यातायात-परिवहन की श्रम लागत समेत, विलासिताओं हेतु सिर्फ़ 315,000 = 6.33 प्रतिशत मज़दूरों के श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

इसका मतलब यह हुआ कि उपलब्ध श्रम का 20 प्रतिशत ही समूचे महाद्वीप के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त है। शेष 80 प्रतिशत समाज की पूँजीवादी व्यवस्था के कारण शोषित और बरबाद हो जाता है।

पृष्ठ 36 (33)

ज़ारशाही शासन और बोल्शेविक शासन

ब्रैजियर हण्ट[4] का कहना है कि बोल्शेविकों ने अपने शासन के पहले चौदह महीनों में, 4500 लोगों को मौत की सज़ा दी जिनमें से ज़्यादातर का जुर्म चोरी और सट्टेबाज़ी था।

1905 की क्रान्ति के बाद, ज़ार के मन्त्री, स्तोलीपिन[5] ने, बारह महीनों के भीतर 32,773 लोगों को मौत की सज़ा दी थी।

(पृष्ठ 390, ब्रास चेक)[6]

---

1. यह शीर्षक बड़े अक्षरों में लिखा हुआ है
2. थियोडोर हर्ट्ज़का (1845-1924) : हंगारी-ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री और पत्रकार। *फ़्री लैण्ड : सोशल एण्टिसिपेशन* के लेखक
3. मकान के क्षेत्रफल में कुछ गड़बड़ है, आँकड़े स्पष्ट नहीं
4. अमेरिकी पत्रकार
5. प्योत्र अर्कादिएविच स्तोलीपिन (1862-1911) : 1906 से 1911 तक ज़ार की मन्त्रिपरिषद का अध्यक्ष और गृहमन्त्री
6. अप्टन सिंक्लेयर की पुस्तक जिसे बुर्जुआ पत्रकारिता की बखिया उधेड़ने वाली पहली पुस्तक माना जाता है।

पृष्ठ 37 (34)

सामाजिक संस्थाओं का स्थायित्व

प्रत्येक पीढ़ी के भ्रमों में से एक भ्रम यह है कि वह जिन सामाजिक संस्थाओं के तहत जी रही होती है वे, कुछ ख़ास अर्थ में, "प्राकृतिक", अपरिवर्तनीय और स्थायी हैं। फिर भी, अनगिनत हज़ार वर्षों से, सामाजिक संस्थाएँ उत्तरोत्तर पैदा होती रही हैं, विकास करती रही हैं, पतनशील होती रही हैं और समसामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप दूसरी बेहतर संस्थाओं द्वारा क्रमशः विस्थापित की जाती रही हैं...। तब, सवाल यह नहीं है कि हमारी वर्तमान सभ्यता बदलेगी या नहीं, बल्कि यह है कि वह कैसे बदलेगी?

यह, सुविचारित अनुकूलन के जरिये, क्रमशः और चुपचाप एक नया रूप ले सकती है। या, यदि अनुकूलन के बजाय कोई उग्र प्रतिरोध उठ खड़ा होता है, तो यह धमाके के साथ ध्वस्त हो सकती है, और मानवजाति को सामाजिक अराजकता और अव्यवस्था की अवस्था के निचले स्तर से एक नयी सभ्यता के निर्माण का कष्टसाध्य कार्यभार सौंप सकती है, जिसमें पिछली व्यवस्था की सिर्फ़ बुराइयाँ ही नहीं, बल्कि उसकी भौतिक, बौद्धिक और नैतिक उपलब्धियाँ भी नहीं रहेंगी।

– पी.आई. डिके ऑफ़ कैप. सिविलाइज़ेशन[1]

पृष्ठ 38 (35)

पूँजीवाद और वाणिज्यवाद :

जापानी छात्रों की एक सभा में रवीन्द्रनाथ[2] का भाषण :

जापान में आपका अपना उद्योग था; वह कितने कर्त्तव्यनिष्ठ भाव से ईमानदार और सच्चा था, इसे आप इसके उत्पादों से – उनकी स्तरीयता और तादाद से, छोटी-छोटी चीज़ों के प्रति उनके ध्यान देने से जान सकते हैं, जिन पर शायद ही कोई टीका-टिप्पणी की जा सके। परन्तु आपकी भूमि पर झूठ की एक लहर दुनिया के उस भाग से बहकर आ चुकी है जहाँ व्यापार सिर्फ़ व्यापार है और ईमानदारी को सिर्फ़ सबसे अच्छी नीति माना जाता है। क्या आपको कभी शर्म नहीं महसूस होती, जब आप उन व्यापारिक विज्ञापनों को देखते हैं, जो सिर्फ़ समूचे शहरी क्षेत्र

1. सम्भवतः *प्युट्रिफ़ैक्शन एण्ड इण्टर्नल डिके ऑफ़ कैपिटलिस्ट सिविलाइज़ेशन* – लेकिन ठीक-ठीक स्रोत एवं सन्दर्भ का पता नहीं।

2. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) भाषण का स्थान, समय तथा अन्य ब्योरे उपलब्ध नहीं हैं।

को ही झूठ और अतिशयोक्तियों से नहीं पाट रहे हैं, बल्कि उन हरित क्षेत्रों पर भी धावा बोलते जा रहे हैं, जहाँ किसान ईमानदारी से मेहनत करते हैं, और उन पर्वत-शिखरों को भी अपने हमले का निशाना बनाते जा रहे हैं, जो भोर के प्रथम निर्मल प्रकाश का स्वागत करते हैं?...। अपनी भद्दी सजावटों की बर्बरता के साथ यह वाणिज्यवाद समूची मानवता के लिए एक भयानक महाविपदा है, क्योंकि यह प्रवीणता के ऊपर ताक़त के आदर्श का आरोपण कर रहा है। यह अपनी नग्न बेशर्मी के साथ अपने में ही मगन रहने के चलन को गौरवान्वित कर रहा है। इसकी हरकतें हिंसक हैं, और इसका शोर-शराबा बेसुरा और कर्कश है। यह अपने ही सर्वनाश की ओर बढ़ रहा है, क्योंकि यह उसी मानवता को कुचल कर विकृत कर रहा है...जिस पर यह स्वयं खड़ा है। [पृष्ठ 39 (36) पर जारी] यह आनन्द की क़ीमत पर धन पैदा करने की कड़ी मशक़्क़त में लगा हुआ है...। यूरोप की वर्तमान सभ्यता की मुख्य महत्त्वाकांक्षा यही है कि शैतान पर उसी का एकछत्र अधिकार हो।

पूँजीवादी समाज

"राजनीतिक अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि हर कोई यथासम्भव कम से कम त्याग करके व्यक्तिगत सम्पदा प्राप्त कर लेना चाहता है।"

"नासाउ सीनियर"[1]

पृष्ठ 40 (37)

धर्म के बारे में कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण

मनुष्य धर्म को बनाता है; धर्म मनुष्य को नहीं बनाता। धर्म वास्तव में, मनुष्य की ही आत्मचेतना और आत्मभावना है, जिसने या तो अभी तक अपनेआप को पाया नहीं है, या (यदि अपनेआप को पाया भी है तो) अपनेआप को फिर से खो दिया है। लेकिन आदमी कोई ऐसी अमूर्त सत्ता नहीं है जो दुनिया से बाहर कहीं पालथी मारे बैठी हुई हो। मनुष्य की दुनिया मनुष्यों, राज्य, समाज की दुनिया है। यह राज्य, यह समाज धर्म पैदा करता है, एक उल्टी विश्व चेतना पैदा करता है, क्योंकि ये ख़ुद एक उल्टी दुनिया है। धर्म इसी दुनिया का एक सामान्यीकृत सिद्धान्त है, इसका विश्वकोशीय सार-संग्रह है, एक लोकप्रिय रूप में इसका तर्क है...। इसलिए धर्म के विरुद्ध संघर्ष उस दुनिया के विरुद्ध एक प्रत्यक्ष अभियान है जिसकी आत्मिक सुगन्ध धर्म है। [पृष्ठ 41 (38) पर जारी]

1. नासाउ विलियम सीनियर (1790-1864) : अंग्रेज़ अर्थशास्त्री

धर्म उत्पीड़ित प्राणी की आह है, एक हृदयहीन दुनिया का अहसास है, ठीक वैसे ही जैसेकि यह आत्महीन दशाओं की आत्मा है। **यह जनता के लिए अफ़ीम है।**

लोग वास्तव में तब तक सुखी नहीं हो सकते जब तक कि वे धर्म का उन्मूलन कर, इसके मिथ्या सुख से निजात नहीं पा लेते। यह अपेक्षा कि लोग इस मरीचिका से अपनेआप को स्वयं अपनी ही दशा की ख़ातिर मुक्त करें, यह अपेक्षा है कि वे **उस दशा का ही त्याग करें जिसे इस मरीचिका की ज़रूरत होती है।**

आलोचना का हथियार हथियारों की आलोचना का स्थान नहीं ले सकता। भौतिक शक्तियों को निश्चित रूप से भौतिक शक्तियों द्वारा ही उखाड़ फेंका जाना चाहिए; लेकिन सिद्धान्त भी जब जनसमुदायों में रच-बस जाता है, तो एक भौतिक शक्ति बन जाता है।[1]

पृष्ठ 42 (39)

क्रान्ति यूटोपियाई नहीं

एक आमूल परिवर्तनवादी क्रान्ति, यानी मानवजाति की आम मुक्ति, जर्मनी के लिए कोई यूटोपियाई स्वप्न नहीं है; यूटोपियाई तो एक आंशिक, एक विशुद्ध राजनीतिक क्रान्ति की धारणा होती है, जो (पूँजीवादी व्यवस्था की – स.) इमारत के खम्भों को खड़ा छोड़ देगी।[2]

"महान इसलिए महान हैं क्योंकि
हम घुटनों पर हैं
आओ उठ खड़े हों!"[3]

पृष्ठ 43 (40)

राज्य के बारे में हर्बर्ट स्पेंसर[4] का दृष्टिकोण :

"भले ही यह सच हो या न हो कि मनुष्य निष्कलंक पैदा हुआ और पाप में सन गया, लेकिन यह निश्चित रूप से सच है कि सरकार का जन्म आक्रामकता से और आक्रामकता के द्वारा हुआ।"

---

1. कार्ल मार्क्स, *हेगेल के न्याय-दर्शन की समालोचना का प्रयास* से उद्धृत
2. वही
3. मूल में ये पंक्तियाँ पृष्ठ पर तिरछे लिखी हुई हैं
4. हर्बर्ट स्पेंसर (1820-1903) : अंग्रेज़ दार्शनिक; महत्त्वपूर्ण कृतियाँ : द *प्रिंसिपल्स ऑफ़ साइकोलाजी* और *फ़र्स्ट प्रिंसिपल्स*

मनुष्य और मनुष्यजाति :

"मैं एक मनुष्य हूँ,
और उन सभी चीज़ों से मेरा सरोकार है जो मनुष्य-जाति को प्रभावित करती हैं।"

"रोमन नाटककार"[1]

इंग्लैण्ड की स्थिति की समीक्षा :

"अच्छे लोगो, इंग्लैण्ड में स्थितियाँ तब तक अच्छी नहीं हो सकतीं, जब तक अच्छाइयाँ आम नहीं हो जातीं, और जब तक सज्जन लोगों के साथ दुर्जन लोग भी बने रहते हैं। वे जिन्हें हम लॉर्ड कहते हैं, किस अधिकार से हमसे महान हैं? किस आधार पर वे इसके क़ाबिल बने हुए हैं? वे क्यों हमें भू-दास बनाये हुए हैं? अगर हम सभी एक ही बाप और माँ, आदम और हव्वा की सन्तानें हैं, तो वे यह कैसे कहते या साबित करते हैं कि वे हमसे महान या बेहतर हैं? अगर वे अपने फ़ायदे के लिए हमसे मेहनत नहीं करवाते तो वे अपनी शान-शौक़त में क्या ख़र्च करते? वे ख़ुद तो मख़मल पहनते हैं और अपनेआप को फ़रकोटों और शाही लबादों से गर्म रखते हैं, जबकि हम चिथड़े लपेटे रहते हैं। उनके पास तो शराब, लज़ीज़ खाना और डबलरोटी है, और हमारे पास जई की लिट्टी, घासपात और पानी। उनके पास फ़ुरसत ही फ़ुरसत है और बढ़िया घर भी, और हमारे पास है तकलीफ़ और मेहनत, खेतों में बारिश और आँधी; फिर भी यह हमारी मेहनत ही है जिसके बूते पर वे राज कर रहे हैं।

फ़ायर ऑफ़ वॉट टाइलर्स रिबेल[2]

पृष्ठ 44 (41)

क्रान्ति और वर्ग

सारे के सारे वर्ग सत्ता पाने की कोशिश में क्रान्तिकारी ही होते हैं, और समानता की बातें करते हैं। और सारे के सारे वर्ग जब सत्ता प्राप्त कर लेते हैं तो संकीर्णतावादी हो जाते हैं और मान लेते हैं कि समानता सिर्फ़ एक रंगीन सपनाभर है। सारे के सारे वर्ग, सिर्फ़ एक को - मज़दूर वर्ग को छोड़कर, क्योंकि जैसाकि

1. अज्ञात
2. कुछ शब्द स्पष्ट नहीं; आगे पन्ना फटा हुआ; उपरोक्त शब्द जॉन बॉल के हैं। जॉन बॉल और वॉट टाइलर्स इंग्लैण्ड में हुए 1381 के किसान विद्रोह के नेता थे।

कॉम्ते[1] ने कहा है, "सच कहा जाये तो मज़दूर वर्ग एक वर्ग होता ही नहीं, बल्कि वह तो समाज के निकाय का संघटक होता है।" लेकिन मज़दूर वर्ग का वक़्त, यानी सभी लोगों के एक हो जाने का वक़्त अभी भी नहीं आया है।

"वर्ल्ड हिस्ट्री फ़ॉर वर्कर्स" पृष्ठ 47, अल्फ़्रेड बार्टन कृत[2]

पृष्ठ 45 (42)

सर हेनरी मेन[3] ने कहा है :

"इंग्लैण्ड की अधिकांश भूमि वकीलों की ग़लती से इसके वर्तमान स्वामियों के हाथ में चली गयी है – जिन ग़लतियों के परिणामस्वरूप छोटे-छोटे अपराधियों को भी फाँसी की सज़ा दे दी गयी।"

———○———

"क़ानून मुजरिम क़रार कर देता है उस पुरुष या स्त्री को
जो चुराते हैं आम आदमी की मुर्गियाँ,
लेकिन छोड़ देता है बड़े अपराधियों को
जो चुरा लेते हैं मुर्गियों से आम आदमी को ही।"[4]

पृष्ठ 46 (43)

जनतन्त्र

जनतन्त्र, सैद्धान्तिक तौर पर, राजनीतिक और क़ानूनी समानता की एक प्रणाली है। लेकिन ठोस और व्यावहारिक कार्रवाई में, यह मिथ्या है, क्योंकि कोई समानता तब तक नहीं हो सकती, यहाँ तक कि राजनीति में और क़ानून के समक्ष भी नहीं, जब तक कि आर्थिक शक्ति में असमानता मुँह बाये बरक़रार रहेगी; जब तक कि सत्ताधारी वर्ग मज़दूरों के रोज़गार पर, देश के प्रेस और स्कूलों पर तथा जनमत तैयार करने और अभिव्यक्त करने के सभी साधनों पर अपना अधिकार जमाये रखेगा, जब तक कि यह सभी प्रशिक्षित सार्वजनिक कार्यकारी निकायों पर अपना एकाधिकार बनाये रखेगा, और चुनावों को प्रभावित करने के लिए बेशुमार धन ख़र्च करता रहेगा, जब तक कि क़ानून सत्ताधारी वर्ग

1. आगस्त कॉम्ते (1798-1857) : फ़्रांसीसी विचारक
2. अन्य विवरण अनुपलब्ध
3. सम्भवत: ब्रिटिश इतिहासकार और विधिवेत्ता सर हेनरी समर मेन (1822-1888), भारत में 1863 से 1869 तक कार्उंसिल के सदस्य, और कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर भी रहे
4. इंग्लैण्ड में 19वीं सदी में एक अज्ञात कवि के द्वारा लिखी कविता का अंश

द्वारा बनाये जाते रहेंगे और अदालतों में इसी वर्ग के सदस्य अध्यक्षता करते रहेंगे, जब तक वकील प्राइवेट प्रैक्टिशनर बने रहेंगे और अपनी विधि विशेषज्ञता का कौशल सबसे अधिक फ़ीस देने वाले को बेचते रहेंगे, तथा अदालती कार्रवाई तकनीकी और महँगी बनी रहेगी, तब तक क़ानून के समक्ष यह नाममात्र की समानता भी एक खोखला मज़ाक़ ही बनी रहेगी।

एक पूँजीवादी व्यवस्था में, जनतन्त्र की पूरी मशीनरी बहुसंख्यक मज़दूर वर्ग को पीड़ित कर, सत्ताधारी अल्पसंख्यक वर्ग को सत्ता में बनाये रखने का काम करती है, और जब बुर्जुआ सरकार को जनतान्त्रिक संस्थाओं से ख़तरा महसूस होता है, तब ऐसी संस्थाओं को अक्सर बड़ी बेरहमी के साथ कुचल दिया जाता है।

"फ़्रॉम मार्क्स टु लेनिन"
(मॉरिस हिलक्विट[1] कृत) (पृष्ठ 58)

जनतन्त्र "हरेक वर्ग या पार्टी से सम्बन्धित हरेक व्यक्ति के लिए समान अधिकार और सभी राजनीतिक अधिकारों में भागीदारी" सुनिश्चित नहीं करता (काउत्स्की)। यह तो मौजूदा आर्थिक असमानताओं के लिए खुले राजनीतिक और क़ानूनी खेल की अनुमति देता है...। इस प्रकार पूँजीवाद के अन्तर्गत जनतन्त्र सामान्य, अमूर्त जनतन्त्र नहीं, बल्कि विशिष्ट बुर्जुआ जनतन्त्र...या जैसाकि लेनिन ने इसका नाम दिया है – बुर्जुआ वर्ग के लिए जनतन्त्र होता है।[2]

पृष्ठ 47 (44)

क्रान्ति शब्द की परिभाषा

"क्रान्ति की अवधारणा को इस शब्द की पुलिसिया व्याख्या के अर्थ में, यानी सशस्त्र विद्रोह के अर्थ में नहीं लेना चाहिए। यदि किसी पार्टी के पास दूसरे, कम ख़र्चीले, और अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित तरीक़े इस्तेमाल करने की गुंजाइश है, और तब भी वह सिद्धान्त के नाते विद्रोह का ही तरीक़ा अपनाती है, तो उसे पागल ही कहा जायेगा। इस अर्थ में, सामाजिक जनवाद कभी भी सिद्धान्त के नाते क्रान्तिकारी नहीं रहा। ऐसा यह सिर्फ़ इसी अर्थ में है कि यह इस बात को मानता है कि जब इसे राजनीतिक सत्ता हासिल हो जायेगी, तो यह इसका इस्तेमाल वर्तमान व्यवस्था

---

1. मॉरिस हिलक्विट (1869-1933) : अमेरिकी समाजवादी
2. पैरे का स्रोत और सन्दर्भ वाला हिस्सा फटा हुआ। सम्भवत: मॉरिस हिलक्विट की ही पुस्तक से उद्धृत

को टिकाये रखने वाली उत्पादन-प्रणाली को ख़त्म करने के अलावा और किसी मक़सद के लिए नहीं करेगा।"

"कार्ल काउत्स्की"[1]

संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में कुछ तथ्य और आँकड़े[2]

5 आदमी 1000 लोगों के लिए रोटी पैदा कर सकते हैं
1 आदमी 250 लोगों के लिए सूती कपड़ा पैदा (कर सकता) है
1 आदमी 300 लोगों के लिए ऊनी कपड़ा पैदा कर सकता है
1 आदमी 1000 लोगों के लिए बूट और जूते पैदा कर सकता है

– आयरन हील[3] *(पृष्ठ 78)*

15,000,000 लोग बेपनाह ग़रीबी (में) जी रहे हैं जो अपनी श्रम-दक्षता को भी बनाये नहीं रख सकते।

3,000,000 बाल-श्रमिक।

पुनश्चः इंग्लैण्ड[4]

युद्ध-पूर्व अनुमान (!)

इंग्लैण्ड का कुल उत्पादन (प्रतिवर्ष)	£ 2000,000,000
विदेशी निवेशों से लाभ	£ 200,000,000
	£ 2200,000,000
जनसंख्या के 1/9वें भाग ने ले लिया ½	= £ 1100,000,000
जनसंख्या के 2/9वें भाग ने ले लिया शेष	= £ 1100,000,000
का 1/3 अर्थात	= £ 300,000,000

(विवरण का बाक़ी हिस्सा फटा हुआ – स. ...)

1. कार्ल काउत्स्की (1854-1938) : जर्मन सामाजिक-जनवादी आन्दोलन तथा दूसरे इण्टरनेशनल के एक नेता। शुरू में मार्क्सवादी थे पर बाद में मार्क्सवाद के साथ ग़द्दारी की और मज़दूर आन्दोलन में मौजूद एक अवसरवादी प्रवृत्ति (काउत्स्कीवाद) के सिद्धान्तकार बन गये।
2. यह तथा नीचे आया इंग्लैण्ड सम्बन्धी शीर्षक मोटे अक्षरों में लिखे हुए हैं।
3. जैक (जॉन) ग्रिफ़िथ लण्डन (1876-1916) का उपन्यास *आयरन हील*, जो 1908 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में पूँजीवाद के रक्तपिपासु और दमनकारी चरित्र तथा इसके विरुद्ध मज़दूरों के संघर्ष का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण है।
4. स्रोत का पता नहीं

पृष्ठ 48 (45)

इण्टरनेशनल[1]

उठ जाग प्रताड़ित धरती के
  उठ जाग भूख के बन्दी
न्याय की बजती रणभेरी,
  एक बेहतर दुनिया जन्मे।
अब बाँध सके ना हमको परम्परा की बेड़ी
  अरे! उठो! गुलामो जागो! अब करनी नहीं गुलामी!
अब नयी नींव पर बनेगी दुनिया,
  हम अब तक रहे न कुछ भी, अब सब कुछ होंगे। *(टेक)*
  यह है अन्तिम संघर्ष
  आओ होलें अविकल
  कल मानवजाति बनेगी
  इण्टरनेशनल।
देखो उनको जो बैठे हैं महिमामण्डित
  रेलों, ख़ानों, धरती के राजा!
श्रम को ही रहे लूटते ये
  बस इसके सिवा किया क्या है?
दफ़न हैं जनता की मेहनत के फल
  कुछ की मज़बूत तिजोरियों में;
देना होगा इसे वापस
  है यह जनता का हक़। *(वही टेक)*
एकजुट हों कारख़ानों-खेतों के मेहनतकश
  पार्टी हम सबकी जो काम करें;
यह धरती है हमारी, जनता की,
  यहाँ न जगह कामचोर की,
हमारे मांस पर हुए हैं कितने मोटे?
  लेकिन यदि ये घृणित शिकारी पक्षी,
हमारे आसमान से एक सुबह हो जायें ग़ायब
  सूरज की आभा तब भी बनी रहेगी।
(वही टेक फिर)

---

1. यूजीन पोतिए द्वारा पेरिस कम्यून (1871) के दौरान फ़्रेंच में लिखा गया यह गीत *इण्टरनेशनल* नाम से विश्व सर्वहारा का संघर्षगीत बन गया।

पृष्ठ 49 (46)

मार्सइयेज[1]

ओ मेहनत के बेटो, जागो, गौरव हासिल करो!
  सुनो, सुनो, वे कोटि-कोटि आवाज़ें कि तुम जागो,
बच्चे, बीवी, और पुरातन पितर तुम्हारे,
  देखो तुम उनके आँसू, और सुनो तुम उनकी चीख़ें!
क्या घृणित निरंकुश शासक करते रहें शरारत
    ले भाड़े के टट्टू, और गुण्डों के जत्थे -
    करते रहें धरा को सन्त्रस्त और वीरान
जबकि शान्ति और आज़ादी का बहता रहे ख़ून? *(कोरस)*
        आओ शस्त्र सँभालें, पंक्तिबद्ध हो जायें
        खेत सींचते उनके ख़ूँ से आगे बढ़ते जायें
बेपनाह ऐयाशी और शान-शौक़त की
  जुर्रत करते हैं अधम अतृप्त निरंकुश,
स्वर्ण और सत्ता की उनकी भूख अपरिमित
  भोगते और बेचते धूप-हवा भी;
हम ढोते उनका भार बन के लद्दू घोड़े
  वे कहें कि उनके दास उन्हें देवता मानें,
  लेकिन इन्सान से बढ़कर और कौन है?
फिर वे कब तक टिके रहेंगे, कब तक मारेंगे हमको? *(फिर वही कोरस)*
अरे आज़ादी! मानव क्या त्याग सकेगा तुमको,
  अनुभव कर लेने के बाद तुम्हारी दिलकश लौ को?
क्या रोक सकेंगी तुमको तहख़ानों के फाटक और सलाखें
  या क्या कोड़े बाँध सकेंगे तेरे उदात्त जीवट को?
लम्बे अर्से से बिलख रही है दुनिया,
  चला रहे हैं झूठ की कटार निरंकुश,
  लेकिन आज़ादी है तलवार और ढाल हमारी,
और व्यर्थ है उनकी सारी कलाकारी। *(फिर वही कोरस)*

---

1. *ला मार्सइयेज :* फ़्रांस का राष्ट्रगान। 24 अप्रैल, 1792 को रचा गया। फ़्रांसीसी क्रान्ति की हिफ़ाज़त करने के लिए युद्धरत सैनिकों के लिए इसे एक फ़्रांसीसी कप्तान क्लोद जोज़ेफ़ द लिल ने संगीतबद्ध किया। मार्सइयेज शहर से पेरिस की ओर मार्च करते सैनिकों ने जब इसे पहली बार गाया तो ऐसा आवेग और जोश पैदा हुआ कि लोग उमड़ पड़े। एक फ़्रेंच जनरल ने एक बार सन्देश भेजा था कि उसके पास तत्काल *मार्सइयेज* भेजा जाए क्योंकि इसकी ताक़त कई बटालियनों के बराबर है।

पृष्ठ 50 (47)

अवसरवाद का जन्म

क़ानून के दायरे में रहकर काम करने की सम्भावना ने ही दूसरे इण्टरनेशनल के समय में मज़दूर पार्टियों के भीतर अवसरवाद को जन्म दिया।

(लेनिन, कोलैप्स ऑफ़ II इंट. ने.)[1]

ग़ैर-क़ानूनी काम :

"किसी देश में जहाँ बुर्जुआ वर्ग या प्रतिक्रान्तिकारी सामाजिक जनवाद सत्ता में है, कम्युनिस्ट पार्टी को अपने क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी कामों के बीच एक तालमेल रखना अवश्य सीख लेना चाहिए, तथा क़ानूनी काम को हमेशा और निश्चित रूप से ग़ैर-क़ानूनी पार्टी के प्रभावी नियन्त्रण में ही रहना चाहिए।

– बुख़ारिन[2]

दूसरे इण्टरनेशनल के लक्ष्य के साथ विश्वासघात :

समाजवाद और श्रम के इस विराट संगठन को ऐसी शान्तिकालीन गतिविधियों के लिए अनुकूलित कर दिया गया, और जब संकट आया, तो बहुत से नेता और जनसमुदायों के भारी हिस्से अपनेआप को इस नयी स्थिति के अनुरूप बनाने में असमर्थ हो गये...। यही वह अपरिहार्य स्थिति है जो बहुत हद तक दूसरे इण्टरनेशनल के विश्वासघात का कारण है।

मार्क्स टु लेनिन, पृष्ठ 140 (मॉरिस हिलक्विट)

"द सिनिक्स वर्ड बुक" (1906)[3]

एम्ब्रोस प्रियर्स लिखता है :

---

1. लेनिन की पुस्तक, *द्वितीय इंटरनेशनल का पतन*
2. निकोलाई हवानोविच बुख़ारिन (1888-1938) - रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के सदस्य। राज्य, सर्वहारा अधिनायकत्व, राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार तथा ऐसे ही अन्य प्रश्नों पर लेनिन विरोधी दृष्टिकोण अपनाते रहे। अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद बार-बार लेनिनवादी पार्टी नीति का विरोध किया। 1937 में अपनी पार्टी विरोधी गतिविधियों के कारण पार्टी से निकाले गये।
3. व्यंग्यात्मक परिभाषाओं की पुस्तक, जो बाद में *डेविल्स डिक्शनरी* के नाम से प्रकाशित हुई। एम्ब्रोस बियर्स (1842-1914) अमेरिकी पत्रकार, कथाकार और व्यंग्यकार थे।

"ग्रेप शॉट[1] – (संज्ञा) – एक तर्क जिसे भविष्य अमेरिकी समाजवाद की माँगों के जवाब में तैयार कर रहा है।"

पृष्ठ 51 (48)

धर्म, स्थापित व्यवस्था का समर्थक :

दासता :

1835 में, प्रेस्बिटेरियन चर्च की जनरल असेम्बली ने प्रस्ताव पारित किया कि : "दासता पुराने और नये दोनों ही टेस्टामेण्टों में स्वीकृत है, और इसे ईश्वरीय सत्ता ने वर्जित नहीं किया है।"

द चार्ल्सटन बैप्टिस्ट एसोसिएशन ने 1835 में निम्नलिखित फ़रमान जारी किया :

"मालिकों द्वारा अपने गुलामों के समय का इस्तेमाल करने के अधिकार को सभी चीज़ों के सृष्टा ने स्पष्टत: मान्यता दे रखी है, जो अपनी मर्ज़ी से जिस भी चीज़ पर चाहे सम्पत्ति का अधिकार लागू कर सकता है।"

वर्जीनिया के मेथॉडिस्ट कॉलेज के एक प्रोफ़ेसर रेवरण्ड ई. डी. साइमन, डॉक्टर ऑफ़ डिवाइनिटी, ने लिखा :

"होली रिट (ईसाई धर्मशास्त्र – स.) के अवतरणों में साफ़ तौर पर गुलामों के ऊपर सम्पत्याधिकार और इस अधिकार से सम्बन्धित रोज़मर्रा की बातों का उल्लेख किया गया है। तब, कुल मिलाकर, बात यही है, चाहे हम स्वयं ईश्वर द्वारा स्थापित यहूदी नीति को देखें, या सभी युगों में मानवजाति के एक समान विचार और व्यवहार को लें, या न्यू टेस्टामेण्ट और नैतिक नियम के विधि-निषेध सम्बन्धी निर्देशों को देखें; हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दासता अनैतिक नहीं है। जब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अफ़्रीकी दास क़ानूनी तौर पर ख़रीदकर बँधुआ बनाये जाते थे, तब उनके बच्चों को बँधुआ बनाकर रखने की बात भी अपरिहार्यत: सिद्ध ही हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अमेरिका में जो दासता मौजूद है, उसकी स्थापना सही थी।"

पूँजीवाद का समर्थन :

हेनरी वॉन डाईक[2] "एस्से इन एप्लीकेशन" (1905) में लिखता है :

"बाइबिल की शिक्षा है कि ईश्वर दुनिया का मालिक है। वह अपनी शुभंकर इच्छा से, सामान्य नियमों के अनुरूप, प्रत्येक आदमी को उसका भाग देता है।"

---

1. बन्दूक़ के छर्रे
2. हेनरी वॉन डाईक (1852-1933) : अमेरिकी धार्मिक विचारक और लेखक

पृष्ठ 52 (49)

संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में आँकड़े :

सैन्य-संख्या 50,000 थी }
अब यह 300,000 है।

धनकुबेरों के पास 67 अरब की सम्पदा है।
व्यवसायों में लगे कुल व्यक्तियों में से
केवल 9/10 प्रतिशत ही धनिकतन्त्र में शामिल हैं।
फिर भी उनके पास कुल सम्पदा का 70 प्रतिशत है।

व्यवसायों में लगे कुल व्यक्तियों में से
29 प्रतिशत मध्यम वर्ग से सम्बन्धित हैं
उनके पास कुल सम्पदा का 25 प्रतिशत है = 24 अरब

व्यवसायों में लगे लोगों में से शेष 70 प्रतिशत
सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित हैं और उनके पास
कुल सम्पदा का सिर्फ़ 4 प्रतिशत अर्थात 4 अरब है।

लूसियन सैनियल के अनुसार, 1900 में
व्यवसाय में लगे कुल लोगों में से
= 250,251 धनिकतन्त्र से सम्बन्धित थे
= 8,429,845 मध्यम वर्ग से सम्बन्धित थे
= 20,395,137 सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित थे।

– *आयरन हील*[1]

रायफ़लें :

"तुम कहते हो कि संसद और राजकीय पदों पर तुम्हारा बहुमत होगा, लेकिन "तुम्हारे पास रायफ़लें कितनी हैं? क्या तुम्हें मालूम है कि पर्याप्त सीसा तुम्हें कहाँ से मिल सकता है? जहाँ तक बारूद की बात है, रासायनिक मिश्रण, यान्त्रिक मिश्रणों से बेहतर होते हैं, ये बात मेरी मान लो।"

– *आयरन हील, पृष्ठ 198*[2]

---

1. और 2. जैक लण्डन का उपन्यास

पृष्ठ 53 (50)

सत्ता...[1]

एक समाजवादी नेता ने धनिकतन्त्र की एक मीटिंग को सम्बोधित किया और उन पर समाज के कुप्रबन्ध का दोष लगाया और इस प्रकार पीड़ित मानवता के सम्मुख उपस्थित सभी विकरालताओं और दुख-तकलीफ़ों की सारी की सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर थोप दी। बाद में एक पूँजीपति (मि. विक्सन) उठ खड़ा हुआ और उसे इस प्रकार सम्बोधित किया :[2]

"इस पर हमारा जवाब यह है। हमारे पास तुम्हारे ऊपर बरबाद करने के लिए शब्द नहीं हैं। जब तुम अपने गर्वीले मज़बूत हाथ हमारे महलों और वैभव की ओर बढ़ाओगे, तब हम तुम्हें दिखा देंगे कि हमारी क्या ताक़त है। बमगोलों की गड़गड़ाहट और मशीनगनों की तड़तड़ाहट से हम अपना जवाब देंगे। हम तुम क्रान्तिवादियों को अपनी एड़ियों तले पीस डालेंगे, और तुम्हारे चेहरों को कुचल डालेंगे। यह दुनिया हमारी है। हम इसके मालिक हैं और यह हमारी ही रहेगी। जहाँ तक श्रम की बात है, यह तो जब से इतिहास शुरू हुआ तभी से धूल चाटता रहा है, और मैंने इतिहास को ठीक से पढ़ा है। और यह तब तक धूल चाटता रहेगा जब तक हमारे और हमारे उत्तराधिकारियों के हाथ में सत्ता रहेगी।

"एक शब्द है - सत्ता। यह सभी शब्दों का राजा है। ईश्वर नहीं, धन-वैभव नहीं, बल्कि सत्ता। अपनी ज़बान पर रख लो और तब तक रखे रहो जब तक कि यह उसे झनझनाने न लगे।"

"मुझे उत्तर मिल गया", अर्नेस्ट (उस समाजवादी नेता)[3] ने निर्विकार भाव से कहा। "एकमात्र यही उत्तर दिया भी जा सकता था। सत्ता। हम मज़दूर वर्ग के लोग इसी का तो प्रचार करते हैं। हम जानते हैं और अपने कटु अनुभव से भलीभाँति जानते हैं, कि सत्य की, न्याय की, मानवता की, कोई भी अपील कभी तुम्हें छू नहीं सकती। तुम्हारे दिल भी तुम्हारी उन एड़ियों की तरह ही कठोर हैं जिनसे तुम ग़रीबों के चेहरे कुचलते हो। इसीलिए तो हमने सत्ता का प्रचार किया है। लेकिन, चुनाव के दिन हमारे मतपत्रों की ताक़त तुमसे तुम्हारी सरकार छीन ले जायेगी...।"

"अगर चुनाव के दिन तुम्हें बहुमत, भारी बहुमत मिल ही जाये, तो भी उससे क्या फ़र्क़ पड़ने वाला है", मि. विक्सन तपाक से बोला।

---

1. शीर्षक का शेष हिस्सा फटा हुआ है
2. भगतसिंह के शब्द
3. कोष्ठक में भगतसिंह के शब्द

"मान लो यदि मतपेटिकाओं में तुम्हारी जीत के बावजूद हम तुम्हें सत्ता सौंपने से इन्कार कर दें तो?" [पृष्ठ 54 (51) पर जारी]

"हमने उस पर भी सोच रखा है", अर्नेस्ट ने जवाब दिया। "और इसका जवाब हम तुम्हें गोलियों से देंगे। सत्ता, तुम्हीं ने इसे शब्दों का राजा कहा है। बहुत अच्छा! सत्ता, देखेंगे इसे। और जिस दिन हम चुनाव में विजय हासिल कर लेंगे, और तुम हमारी इस संवैधानिक और शान्तिपूर्ण ढंग से हासिल की गयी सत्ता को हमें सौंपने से इन्कार कर दोगे, तो तुम्हारे इस सवाल के जवाब में कि हम क्या करेंगे – उस दिन, मैं बता दूँ, कि हम तुम्हें इसका जवाब देंगे, हम बमगोलों की गड़गड़ाहट और मशीनगनों की तड़तड़ाहट से अपना जवाब देंगे।

"तुम हमसे बच नहीं सकते। यह सही है कि तुमने इतिहास को ठीक से पढ़ा है। यह सही है कि श्रम इतिहास के आरम्भ से ही धूल चाटता आ रहा है। और यह भी सही है कि जब तक तुम्हारे और तुम्हारे उत्तराधिकारियों के हाथ में सत्ता रहेगी, तब तक श्रम धूल ही चाटता रहेगा। मैं तुमसे सहमत हूँ। तुमने जो कुछ कहा है उन सारी बातों से मैं सहमत हूँ। सत्ता ही निर्णायक होगी, जैसाकि हमेशा होता आया है; यही तो वर्गों का संघर्ष है। जैसे तुम्हारे वर्ग ने पुराने सामन्ती तन्त्र को ध्वस्त किया, ठीक वैसे ही मेरा वर्ग, मज़दूर वर्ग, तुम्हारे वर्ग को ध्वस्त कर डालेगा। अगर तुम अपने प्राणिविज्ञान और अपने समाज विज्ञान को भी उतनी ही स्पष्टता से पढ़ो, जितनी स्पष्टता से तुम इतिहास पढ़ते हो, तो तुम देखोगे कि मैंने जिस हश्र का वर्णन किया है वह अपरिहार्य है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि इसमें एक वर्ष लगेगा, दस वर्ष लगेंगे या हज़ार वर्ष लगेंगे – यह तय है कि तुम्हारा वर्ग मिट्टी में मिल जायेगा। और यह सत्ता के जरिये ही होगा। हम मेहनतकश इस शब्द को इतना रट चुके हैं कि हमारे दिमाग़ इससे झनझना रहे हैं। सत्ता। यह एक राजोचित शब्द है।"

– जैक लण्डन कृत आयरन हील (पृष्ठ 88)

पृष्ठ 55 (52)

आँकड़े[1]

इंग्लैण्ड :

1922 - बेरोज़गारों की संख्या = 1,135,000
1926 - यह 1¼ से 1½ मिलियन के बीच
अर्थात 1,250,000 से 1,500,000 के बीच रही है।

1. स्रोत का पता नहीं

अंग्रेज़ मज़दूर नेताओं का विश्वासघात

1911 से 1913 तक के वर्ष आमतौर पर खदान मज़दूर, रेलकर्मियों और परिवहन मज़दूरों के बेमिसाल वर्ग-संघर्षों का समय था। अगस्त 1911 में, रेलवे की राष्ट्रीय, दूसरे शब्दों में, आम हड़ताल, फूट पड़ी थी। उन दिनों ब्रिटेन के ऊपर क्रान्ति की एक धुँधली छाया मँडरा रही थी। लेकिन नेतागण ने इस आन्दोलन को पंगु कर डालने के लिए अपनी पूरी ताक़त लगा दी। उनका इरादा "देशभक्ति" का था; यह हरकत अगादिर की उस घटना के समय की जा रही थी, जिसने जर्मनी के साथ युद्ध का ख़तरा उपस्थित कर दिया था। जैसाकि आज भलीभाँति मालूम है, प्रधानमन्त्री ने मज़दूर-नेताओं को एक गुप्त बैठक में बुलाया और उनसे पितृभूमि की रक्षा की अपील की। और नेताओं ने, बुर्जुआ वर्ग को मज़बूत करने के लिए अपने बूतेभर सब कुछ दिया, और इस प्रकार साम्राज्यवादी नरसंहार के लिए रास्ता साफ़ किया।

(पृष्ठ 3) ह्वेयर इज़ ब्रिटेन गोइंग?[1]
त्रात्स्की[2]

पृष्ठ ५६ (५३)

विश्वासघात :

केवल 1920, यानी 'काले शुक्रवार' के बाद ही, आन्दोलन सीमाओं में वापस लौटा, जब ख़ानकर्मियों, रेलकर्मियों और परिवहनकर्मियों के त्रिपक्षीय संश्रय के नेताओं ने आम हड़ताल के साथ विश्वासघात कर दिया।

(पृष्ठ 3)[3]

सुधार के लिए क्रान्ति का ख़तरा ज़रूरी है :

...ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग ने यह समझ लिया था कि ऐसे उपाय (सुधार) के जरिये क्रान्ति को टाला जा सकता है। अत: इससे निष्कर्ष निकलता है कि सुधारों तक

---

1. त्रात्स्की की कृति *ह्वेयर इज़ ब्रिटेन गोइंग?*
2. लिओन त्रात्स्की : लेव दवीदोविच त्रात्स्की (1879-1940) - लेनिनवाद के घोर विरोधी। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी (बोल्शेविक) की छठी कांग्रेस में (1917) बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बन गये। अक्टूबर क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण हिस्सेदारी। क्रान्ति के बाद कई सरकारी पदों पर रहे। 1923 में पार्टी की आम नीति और समाजवाद के निर्माण के लेनिन के कार्यक्रम के ख़िलाफ़ गुटबाज़ी भरा संघर्ष चलाया तथा इस बात का प्रचार किया कि सोवियत संघ में समाजवाद की विजय असम्भव है। कम्युनिस्ट पार्टी ने त्रात्स्कीवाद को पार्टी में निम्न पूँजीवादी प्रवृत्ति के रूप में बेनकाब किया और उसे संगठन व विचारधारा के दृष्टिकोण से पराजित किया। त्रात्स्की 1927 में पार्टी से निकाल दिये गये ओर 1929 में सोवियत विरोधी गतिविधियों के कारण उन्हें देश निकाला दे दिया गया।

को भी लागू करवाने के लिए, सिर्फ़ धीरे-धीरे काम करते रहने का सिद्धान्त पर्याप्त नहीं है, और कि क्रान्ति का एक वास्तविक ख़तरा ज़रूरी है।

(पृष्ठ 29)[1]

सामाजिक एकता :

...ऐसा हो सकता है कि एक बार जब हम एक ऐसे विशेषाधिकारप्राप्त वर्ग के सफाये के लिए उठ खड़े हों, जो रंगमंच से हटना न चाहता हो, तब वर्ग-संघर्ष की बुनियादी अन्तर्वस्तु, उसी में निहित प्रतीत हो। लेकिन नहीं। मैकडोनाल्ड[2] सामाजिक एकता की चेतना "जागृत" करना चाहते हैं। पर किसकी? मज़दूर वर्ग की एकता तो बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में उसकी आन्तरिक सुसम्बद्धता की अभिव्यक्ति होती है।

मैकडोनाल्ड जिस सामाजिक एकता का उपदेश देते हैं, वह शोषकों के साथ शोषितों की एकता, या दूसरे शब्दों में, शोषण को बनाये रखने के अलावा और कुछ नहीं है।[3]

क्रान्ति एक आफ़त :

"रूस की क्रान्ति ने" मैकडोनाल्ड के कथनानुसार, "हमें बड़ा सबक सिखाया। इसने दिखा दिया कि क्रान्ति एक बरबादी और विपदा के सिवाय और कुछ नहीं है।" [पृष्ठ 57 (54) पर जारी]

क्रान्ति तो विपदा को ही जन्म देती है लेकिन ब्रिटिश जनतन्त्र ने तो साम्राज्यवादी युद्ध को जन्म दे दिया...जिसकी बरबादी की तुलना क्रान्ति की विपदाओं से तो निश्चित तौर पर तनिक भी नहीं की जा सकती। फिर भी, जिस क्रान्ति ने ज़ारशाही, कुलीनतन्त्र और बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंका, चर्च को हिला कर रख दिया, 13 करोड़ लोगों के एक राष्ट्र या राष्ट्रों के एक समूचे कुल में, एक नये जीवन का संचार किया, उसके सामने यह घोषणा करने के लिए कि – क्रान्ति एक विपदा के सिवाय और कुछ नहीं है – ऐसे ही बहरे कानों और निर्लज्ज चेहरों की ज़रूरत है।

(पृष्ठ 64)[4]

---

1. वही
2. सम्भवत: जेम्स रैम्ज़े मैक्डोनाल्ड (1866-1937): ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता और दो बार प्रधानमन्त्री
3. *ह्वेयर इज़ ब्रिटेन गोइंग?*
4. वही

शान्तिपूर्ण?

कब और कहाँ सत्ताधारी वर्ग ने शान्तिपूर्ण मतदान के जरिये कभी सत्ता और सम्पत्ति सौंपी है – और वह भी, ख़ासतौर से ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग ने, जो सदियों से दुनियाभर में लूटपाट करता आया है? (पृष्ठ 66)[1]

समाजवाद का लक्ष्य : शान्ति

यह एकदम निर्विवाद सच्चाई है कि समाजवाद का लक्ष्य, सर्वप्रथम रूप से, ताक़त के सबसे भोंड़े और ख़ूनी रूपों को ख़त्म करना है, और फिर उसके बाद उसके और छिपे रूपों को भी ख़त्म करना है। *(पृष्ठ 80)*

"ह्वेयर इज़ ब्रिटेन गोइंग?", त्रात्स्की

विश्व क्रान्ति का लक्ष्य :

1. पूँजीवाद को उखाड़ फेंकना
2. मानवता की सेवा के लिए प्रकृति का नियन्त्रण करना।

बुख़ारिन ने इसे ऐसे ही परिभाषित किया।

पृष्ठ 58 (55)

आदमी और मशीनरी

द युनाइटेड स्टेट्स ब्यूरो ऑफ़ लेबर का कहना है :

– मशीन पर काम करके एक आदमी 1 घण्टा 34 मिनट में पिनों का 12 पौण्ड का पैकेट तैयार कर सकता है।

– अगर आदमी मशीन पर नहीं, बल्कि सिर्फ़ औज़ारों से काम करे तो उतने ही काम में 140 घण्टा 55 मिनट का समय लगेगा।

(अनुपात – 1.34 : 140.55 मिनट)

– मशीन पर काम करके 100 जोड़े जूते बनाने में 234 घ. 25 मिनट लगते हैं।

– हाथ से इसमें 1,831 घण्टे 40 मिनट लगेंगे।

– मशीन पर काम करने पर श्रम की लागत $ 69.55 आती है।

– हाथ से...$ 457.79 आती है।

– मशीनी श्रम द्वारा 500 गज चारख़ानेदार कपड़ा तैयार करने में 73 घण्टे लगते हैं।

– हाथ के श्रम द्वारा, इसमें 5,844 घण्टे लगते हैं।

– मशीनी श्रम द्वारा 100 पौण्ड सिलाई का सूती धागा 39 घण्टों में तैयार होता है।

– हाथ से इसमें 2,895 घण्टे लगते हैं।

1. वही

पुनश्चः कृषि :

– एक भला–चंगा आदमी हँसुआ से एक एकड़ फ़सल एक दिन (12 घं.) में काट सकता है।

– एक मशीन उसी काम को 20 मिनट में कर देती है।

– छः आदमी मूसल से 60 लीटर गेहूँ की मंड़ाई आधे घण्टे में कर सकते हैं।

– एक मशीन उतने ही समय में 12 गुना अधिक काम कर सकती है।

"मशीनरी के इस्तेमाल से मानव–श्रम की प्रभावकारिता में होने वाली बढ़ोत्तरी...राई के मामले में 150 प्रतिशत से लेकर जौ के मामले में 2,244 प्रतिशत तक हो जाती है...।"[1]

पृष्ठ 59 (56)

सं.रा.अ. और उसकी आबादी की सम्पदा : (1850–1912)[2]

	प्रति व्यक्ति	कुल आबादी
1850 में कुल सम्पदा थी		
	$ 7,135,780,000	$ 308 = 23,191,876
1860	$ 16,159,616,000	$ 514 = 31,443,321
1870	$ 30,068,518,000	$ 780 = 38,558,371
1880	$ 43,642,000,000	$ 870 = 50,155,783
1890	$ 65,037,091,000	$ 1,036 = 62,947,714
1900	$ 88,517,307,000	$ 1,165 = 75,994,575
1904	$ 107,104,202,000	$ 1,318 = 82,466,551
1912	$ 187,139,071,000	$ 1,965 = 95,40503

मशीनरी इस्तेमाल के कारण।

———○———

मशीन अपनी प्रकृति में सामाजिक है, जैसेकि औज़ार व्यक्तिगत था।[3]

———○———

"हमें ख़राब कपड़ा दो, लेकिन हमें बेहतर आदमी दो", एमर्सन[4] का कहना है।

"सुखण्डी रोग से मरते शिशुओं की प्राण–रक्षा करो, फिर उसके बाद कपड़ा व्यापार को तरजीह दो।" *पृष्ठ 81*[5]

---

1. स्रोत अज्ञात 2. स्रोत अज्ञात 3. अज्ञात
4. रैल्फ वाल्डो एमर्सन (1803–1882) : प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि, चिन्तक और निबन्धकार
5. टॉमस कार्लाइल (1795–1881), *पास्ट एण्ड प्रज़ेण्ट*, बुक IV

आदमी को मशीन पर कुर्बान नहीं किया जा सकता। मशीन को निश्चय ही मानवजाति की सेवा में लगना चाहिए, जबकि अभी ही इस औद्योगिक व्यवस्था में मानवजाति के ऊपर भारी कहर बरपा होने का ख़तरा मँडराने लगा है।

पॉवर्टी एण्ड रिचेज़ (पृष्ठ 81), स्काट नीअरिंग[1]

पृष्ठ 60 (57)

आदमी और मशीनरी :

सी. नैनफ़ोर्ड हेण्डरसन अपनी कृति "रे डे" में लिखता है :

यह उद्योग की संस्था, जो सभी संस्थाओं में सबसे पुरानी है, मानवजाति को चीज़ों की निरंकुशता से मुक्त करने की गरज से संगठित और विकसित हुई, लेकिन अब यह स्वयं उससे बड़ी निरंकुशता बन चुकी है, जो विशाल आबादी को गुलामों की दशाओं में - ऐसे गुलामों की दशाओं में धकेलती जा रही है जो लम्बे और थका देने वाले घण्टों तक काम करते हुए, ढेरों चीज़ें पैदा करते रहने के लिए अभिशप्त हैं, जबकि वे जो चीज़ें पैदा करते हैं, खुद उन्हीं के अभाव से त्रस्त रहने के लिए विवश हैं।

"पाव. रिचेज़, (पृष्ठ 87)"

आदमी मशीनरी के लिए नहीं है :

आदमी ने इस्पात और आग के संयोग से जो चीज़ पैदा की है और जिसे मशीन कहा है, उसे निश्चय ही हमेशा मनुष्य का स्वामी नहीं, बल्कि सेवक ही रहना चाहिए। न तो मशीन और न ही मशीन के मालिक को मानवजाति पर शासन करने का अधिकार है। *पृष्ठ 88*

साम्राज्यवाद :

साम्राज्यवाद विकास के उस चरण का पूँजीवाद है जिसमें इज़ारेदारियों और वित्तीय पूँजी ने एक प्रभुत्वकारी प्रभाव हासिल कर लिया है, निर्यात-पूँजी भारी महत्त्व प्राप्त कर चुकी है, अन्तरराष्ट्रीय ट्रस्टों ने दुनिया का बँटवारा करना शुरू कर दिया है, और सबसे बड़े पूँजीवादी देशों ने पृथ्वी के समूचे भौगोलिक क्षेत्रफल का आपस में बँटवारा पूरा कर लिया है।" *- लेनिन*[2]

---

1. स्कॉट नीअरिंग (1883-1983) : अमेरिकी पर्यावरणवादी, युद्धविरोधी कार्यकर्ता, प्रचारक और लेखक। *पॉवर्टी एण्ड रिचेज़* 1916 में प्रकाशित हुई थी।
2. वी.आई. लेनिन, *साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था*

पृष्ठ 61 (S 8)

अधिनायकत्व :

अधिनायकत्व एक सत्ता है जो सीधे ताक़त पर आधारित होती है, और किसी क़ानून से नहीं बँधी होती।

सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी अधिनायकत्व एक ऐसी सत्ता है जो बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध और उसके ऊपर, सर्वहारा वर्ग द्वारा ताक़त की बदौलत लागू की जाती है, और जो किसी क़ानून से नहीं बँधी होती।

प्रोलि. रिवो.[1] *(पृष्ठ 18) – लेनिन*

क्रान्तिकारी अधिनायकत्व :

क्रान्ति एक कार्रवाई है जिसके तहत आबादी का एक तबका दूसरे तबकों पर रायफलों, संगीनों, बन्दूक़ों और ऐसे ही अन्य अत्यन्त सत्तावादी उपायों के जरिये, अपनी इच्छा आरोपित करता है। और जो पक्ष विजयी होता है वह अपना शासन आवश्यक रूप से, उस भय के जरिये स्थापित करता है, जिसे उसके हथियार प्रतिक्रियावादियों में उत्पन्न करते हैं। यदि पेरिस के कम्यून ने बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ हथियारबन्द जनता पर भरोसा नहीं किया होता, तो क्या वह अपनेआप को चौबीस घण्टे से भी अधिक क़ायम रख सका होता? इसके विपरीत, क्या हमारी यह आलोचना जायज़ नहीं है कि कम्यून ने इस सत्ता का बहुत ही कम इस्तेमाल किया?

– एफ. एंगेल्स[2]

बुर्जुआ जनतन्त्र :

बुर्जुआ जनतन्त्र, सामन्तवाद की तुलना में, एक महान ऐतिहासिक प्रगति होने के बावजूद, एक बहुत ही सीमित, बहुत ही पाखण्डपूर्ण संस्था, धनिकों के लिए एक स्वर्ग और शोषितों एवं ग़रीबों के लिए एक जाल और छलावे के अलावा न तो कुछ है, और न ही हो सकता है।

लेनिन (पृष्ठ 28)[3]

---

1. लेनिन, *सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की* से
2. फ़्रेडरिक एंगेल्स, *सत्ता के बारे में* से
3. वही

पृष्ठ 62 (59)

श्रम का शोषण और राज्य :

"सिर्फ़ प्राचीन और सामन्ती ही नहीं, बल्कि आज का प्रतिनिधि राज्य भी पूँजी द्वारा उजरती श्रम के शोषण का एक उपकरण ही है।"

– एंगेल्स[1]

अधिनायकत्व :

"चूँकि राज्य सिर्फ़ एक अस्थायी संस्थाभर है जिसका उपयोग अपने शत्रुओं का बलपूर्वक दमन करने के लिए क्रान्ति में किया जाता है, इसलिए जनता के स्वतन्त्र राज्य की बात करना कोरी बकवास है, जब तक सर्वहारा वर्ग को राज्य की आवश्यकता रहती है, तब तक इसकी आवश्यकता स्वतन्त्रता के हित में नहीं, बल्कि अपने विरोधियों का दमन करने के लिए पड़ती है, और जैसे ही स्वतन्त्रता की बात करना सम्भव हो जाता है, वैसे ही इसका अस्तित्व अपनेआप ख़त्म हो जाता है।"

बेबेल को लिखे एंगेल्स के पत्र से, 28 मार्च, 1875[2]

अधीर आदर्शवादी :

अधीर आदर्शवादी के लिए – और बिना कुछ अधीरता के शायद ही आदमी प्रभावी सिद्ध हो सके – यह लगभग तय बात है कि दुनिया को ख़ुशहाल बनाने की कोशिश में उसे अपने विरोधियों की घृणा का पात्र बनना होगा और निराश भी होना पड़ सकता है।

– बर्ट्रेण्ड रसेल

पृष्ठ 63 (60)

नेता :

कार्लाइल[3] लिखता है, "कोई भी समय बरबाद न हुआ होता", यदि कोई महान आदमी मिल जाता जो काफ़ी समझदार और नेक होता, जिसमें इतनी

1. *परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति* से
2. अगस्त बेबेल (1840–1913) – जर्मन तथा अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के एक प्रसिद्ध नेता। 1867 से जर्मन मज़दूर संघों की लीग के नेता, पहले इण्टरनेशनल के सदस्य, 1867 से राइख़स्टाग (जर्मन संसद) के सदस्य, जर्मन सामाजिक-जनवाद के संस्थापकों में से एक, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा सहयोगी, दूसरे इण्टरनेशनल के प्रमुख नेता
3. टॉमस कार्लाइल (1795–1881) : ब्रिटिश लेखक व निबन्धकार

समझदारी होती कि वह सही-सही जान ले कि वक़्त का तक़ाज़ा क्या है; जिसमें इतना पराक्रम होता कि वक़्त के लिहाज़ से सही रास्ते पर नेतृत्व कर सकता, तब तो इनकी बदौलत कोई भी समय मुक्ति का समय हो सकता था।

स्वेच्छाचारिता :

काउत्स्की ने "प्रोलितारियत डिक्टेटरशिप" शीर्षक से एक पुस्तिका लिखी, जिसमें उसने बोल्शेविकों द्वारा बुर्जुआ वर्ग के लोगों को वोट देने के अधिकार से वंचित किये जाने की निन्दा की। इस पर लेनिन ने अपनी "प्रोलितारियन रिवोल्यूशन" : (पृष्ठ 77) में लिखा :

"स्वेच्छाचारिता! ज़रा सोचें तो कि इस खेद प्रकाश में कमीनेपन के किस निकृष्ट स्तर पर उतरकर बुर्जुआ वर्ग की चापलूसी की गयी है, और कितना अधिक मूर्खतापूर्ण पाण्डित्य बघारा गया है। जबकि सदियों से, मज़दूरों का दमन करने के लिए, ग़रीब लोगों के हाथ-पाँव बाँधे रखने के लिए, और जनता के सीधे-सादे और मेहनतकश समुदायों के रास्ते में एक सौ एक अड़ंगे और अड़चनें खड़े करते रहने के लिए, पूरी तरह से बुर्जुआ, और उसमें भी पूँजीवादी देशों के प्रतिक्रियावादी विधिवेत्ता ही नियम-विधान बनाते आये हैं, और वे ही विविध संहिताओं और क़ानूनों पर सैकड़ों ग्रन्थ और उनकी व्याख्याएँ लिखते आये हैं - जहाँ इतना सब किया गया है, वहाँ बुर्जुआ उदारपन्थियों और श्री काउत्स्की को कोई "स्वेच्छाचारिता" नहीं दिखायी देती! तब तो यह सब क़ानून-व्यवस्था है! यह सब इसलिए सोचा और लिखा गया है कि कैसे ग़रीबों को दबाये रखकर निचोड़ते रहा जाये। हज़ारों-हज़ार बुर्जुआ वकील और सरकारी अहलकार क़ानूनों की ऐसी व्याख्या करते रहते हैं कि मज़दूर और औसत किसान उनकी कंटीले तारों की घेरेबन्दी को कभी तोड़ न सकें। बेशक, यह कोई स्वेच्छाचारिता नहीं है। बेशक, यह उन गन्दे या मुनाफ़ाखोर शोषकों का अधिनायकत्व नहीं है जो जनता का ख़ून पी रहे हैं। ओह, यह ऐसा कुछ भी नहीं है! यह तो 'शुद्ध जनतन्त्र' है, जो दिन-प्रतिदिन शुद्धतर होता जा रहा है। [पृष्ठ 64 (61) पर जारी] लेकिन जब, साम्राज्यवादी युद्ध द्वारा सरहद पार के अपने भाइयों से अलग कर दिये गये मेहनतकश और शोषित जनसमुदायों ने इतिहास में पहली बार अपनी सोवियतें गठित कर ली हैं, जब उन्होंने राजनीतिक निर्माण के लिए मज़दूरों का और उन वर्गों का आह्वान किया है जिन्हें बुर्जुआ वर्ग उत्पीड़ित और जड़ बनाये रखता था, और जब से वे एक नया सर्वहारा राज्य निर्मित करने के काम में लग गये हैं, तथा विकट रूप से जारी युद्ध के दौरान, गृहयुद्ध की ज्वाला में, जब वे 'शोषकों से रहित राज्य' के बुनियादी सिद्धान्त निरूपित करने लगे, तब बुर्जुआ वर्ग के सभी पाजी तत्त्व, और

ख़ून चूसने वालों के सभी गिरोह काउत्स्की के सुर में सुर मिलाकर, स्वेच्छाचारिता की चीख़-पुकार मचाने लगे हैं!

(लेनिन) पृष्ठ 77-78[1]

पार्टी :

लेकिन यह स्पष्ट हो चुका है कि जब तक क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए एक सक्षम पार्टी न हो, तब तक कोई क्रान्ति सम्भव नहीं हो सकती।

(पृष्ठ 15, लेसंस ऑफ़ अक्टूबर, 1917)[2]

सर्वहारा क्रान्ति के लिए पार्टी एक अपरिहार्य उपकरण है।

(पृष्ठ 17, वही, त्रात्स्की कृत)

पृष्ठ ६८ (६२)

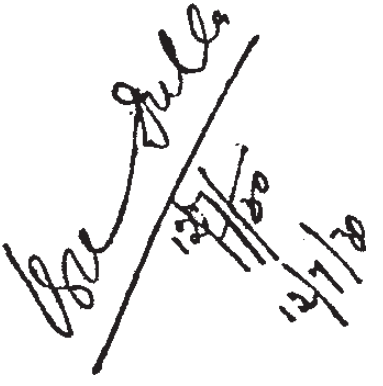

उसके (मेहनतकश, आदमी के) लिए क़ानून, नैतिकता, धर्म ये सब उसके (सर्वहारा के) लिए नाना बुर्जुआ पूर्वाग्रह मात्र हैं, जिनकी आड़ में इतने ही बुर्जुआ स्वार्थ घात लगाये रहते हैं।

कार्ल मार्क्स - घोषणापत्र[4]

1. लेनिन, *सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की*
2. लिओन त्रात्स्की की किताब, *लेसंस ऑफ़ अक्टूबर 1917* से
3. पृष्ठ का ऊपरी लगभग दो-तिहाई भाग ख़ाली है। इसमें सिर्फ़ बी.के. दत्त (बटुकेश्वर दत्त) का तिरछा हस्ताक्षर है। और दिनांक 12.7.30 दो बार अंकित है।
4. मार्क्स-एंगेल्स, *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र*

पृष्ठ 67 (64)

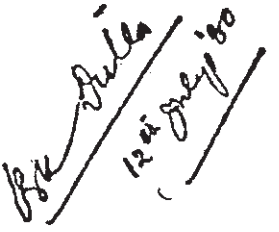

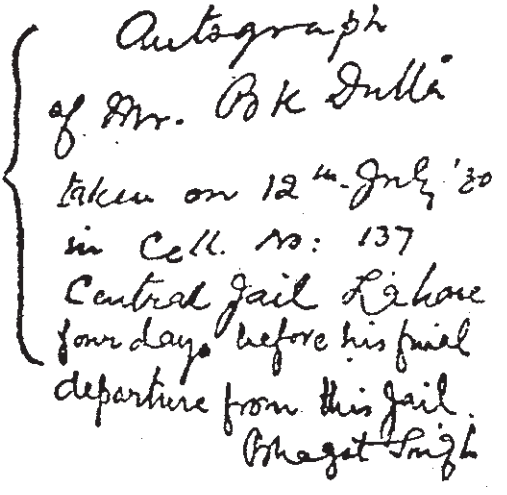

B K Dutta
12th July '30

Autograph
of Mr. B K Dutta
taken on 12th July '30
in Cell No: 137
Central Jail Lahore
four days before his final
departure from this jail
Bhagat Singh

नोटबुक में पृष्ठ 66 (63) नहीं है। इस पृष्ठ, यानी नोटबुक पृष्ठ 67 (64) पर, मध्य में, बी.के. दत्त का तारीख़ (12.7.1930) सहित हस्ताक्षर है।

इसके नीचे भगतसिंह की लिखावट में पृष्ठ पर नीचे, दायीं तरफ़ यह टिप्पणी अंकित है :

श्री बी.के. दत्त का इस जेल से फ़ाइनल
डिपार्चर से चार दिन पहले कोठरी न. 137,
सेण्ट्रल जेल लाहौर, में 12वीं जुलाई '30
को लिया गया आटोग्राफ़,

इसके नीचे भगतसिंह के हस्ताक्षर हैं। इन प्रविष्टियों के अलावा नोटबुक में और किसी प्रविष्टि में तारीख़ नहीं है।

नोटबुक में पृष्ठ 68 (65) नहीं है।

पृष्ठ ६१ (६६)

कम्युनिस्टों का लक्ष्य

"कम्युनिस्ट अपने दृष्टिकोण और लक्ष्य छिपाने से घृणा करते हैं। वे खुले तौर पर एलान करते हैं कि उनका लक्ष्य सिर्फ़ समस्त मौजूदा सामाजिक दशाओं को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने के द्वारा ही हासिल हो सकता है। शासक वर्गों को कम्युनिस्ट क्रान्ति के भय से कांपने दो। सर्वहाराओं के पास अपनी बेड़ियों के सिवाय खोने के लिए कुछ नहीं है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है।

दुनिया के मज़दूरो, एक हो![1]

कम्युनिस्ट क्रान्ति का लक्ष्य

"हम ऊपर देख चुके हैं, कि मज़दूर वर्ग की क्रान्ति में पहला क़दम, सर्वहारा वर्ग को उठाकर शासक वर्ग की स्थिति में लाना है, जनवाद की लड़ाई को जीतना है। सर्वहारा अपने राजनीतिक प्रभुत्व का प्रयोग बुर्जुआ वर्ग से धीरे-धीरे करके सारी पूँजी छीनने, उत्पादन के सभी उपकरणों को राज्य के, अर्थात शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग के हाथों में केन्द्रीकृत करने तथा उत्पादक शक्तियों की समग्रता में यथाशीघ्र वृद्धि करने के लिए करेगा।"

"कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो"[2]

पृष्ठ ७० (७१)

कार्ल मार्क्स की ग़लतियाँ निकालना :

...और यह निश्चित मालूम पड़ता है कि त्रात्स्की मानो उससे सम्बन्धित थे जिसे जर्मन "असली राजनीति" का स्कूल कहा करते थे, और किसी भी विचारधारा के प्रति एकदम उतना ही मासूम थे जितना कि बिस्मार्क। और, इसीलिए, यह देखकर कुतूहल होता है कि त्रात्स्की भी इतने क्रान्तिकारी नहीं हैं कि कह सकें कि मार्क्स ने एक ग़लती की थी; बल्कि वह एक या अधिक पृष्ठ अर्थनिरूपण के काम में – अर्थात यह सिद्ध करने में लगाना ज़रूरी समझते हैं कि पवित्र पुस्तकों में जो कुछ कहा गया है, उसका अर्थ उससे एकदम भिन्न है।

त्रात्स्की कृत *'लेसन्स ऑफ़ अक्टूबर 1917'* की भूमिका
भूमिका ए. सूसन लॉरेन्स द्वारा लिखित

---

1. *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र* का आख़िरी पैरा
2. *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र*

जनता की आवाज़ :

हमें जितनी सरकारों के बारे में जानकारी है, वे सबके सब मुख्य रूप से, जनता के प्रति उदासीन रहकर ही शासन करती रही हैं, वे हमेशा ही देश के राजनीतिक रूप से सचेत इस या उस तबके की, अल्पसंख्यक सरकारें ही रही हैं। लेकिन जब यह दैत्य (यानी जनता - स.) जाग जायेगा, तो उसी की मर्ज़ी लागू होगी, लेकिन सबसे बड़ी बात है कि यह समय से जागेगा या नहीं।

भूमिका[1]

पृष्ठ 11 (68)

लेनिन ने जुलाई, 1917 में लिखा, "यह अक्सर होता है कि जब घटनाएँ अचानक मोड़ ले लेती हैं, तो एक अग्रणी पार्टी भी कुछ समय तक के लिए इस नयी परिस्थिति के साथ अपनी सुसंगति नहीं बना पाती। वह वे ही पुराने जुमले दुहराती रहती है, जो इस नयी परिस्थिति में अर्थहीन हो चुके होते हैं, तथा जिस अनुपात में घटनाओं में 'अप्रत्याशित' परिवर्तन हो चुका होता है, उसी अनुपात में उनकी अर्थवत्ता भी 'अप्रत्याशित रूप से' ख़त्म हो चुकी होती है।

लेसंस ऑफ़ अक्टूबर (पृष्ठ 17)[2]

रणकौशल और रणनीति :

जैसे युद्ध में, वैसे ही राजनीति में भी, रणकौशल का अर्थ है अलग-अलग कार्रवाई का संचालन करने की कला; रणनीति का अर्थ है विजय पाने की, अर्थात सत्ता पर वास्तविक क़ब्ज़ा करने की कला।

(पृष्ठ 18)[3]

प्रचार और कार्रवाई :

और जब सर्वहारा वर्ग की पार्टी तैयारी से, यानी प्रचार और संगठन एवं आन्दोलन से, आगे बढ़कर सत्ता के लिए वास्तविक संघर्ष में उतरती है और बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध एक वास्तविक जन-विद्रोह को अंजाम देने लगती है, तब एक अत्यन्त अचानक बदलाव घटित होता है। ऐसे में पार्टी के भीतर ऐसे तत्त्व जो दृढ़संकल्प नहीं रखते, या संदेहशील, या समझौतावादी, या कायर होते हैं - वे

---

1. वही
2. और 3. 1926 में प्रकाशित त्रात्स्की की पुस्तक *लेसंस ऑफ़ अक्टूबर 1917* से

जन-विद्रोह का विरोध करने लगते हैं, अपने विरोध को उचित ठहराने के लिए सैद्धान्तिक दलीलें खोजने लगते हैं, और उन्हें ये दलीलें, अपने कल के विरोधियों के बीच, एकदम पके-पकाये तौर पर, मिल भी जाती हैं।

त्रात्स्की 19[1]

———○———

पृष्ठ 72 (69)

"अब ज़रूरत इस बात कि है कि हम अपनेआप को पुराने फ़ार्मूलों से नहीं, बल्कि नयी वास्तविकताओं से निर्देशित करें।"

लेनिन (पृष्ठ 25)[2]

वह हमेशा ही भविष्य के लिए अतीत से लड़ते रहे।

पृष्ठ 41[3]

———○———

...लेकिन एक क्षण ऐसा आता है जब सोचने की यह आदत, कि दुश्मन अधिक बलवान है, विजय के लिए मुख्य बाधा बन जाती है।

त्रात्स्की, पृष्ठ 48[4]

...लेकिन ऐसी परिस्थितियों में हरेक पार्टी के पास अपना लेनिन तो होगा नहीं।

...महत्त्वपूर्ण क्षण को गँवा देने का क्या मतलब होता है?...

रणकौशलों की सारी कला इसी में है, कि जब परिस्थितियों का संयोग सर्वाधिक अनुकूल हो तो उस क्षण के अनुरूप कार्रवाई की जाये...।

परिस्थितियों ने ऐसा ही संयोग उपस्थित किया था और लेनिन ने कहा था कि संकट को किसी न किसी पक्ष में हल करना ज़रूरी है। लेनिन ने बार-बार कहा, 'अभी या कभी नहीं'।

पृष्ठ 52[5]

पृष्ठ 73 (70)

एक क्रान्तिकारी पार्टी की ताक़त एक निश्चित सीमा तक बढ़ती है, लेकिन उसके बाद इसका उल्टा भी हो सकता है...।[6]

"हिचकिचाना अपराध है"...अक्टूबर की शुरुआत में...(लेनिन ने)...लिखा,

---

1., 2., 3., 4. और 5. त्रात्स्की की किताब *लेसंस ऑफ़ अक्टूबर 1917* से

6. आख़िरी शब्द मूल में अस्पष्ट; *लेसंस ऑफ़ अक्टूबर 1917* से

"सोवियतों की कांग्रेस का इन्तज़ार करना औपचारिकताओं का एक बचकाना खेल खेलना है, औपचारिकताओं के साथ एक अपमानजनक खेल खेलना है, यह क्रान्ति के साथ विश्वासघात करना है।"

उपयुक्त क्षण :

राजनीति में समय एक महत्त्वपूर्ण कारक है, और युद्ध एवं क्रान्ति में तो यह हज़ारों गुना अधिक महत्त्वपूर्ण है। चीज़ें जो आज की जा सकती हैं, कल नहीं की जा सकतीं। हथियार लेकर उठ खड़े होना, दुश्मन को पराजित करना, सत्ता पर क़ब्ज़ा करना, आज सम्भव हो सकता है, और कल असम्भव हो सकता है। लेकिन आप कह सकते हैं कि सत्ता पर क़ब्ज़ा करने का मतलब तो इतिहास की धारा को बदल डालना होता है, और क्या यह सम्भव है कि एक ऐसी चीज़ महज 24 घण्टे की देरी पर निर्भर हो? हाँ, जब सशस्त्र जन-विद्रोह की घड़ी आ जाती है, तब घटनाएँ राजनीति के लम्बे पैमानों से नहीं, बल्कि युद्ध के छोटे पैमानों से नापी जाती हैं। इसमें कुछेक हफ़्ते, कुछेक दिन, या यहाँ तक कि कभी-कभी एक दिन की देरी का मतलब क्रान्ति का परित्याग हो सकती है, घुटने टेक देना हो सकता है।

राजनीतिक चालबाज़ी, ख़ासतौर से क्रान्ति में, हमेशा ख़तरनाक होती है। आप दुश्मन को धोखा दे सकते हैं, लेकिन इससे आपके पीछे चलने वाले जनसमुदाय दिग्भ्रमित हो सकते हैं।

पृष्ठ 74 (71)

हिचकिचाहट :

नेताओं की ओर से दिखायी जाने वाली, और उनके अनुयायियों द्वारा महसूस की जाने वाली हिचकिचाहट राजनीति में आमतौर पर नुक़सानदेह साबित होती है, और सशस्त्र जन-विद्रोह की स्थिति में तो यह एक घातक ख़तरा है।

युद्ध

..."युद्ध युद्ध है", चाहे जो भी हो, इसमें कोई हिचकिचाहट या वक़्त की बरबादी नहीं होनी चाहिए।[1]

1. उपरोक्त सभी उद्धरण सम्भवत: त्रात्स्की की किताब *लेसंस ऑफ़ अक्टूबर 1917* से हैं।

अक्षम नेता :

...ऐसे नेताओं की दो क़िस्में हैं जो पार्टी को ऐसे वक़्त पीछे खींचने की रुझान रखते हैं, जब उसे सबसे तेज़ गति से आगे बढ़ने की ज़रूरत होती है। एक क़िस्म ऐसे नेताओं की है जिनकी प्रवृत्ति क्रान्ति के रास्ते में हमेशा ही बेपनाह कठिनाइयाँ और बाधाएँ देखने की होती है, और जो उन्हें देखकर – सचेत या अचेतन तौर पर – उनसे बचने की इच्छा रखते हैं। ये मार्क्सवाद को तोड़-मरोड़कर इस रूप में व्याख्यायित करने लगते हैं कि क्रान्तिकारी कार्रवाई क्यों असम्भव है।

दूसरे क़िस्म के नेता महज सतही आन्दोलनकर्ताभर होते हैं। वे जब तक बाधाओं से टकराकर अपना सिर नहीं फोड़ लेते, तब तक उन्हें कभी बाधाएँ नज़र ही नहीं आतीं। वे समझते हैं कि बस भाषण झाड़ कर ही वास्तविक कठिनाइयों से निजात पा लेंगे। वे प्रत्येक चीज़ को अति आशावाद के साथ देखते हैं, और जब सचमुच कुछ करने को होता है, तब ठीक उसी वक़्त पाला बदल लेते हैं।

पृष्ठ 80[1]

पृष्ठ सं. 75 से 100 नोटबुक की हमें उपलब्ध हुई प्रति में नहीं थे। अगली पृष्ठ सं. 101 (74) है। - सम्पादक

पृष्ठ 101 (74)

समाजशास्त्र[2]

मूल्य :

"1 पाव मक्का = क/ लोहे की क़ीमत। यह समीकरण हमें क्या बताता है? यह हमें बताता है कि दो भिन्न-भिन्न चीज़ों में – मक्का पावभर में और लोहे की क क़ीमत में – समान गुणों वाली कोई चीज़ दोनों में उभयनिष्ठ रूप से मौजूद है। अत: इन दो चीज़ों को अवश्य ही किसी ऐसी तीसरी चीज़ के बराबर होना चाहिए, जो स्वयं न तो पहली चीज़ हो, और न ही दूसरी चीज़...। अब आइये हम इन दोनों उत्पादों में से प्रत्येक के भीतर निहित इस तीसरी अवशिष्ट चीज़ पर विचार करें, यह प्रत्येक उत्पाद में, एक ही अभौतिक यथार्थ के रूप में, एकसार मानवीय श्रम, यानी उस श्रम शक्ति के महज एक जमाव के रूप में निहित है, जिसमें इससे

---

1. सम्भवत: *लेसंस ऑफ़ अक्टूबर 1917* से ही
2. हाशिये पर नोट किया हुआ

कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उस श्रमशक्ति के ख़र्च किये जाने की विधा क्या रही है। अब ये सारी चीज़ें हमें बताती हैं कि उपर्युक्त उत्पादों के उत्पादन में मानव-श्रम ख़र्च किया गया है, यानी कि उनमें श्रम ही मूर्तमान हुआ है। जब हम इस सामाजिक पदार्थ यानी श्रम को उसके अलग-अलग स्पष्ट मूर्तमान रूपों में देखते हैं, तो सर्वसाधारण के लिए, वे ही **'मूल्य'** कहलाते हैं।

मार्क्स - *"पूँजी"*, अंग्रेज़ी अनुवाद *(पृष्ठ 3,4,5)*

✓ क़ानून[1] :

"बहरहाल, समाज क़ानून पर नहीं आधारित होता है। यह तो एक क़ानूनी गल्प है। इसके विपरीत, क़ानून को अवश्य ही समाज पर आधारित होना चाहिए। इसे निश्चय ही समाज के हित और आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति होना चाहिए, और इसे औद्योगिक उत्पादन की स्वेच्छाचारिता के बजाय, उत्पादन की सामाजिक और निरपवाद रूप से भौतिक उत्पादन-प्रणाली से नि:सृत होना चाहिए। इस समय मेरे हाथ में नेपोलियन संहिता है, लेकिन इसने आधुनिक नागरिक समाज को नहीं पैदा किया है। 18वीं सदी में जन्मा और 19वीं सदी में विकसित हुआ समाज इस संहिता में सिर्फ़ एक क़ानूनी अभिव्यक्ति के रूप में निहित है। जब यह सामाजिक दशाओं के अनुरूप नहीं रह जायेगा, तब यह महज रद्दी काग़ज़ का पुलिन्दा ही सिद्ध होगा...। जीवन की बदलती दशाओं के साथ-साथ क़ानून भी निश्चित तौर पर बदलते रहे हैं। परन्तु सामाजिक विकास की नयी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को दरकिनार कर (युग की पुकार के लिहाज़ से) पुराने क़ानून को बनाये रखना, दरअसल, सर्वसाधारण के हित के विपरीत किन्हीं ख़ास हितों की पाखण्डपूर्ण हिमायत के अलावा और कुछ नहीं है।"

मार्क्स (कोलोन की जूरी अदालत में)[2]

---

1. मूल में शीर्षक की बायीं तरफ़ 'सही'(✓) का निशान

2. 1848 में, मार्क्स के ऊपर उनके अख़बार को लेकर कोलोन (जर्मनी) में एक प्रसिद्ध मुक़दमा चला। मई 1848 में कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स ने कुछ साथियों की मदद से *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* (Neue Rheinische Zeitung) नामक एक राजनीतिक दैनिक अख़बार की स्थापना की। मार्क्स इसके सम्पादक थे। यह यूरोप में क्रान्तिकारी उथल-पुथल का दौर था। नवम्बर 1848 में जब प्रशा के राजा ने नेशनल असेम्बली को भंग कर दिया तो मार्क्स और उनके साथियों ने जनता से कर न चुकाने का आह्वान किया और हथियारबन्द विरोध की वकालत की। कोलोन की घेरेबन्दी कर ली गयी और उनका अख़बार बन्द कर दिया गया। मुक़दमे के दौरान मार्क्स ने अपने तर्कों से जूरी को ही दोषी क़रार दिया। उन्हें बरी कर दिया गया लेकिन प्रशा से निर्वासित कर दिया गया।

✓ जनसमुदाय :

"जनता एक ऐसे भारी-भरकम और पंचमेल जानवर की भाँति होती है, जो अपनी ही ताक़त से अनभिज्ञ रहता है और इसीलिए बोझ ढोते हुए कोड़े-डण्डे खाता रहता है। यह उस फितने बच्चे द्वारा भी हाँक लिया जाता है, जिसे वह जब चाहे धक्के मारकर फेंक सकता है। लेकिन यह उस बच्चे से डरता है और इसीलिए यह उसकी सारी सनकों और मनबहकियों को झेलता रहता है, और कभी महसूस नहीं करता कि वह बच्चा ख़ुद उससे कितना डरता है...। अद्‌भुत है! लोग ख़ुद अपने ही हाथों से अपनेआप को फाँसी दे देते हैं और ख़ुद ही जेल चले जाते हैं तथा ख़ुद ही अपने ऊपर युद्ध और मौत का कहर बरपा कर लेते हैं। किसलिए? बस एक दमड़ी के लिए, जो उन्हीं तमाम दमड़ियों में से एक होती है जिन्हें वे ख़ुद ही राजा को दे चुके होते हैं। जबकि धरती और आकाश के बीच जो कुछ है सब तो उनका ही है, लेकिन वे इसे नहीं जानते और अगर उन्हें कोई यह बता दे तो वे उस आदमी को गिराकर मार डालेंगे।

तोमास्सो कैम्पानेला[1]

पृष्ठ 102 (15)

"मार्क्सवाद बनाम समाजवाद"

(1908-12) *लेखक व्लादिमीर जी. सिखोविच*

पीएच.डी., कोलम्बिया विश्वविद्यालय

वह एक-एक करके मार्क्स के सारे सिद्धान्तों की आलोचना करते हैं और इन सभी को ख़ारिज करते हैं :

1. मूल्य का सिद्धान्त
2. इतिहास की आर्थिक व्याख्या
3. सम्पदा का थोड़े से हाथों, अर्थात पूँजीपतियों के हाथों में संकेन्द्रण, मध्यम वर्ग का पूरी तरह ख़ात्मा और सर्वहारा वर्ग की बाढ़
4. बढ़ती ग़रीबी का सिद्धान्त, जिसकी परिणति के तौर पर
5. आधुनिक राज्य और सामाजिक व्यवस्था का अपरिहार्य संकट।

वह निष्कर्ष निकालते हैं कि मार्क्सवाद सिर्फ़ इन्हीं मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है, और उन्हें एक-एक करके ख़ारिज करते हुए, निष्कर्ष के तौर पर कहते हैं कि क्रान्ति के जल्दी फूट पड़ने की सारी धुँधली आशंकाएँ अभी तक निर्मूल ही साबित हुई हैं। मध्यम वर्ग घट नहीं, बल्कि बढ़ रहा है। धनी वर्ग संख्या में बढ़

1. तोमास्सो कैम्पानेला (1568-1639) : इतालवी कवि और दार्शनिक

रहा है, तथा उत्पादन और उपभोग की प्रणाली भी परिस्थितियों के अनुसार बदल रही है, अत: मज़दूरों की दशा में सुधार करके किसी भी प्रकार के संघर्ष को टाला जा सकता है। सामाजिक अशान्ति का कारण बढ़ती ग़रीबी नहीं, बल्कि औद्योगिक केन्द्रों पर ग़रीब वर्गों का संकेन्द्रण है, जिसके नाते वर्ग-चेतना पैदा हो रही है। इसीलिए यह सब चिल्ल-पों है।[1]

पृष्ठ 103 (76)

लेस मिज़रेबल्स की भूमिका

जब तक क़ानून और परम्परा की बदौलत एक ऐसी सामाजिक अधोगति मौजूद रहेगी जिसमें सभ्यता के भीतर नर्क निर्मित होते रहेंगे और दैवीय नियति के साथ मानवीय नियति का उलझाव होता रहेगा, जब तक इस युग की तीन समस्याएँ ग़रीबी के कारण मनुष्य की दुर्गति, भूख के कारण नारी की अधोगति, और अज्ञानता के कारण बच्चों की अशक्तता – हल नहीं होतीं, जब तक कुछ क्षेत्रों में सामाजिक घुटन मौजूद रहेगी – दूसरे शब्दों में, तथा एक और भी व्यापक दृष्टिकोण से – जब तक इस धरती पर अज्ञानता और बदहाली बरक़रार रहेगी, तब तक ऐसी किताबें व्यर्थ नहीं सिद्ध होंगी।

"विक्टर ह्यूगो"[2]

न्यायाधीश की परिभाषा : "न्यायाधीश (अपने फ़ैसले से) जो कष्ट पहुँचाता है, यदि वह स्वयं उसके प्रति निष्ठुर हो, तो वह न्याय करने का अधिकार खो बैठता है।"

"रवीन्द्रनाथ ठाकुर"[3]

"लेकिन अप्रतिरोधी शहादत जो कर पाने में असफल रह जाती है, उसे न्यायप्रिय और प्रतिरोधी शक्ति कर डालती है, तथा अत्याचारी को और अधिक हानि पहुँचाने में नाकाम कर देती है।"[4]

1. भगतसिंह द्वारा पुस्तक पर दर्ज टिप्पणी
2. विक्टर ह्यूगो (1802–1885) : फ़्रांसीसी कवि, नाटककार, उपन्यासकार और रोमांसवाद के एक प्रवर्तक; *लेस मिजरेबल्स* उनका 1862 में लिखा एक क्लासिकीय उपन्यास है।
3. *माँ की प्रार्थना* नामक कविता की पंक्तियाँ
4. अज्ञात

"धर्मान्तरित होने के बजाय मार डाले जाओ" उस समय हिन्दुओं के बीच यही पुकार प्रचलित थी। लेकिन रामदास[1] उठ खड़े हुए और कहा, "नहीं! ऐसे नहीं! धर्मान्तरित होने से बेहतर है मार डाले जाना – यह कहना काफ़ी अच्छा है, लेकिन इससे भी बेहतर है यह कोशिश करना कि न तो मारे जाओ और न ही धर्मान्तरित होओ, बल्कि ख़ुद हिंसा की शक्तियों को मार डालो। इसमें अगर मरना ही हो तो मार दिये जाओ, लेकिन विजय की ख़ातिर मारते हुए मरो – न्याय की जीत के लिए मरो।"

हिन्दू पद पादशाही पृष्ठ 181–82

पृष्ठ 104 (77)

सभी विधि-निर्माता अपराधियों के रूप में परिभाषित :

आदिकाल से लेकर लाइकरगस[2], सोलोन[3], मोहम्मद[4], नेपोलियन[5], आदि तक मनुष्यों के लिए जितने भी विधि-निर्माता और शासक हुए हैं वे सब के सब अपराधी रहे हैं, क्योंकि नये क़ानूनों का विधान करके, स्वाभाविक तौर पर, उन्होंने उन पुराने क़ानूनों को भंग किया, जिन्हें समाज श्रद्धापूर्वक मानता आ रहा था और जो पूर्वजों से विरासत में मिले हुए थे।

(पृष्ठ 205) अपराध और दण्ड – दोस्तोयेव्स्की[6]

———○———

बर्क[7] का कहना है, "एक सच्चा राजनीतिज्ञ, हमेशा इस बात पर सोचता रहता है कि कैसे वह अपने देश में मौजूद संसाधनों से ज़्यादा से ज़्यादा अर्जित करे।"

---

1. प्रसिद्ध मराठा सन्त और शिवाजी के प्रेरणा-गुरु
2. लाइकरगस : प्राचीन स्पार्टा (यूनान) का संविधान निर्माता। उसके जीवनीकार प्लुटार्क के अनुसार वह "विधि निर्माता" था, और हेरोदोतस के अनुसार, उसने "सारी परम्पराएँ" बदल डालीं।
3. सोलोन (639 ई.पू.–559 ई.पू.): प्राचीन एथेंस (यूनान) का राजनयिक, जिसने सीमित जनतन्त्र देने के लिए एथेंस के संविधान का संशोधन किया, और भूमि-सुधार लागू किया।
4. हज़रत मोहम्मद (570–632 ई.) का उल्लेख अरब देशों में प्रचलित पुराने क़ानूनों और प्रथाओं के स्थान पर इस्लामी क़ानूनों के संस्थापक के रूप में किया गया है।
5. नेपोलियन बोनापार्ट (1769–1821) ने *नेपोलियन संहिता* तैयार की जिसे यूरोप में लागू किया गया।
6. प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार फ्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की (1821–1881) का प्रसिद्धतम उपन्यास *अपराध और दण्ड* जो 1866 में प्रकाशित हुआ।
7. एडमण्ड बर्क (1729–1797) : ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और लेखक

पृष्ठ 105 (78)

विधिशास्त्र[1] :

क़ानून :

1. क़ानून का प्राविधान — जिस रूप में वह मौजूद है।
2. क़ानून का इतिहास — जिस रूप में उसका विकास हुआ।
3. क़ानून-विधान का विज्ञान — जैसा उसे होना चाहिए।

1. सैद्धान्तिक — (i) दर्शन — विधि के विज्ञान के लिए आधार प्रदान करना।
2. सामान्य — विधिशास्त्र

1. विश्लेषणात्मक
2. ऐतिहासिक
3. नीतिशास्त्रीय

} विधिशास्त्र

1. **विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र** क़ानून के प्रथम सिद्धान्त की व्याख्या करता है। इसकी विषय-वस्तु है :

(अ) नागरिक क़ानून की अवधारणा
(ब) नागरिक और अन्य क़ानूनों के बीच सम्बन्ध
(स) विविध संघटक विचार जो क़ानून की धारणा, जैसे राज्य, सम्प्रभुता और न्याय-प्रशासन का संघटन करते हैं।
(द) क़ानून के क़ानूनी स्रोत और विधि निर्माण का सिद्धान्त आदि।
(य) क़ानून के वैज्ञानिक वर्गीकरण।
(र) क़ानूनी अधिकार
(ल) क़ानूनी (नागरिक और फ़ौजदारी) दायित्व का सिद्धान्त
(व) अन्य क़ानूनी अवधारणाएँ।

पृष्ठ 106 (79)

2. **ऐतिहासिक विधिशास्त्र** क़ानून, क़ानूनी अवधारणाओं की उत्पत्ति और विकास को निर्धारित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों का अध्ययन करता है। यह इतिहास है।

1. ऐसा प्रतीत होता है कि भगतसिंह ने विधिशास्त्र सम्बन्धी व्यापक अध्ययन की रूपरेखा बनायी थी, जो नोटबुक के अगले कई पृष्ठों तक जारी है।

3. **नीतिशास्त्रीय विधिशास्त्र :** यह क़ानून के सम्बन्ध में न्याय के सिद्धान्त से सम्बन्धित है।

क़ानून और न्याय :

क़ानून के नीतिशास्त्रीय निहितार्थों की पूर्ण अवहेलना विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र को एक बेजान प्रणाली में तब्दील कर सकती है।

इंग्लैण्ड में :

दो भिन्न-भिन्न शब्द "क़ानून" और "न्याय" लगातार इस बात को याद दिलाते रहते हैं कि ये दोनों एक ही चीज़ नहीं बल्कि दो भिन्न चीज़ें हैं। लेकिन इनके इस्तेमाल में इन दोनों के बीच मौजूद वास्तविक और घनिष्ठ सम्बन्ध अक्सर आँख-ओझल हो जाया करता है।

और महाद्वीप में :

[रेचेट : राइट (अधिकार) = ड्रॉइट : लॉ (क़ानून)]

महाद्वीपीय भाषा-शैली "क़ानून" और "अधिकार" के बीच के फ़र्क़ को छिपाती है, जबकि अंग्रेज़ी भाषा-शैली उनके बीच के सम्बन्ध को छिपाती है।

पृष्ठ 107 (80)

क़ानून :

"हम उस किसी भी क़िस्म के नियम या सिद्धान्त को क़ानून नाम दे देते हैं, जिसके द्वारा कार्रवाइयाँ निर्धारित की जाती हैं।"

(हूकर)[1]

"क़ानून अपने सर्वाधिक सामान्य अर्थ में कार्रवाई सम्बन्धी नियम को विशिष्टीकृत करता है, और यह सभी प्रकार की कार्रवाई पर बिना भेदभाव के, लागू होता है, चाहे वे तर्कपरक हों या तर्कहीन, जीवधारी से सम्बन्धित हों, या निर्जीव से। इसीलिए हम गति के, गुरुत्वाकर्षण के, प्रकाश के, भौतिकी के, प्रकृति के और राष्ट्रों के नियमों की बात करते हैं"।

(ब्लैकस्टोन)[2]

---

1. सम्भवत: अंग्रेज़ धर्मशास्त्रीय रिचर्ड हूकर (1554-1600) जिसने द *लॉ ऑफ़ एक्लेसिएस्टिकल पॉलिसी* में एंग्लीकनिज़्म के सिद्धान्तों को संहिताबद्ध किया।
2. सम्भवत: सर विलियम ब्लैकस्टोन (1723-1780): अंग्रेज़ विधिवेत्ता, जिसने *कमेण्ट्रीज़ ऑन द लॉज़ ऑफ़ इंग्लैण्ड* (1765-1769) लिखी, जो अंग्रेज़ी क़ानून के सिद्धान्त पर एक आधिकारिक पुस्तक मानी जाती है।

क़ानूनों के प्रकार

1. अनिवार्य क़ानून
2. भौतिक नियम या वैज्ञानिक क़ानून
3. प्राकृतिक या नैतिक क़ानून
4. प्रचलित क़ानून
5. परम्परागत क़ानून
6. व्यावहारिक या तकनीकी क़ानून
7. अन्तरराष्ट्रीय क़ानून
8. नागरिक क़ानून या राज्य का क़ानून

पृष्ठ 108 (81)

अनिवार्य क़ानून की अनुज्ञप्ति - 1. सजा, युद्ध आदि

1. **अनिवार्य क़ानून** का अर्थ है कार्रवाई का नियम, जो किसी ऐसी सत्ता द्वारा लोगों पर लागू किया जाता है जो इसका अनुपालन बलपूर्वक करवा लेती है।

'क़ानून एक आदेश है जो व्यक्ति या व्यक्तियों को एक निश्चित आचरण करने के लिए विवश करता है'

(ऑस्टिन)[1]

समाज की प्रत्यक्ष नैतिकता भी अनिवार्य क़ानूनों के दायरे में आती है।

हॉब्स का दृष्टिकोण :

मनुष्य और हथियार ही क़ानूनों की शक्ति और सम्बल है।

(हॉब्स)[2]

2. **भौतिक क़ानून** चल रही कार्रवाइयों की अभिव्यक्ति है। (नैतिक क़ानून या विवेक का क़ानून कार्रवाइयों की इस रूप में अभिव्यक्ति है, जैसी वे होनीं चाहिए)।

3. **प्राकृतिक या नैतिक क़ानून** का अर्थ है प्राकृतिक रूप से सही या ग़लत के सिद्धान्त - यानी सभी सही कार्रवाइयों समेत प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त।

न्याय के दो प्रकार हैं - प्रत्यक्ष और प्राकृतिक।

प्राकृतिक न्याय वह न्याय है जो वास्तव में और सचमुच हो।

---

1. जॉन ऑस्टिन (1811-1680) : ब्रिटिश दार्शनिक राजनीतिक चिन्तक
2. टॉमस हॉब्स (1588-1689) : अंग्रेज़ दार्शनिक-राजनीतिक चिन्तक। राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का जनक। राजतन्त्रात्मक निरंकुशतावाद का समर्थक था।

प्रत्यक्ष न्याय न्याय का वह रूप है जिस रूप में उसे समझा जाता है, स्वीकार किया जाता है, और अभिव्यक्त किया जाता है।

पृष्ठ 109 (82)

4. **प्रचलित क़ानून :** ऐसा कोई भी नियम या नियमों की प्रणाली है जिस पर लोग अपने आचरण के नियमन के लिए सहमत होते हैं। सहमत होने वाले पक्षों की सहमति ही क़ानून है।

5. **परम्परागत क़ानून :** मनुष्यों द्वारा वास्तव में की जाने वाली कार्रवाई का कोई भी नियम – जो स्वैच्छिक कार्रवाई की किसी वास्तविक समरूपता की अभिव्यक्ति है। परम्परा उन लोगों का क़ानून है जो इसे मानते हैं।

6. **व्यावहारिक या तकनीकी क़ानून :** इसमें ऐसे नियम आते हैं जो व्यावहारिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए होते हैं। खेलों में, 'प्रचलित क़ानून' और 'व्यावहारिक क़ानून' दोनों ही आते हैं, जिनमें पहले प्रकार के क़ानूनों के अन्तर्गत वे नियम आते हैं जिन पर खिलाड़ियों की सहमति होती है, और दूसरे प्रकार के क़ानूनों के अन्तर्गत वे नियम आते हैं, जो खेल को सफल बनाते हैं, या खेल को सफलतापूर्वक चलाने के लिए होते हैं।

7. **अन्तरराष्ट्रीय क़ानून :** इसमें वे नियम आते हैं जो सम्प्रभुतासम्पन्न राज्यों के आपसी सम्बन्धों एवं एक-दूसरे के प्रति आचरण का नियमन करते हैं।

(i) एक्सप्रेस क़ानून (सन्धियाँ आदि)

(ii) अन्तर्निहित क़ानून (परम्परागत)

पुनः दो प्रकारों में विभाजित :

(i) सामान्य क़ानून (सभी राष्ट्रों के बीच)

(ii) विशिष्ट क़ानून (दो या अधिक राष्ट्र विशेष के बीच)

8. **नागरिक क़ानून :** राज्य या देश का क़ानून, जो न्यायिक अदालत में प्रयुक्त होता है।

पृष्ठ 110 (83)

सज़ा :

राजनीतिक जुर्म : हम विधि-निर्माताओं के भारी समुदाय की इस सोच से सहमत हैं कि, भले ही, आमतौर पर उस व्यक्ति पर कड़ी कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए, जो ऐसी मुजरिमाना साज़िश में शामिल रहा हो, जिस साज़िश को अंजाम नहीं दिया गया हो, फिर भी राज्य के ख़िलाफ़ किये गये बड़े जुर्मों के सिलसिले में इस नियम का एक अपवाद ज़रूर रखा जाना चाहिए, कारण कि राज्य के

ख़िलाफ़ किये जाने वाले जुर्मों की ख़ासियत यह होती है कि यदि उनमें मुजरिम क़ामयाब हो जाता है, तो वह सज़ा से तक़रीबन साफ़ बच जाता है। क़ातिल क़त्ल करने के बाद, क़त्ल करने की अपेक्षा कहीं अधिक ख़तरे में होता है, लेकिन राजद्रोही जब सरकार का तख़्ता पलट देता है, तो वह ख़तरे से बाहर हो जाता है। चूँकि दण्डात्मक क़ानून एक क़ामयाब विद्रोही के विरुद्ध नपुंसक ही सिद्ध होता है, इसलिए ज़रूरी है कि इसे विद्रोह की पहली शुरुआत के ख़िलाफ़ ही सशक्त और कड़ा बनाया जाये...।"

(II एल.सी.सी. जजमेण्ट 1906, पृष्ठ 120)[1]

पृष्ठ 111 (84)

सज़ा :

स्वप्न जो प्राणदण्ड का कारण बना : जब **मार्सेज** ने सपना देखा कि उसने **डायोनीसियस**[2] का गला काट दिया है, तब निरंकुश शासक ने उसे प्राणदण्ड दे दिया, जिसके पीछे उसकी दलील यह थी कि यदि उसने दिन में ऐसा सोचा न होता तो रात में यह सपना कदापि नहीं देखता।

प्राणदण्ड और ड्रैको का क़ानून : ड्रैको[3] के क़ानून में लगभग सभी प्रकार के जुर्मों, जैसे मामूली चोरी से लेकर धर्म-द्रोह और हत्या तक के लिए एक समान मौत की सज़ा का विधान था, और कहा जाता है कि इसका एकमात्र स्पष्टीकरण जो ड्रैको ने दिया था, वह यह कि छोटे-मोटे जुर्मों की तो यही सज़ा होनी चाहिए और बड़े जुर्मों के लिए इसे बड़ी सज़ा वह सोच नहीं सका।

———o———

सज़ा को बहुतेरे दार्शनिकों ने एक **आवश्यक बुराई** माना है।

———o———

राज्य और मनुष्य : राज्य अपनेआप में कोई लक्ष्य नहीं है, और मनुष्य क़ानून या राज्य के लिए नहीं, बल्कि ये ही मनुष्य के लिए होते हैं।

———o———

1. स्रोत और विवरण अनुपलब्ध
2. डायोनीसियस द एल्डर (430-367 ई. पू.) : सिसली का यूनानी राजनेता, जो 400 ई.पू. में साइरेक्यूस का निरंकुश शासक बना।
3. ड्रैको (ई.पू. सातवीं सदी) : एथेंस (यूनान) का राजनीतिज्ञ जिसने परम्परागत अल्लिखित संविधान को संहिताबद्ध किया, छोटे से लेकर, बड़े तक सभी प्रकार के जुर्मों के लिए प्राणदण्ड देने के लिए कुख्यात उसका क़ानून (ड्रैकनियन लॉ) आज भी ऐसे काले क़ानूनों के लिए मुहावरे के तौर पर इस्तेमाल होता है।

न्याय : राज्य की भौतिक ताक़त के जरिये एक राजनीतिक समुदाय के भीतर अधिकार बनाये रखना।

इसने उस व्यक्तिगत प्रतिशोध का स्थान ले लिया है, जब लोग ग़लतियों का प्रतिशोध स्वयं या अपने बन्धु-बान्धवों के सहयोग से ले लिया करते थे। उन दिनों, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त काम करता था।

दीवानी और फ़ौजदारी न्याय :

नागरिक न्याय अधिकार लागू करता है। फ़ौजदारी न्याय ग़लतियों के लिए सज़ा देता है।

एक आदमी अपने बकाये का, या उससे ग़लत ढंग से दबा ली गयी सम्पत्ति को फिर से वापस पाने का दावा करता है। यह दीवानी (न्याय का मामला) है।

फ़ौजदारी के मामले में, प्रतिवादी पर ग़लत करने का आरोप लगा होता है। अदालत इस मुल्जिम को कर्त्तव्य की अवहेलना के जुर्म में तथा अधिकार के उल्लंघन के जुर्म में, सज़ा देती है, जिसमें यदि हत्या का जुर्म है तो फाँसी और यदि चोरी का जुर्म है तो जेल की सज़ा देती है। [पृष्ठ 113 (86) पर जारी]

दीवानी और फ़ौजदारी, दोनों ही प्रकार की कार्रवाई में, **ग़लती** की शिकायत दर्ज की जाती है।

दीवानी (कार्रवाई) में अधिकार का दावा किया जाता है,

फ़ौजदारी (कार्रवाई) में ग़लती का आरोप लगाया जाता है।

दीवानी न्याय का सरोकार, प्राथमिक तौर पर, वादी और उसके अधिकारों से होता है,

फ़ौजदारी (न्याय) का प्रतिवादी और उस पर लगे आरोप से।

फ़ौजदारी न्याय के उद्देश्य

सज़ा :

यह तटस्थ 'अपराधकर्ताओं' जैसे राजनीतिक व्यक्तियों के मामलों में उपयोगी नहीं हो सकती। यह उनके लिए एक बुरा सौदा सिद्ध हो सकती है।

1. **निवारक :** क़ानून का प्रमुख उद्देश्य दोषी व्यक्ति को एक नज़ीर बनाना और उस जैसे बाक़ी सभी व्यक्तियों को एक चेतावनी देना है। यह प्रत्येक अपराध को "अपराधकर्ता की एक दुर्भावना" सिद्ध करता है। (इरादे का बदलाव)

2. **निरोधक :** दूसरे मामले में, यह निरोधक या अयोग्य सिद्ध करने वाला है। इसका विशेष उद्देश्य अपराधकर्ता को नाकाम कर उसे पुन: ग़लत काम करने से रोकना है।

प्राणदण्ड का औचित्य :

हम हत्यारों को फाँसी महज इसीलिए नहीं देते कि यह दूसरों को (हत्या करने से) विरत करती है, बल्कि उसी कारण से, जिस कारण से हम, उदाहरण के लिए, साँप को मार डालते हैं, क्योंकि हमारे लिए यही बेहतर है कि वे इस दुनिया में रहने के बजाय इससे बाहर हो जायें।

3. **सुधारात्मक :** अपराध चरित्र के ऊपर इरादों के प्रभाव से किये जाते हैं, और वे या तो इरादों के बदलाव से या चरित्र के बदलाव से रोके जा सकते हैं।

निवारक सज़ा पहले मामले में दी जाती है, (कुछ शब्द अस्पष्ट – स.) जबकि सुधारात्मक (सज़ा) दूसरे मामले में दी जाती है।

पृष्ठ 114 (81)

"सुधारात्मक सिद्धान्त" के पैरोकार सज़ा के सिर्फ़ उन्हीं रूपों की हिमायत करते हैं, जो अपराधी की शिक्षा और उसे अनुशासित करने के लिए उपयोगी होते हैं, और बाक़ी उन सभी (सज़ाओं) को अमान्य ठहराते हैं जो लाभकारी तौर पर सिर्फ़ निवारक या अयोग्यकारी (होती हैं)। उनकी दृष्टि में मृत्यु कोई उपयुक्त सज़ा नहीं हैं, **'हमें अपने अपराधियों का इलाज करना चाहिए, उनकी हत्या नहीं।'** पिटाई और अन्य शारीरिक सज़ाएँ बर्बरता की निशानी कहकर निन्दित की जाती हैं। वे ऐसी सज़ाओं को सज़ा भोगने वाले और सज़ा देने वाले दोनों को ही नीचे गिराने वाली और क्रूर मानते हैं।

कड़ी सज़ा का नतीजा। अपराधियों का ख़तरनाक और दुस्साहसिक वर्ग पैदा हो जाता है।

राज्य की बलप्रयोग की कार्रवाई जितनी सक्षम होती है, वह सभी सामान्य मनुष्यों को ख़तरनाक रास्तों (पर जाने) से रोकने में उतनी ही सफल होती है, लेकिन क़ानून तोड़ने वालों में अध:पतन का अनुपात भी उतना ही अधिक होता है।

4. प्रतिकारात्मक सज़ा :

सर्वाधिक भयावह सिद्धान्त! ऐसी सोच रखने वाले लोग वास्तव में प्राचीन और सभ्यतापूर्व कालों की बर्बर मन:स्थितियों के हिमायती होते हैं।[1]

यह प्रतिशोध या बदले की उस नैसर्गिक प्रवृत्ति को तुष्ट करती है, जो सिर्फ़

1. हाशिये पर लिखा हुआ

ग़लती का शिकार हुए व्यक्ति में ही नहीं मौजूद रहती, बल्कि व्यापक पैमाने पर समाज में उसके प्रति हमदर्दी के रूप में भी मौजूद रहती है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, यह सही और उचित है कि बुराई का बदला बुराई से लिया जाये। आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत प्राकृतिक न्याय का एक सीधा और अपनेआप में पूर्ण नियम माना जाता है। **सज़ा ख़ुद में एक मक़सद बन जाती है।**

पृष्ठ 115 (88)

सज़ा एक बुराई :

सज़ा अपनेआप में ही एक बुराई है, और इसे सिर्फ़ एक महत्तर उद्देश्य की प्राप्ति के साधन के तौर पर ही उचित ठहराया जा सकता है।

लेकिन प्रतिकारात्मक सिद्धान्त के समर्थक इस ढंग से दलील देते हैं : "दोष धन सज़ा बराबर निर्दोषता।"

"उसने न्याय के क़ानून का जिस ग़लती द्वारा उल्लंघन किया है, उससे उसके ऊपर एक ऋण आयद हो गया है। अत: न्याय का तक़ाज़ा है कि वह ऋण चुका दिया जाये...सज़ा का पहला उद्देश्य भंग किये गये क़ानून को तुष्ट करना है।"

———○———

Peine forte et dure : यातना देकर मौत...जिसका फ़ैसला निम्नलिखित रूप में दिया गया :

"कि तुम्हें फिर उसी जेल में वापस ले जाया जाये जहाँ से तुम आये थे, यानी कि उसी लम्बी कालकोठरी में, जिसके भीतर कोई रोशनी न जा सके, फिर तुम्हें वहाँ नंगी फ़र्श पर पीठ के बल लिटाया जाये, सिर्फ़ तुम्हारी कमर में एक कपड़ा लिपटा रहे, जबकि शेष सभी भाग नंगा रहे, कि तुम्हारे शरीर पर लोहे का एक इतना भारी बोझ रखा जाये जितना कि तुम बरदाश्त कर सको, और फिर उससे भी अधिक भारी, कि तुम्हें पहले दिन खाने के लिए मोटी से मोटी रोटियों के सिवाय, और कोई चीज़ न दी जाये, दूसरे दिन जेल के फाटक के सबसे नज़दीक के गड्ढे में जमा पानी के तीन घूँट दिये जायें, तीसरे दिन फिर पहले जैसा ही खाना दिया जाये, और ऐसी रोटियाँ और ऐसा पानी एक-एक दिन के अन्तर पर तब तक दिया जाये, जब तक कि तुम मर न जाओ।"[1]

यह सज़ा स्त्री-पुरुष दोनों को समान रूप से उन सभी प्रकार के जुर्मों के लिए दी गयी जो ग़ैर-मामूली नहीं थे।[2]

1. उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैण्ड में एक जज द्वारा सुनायी गयी मौत की सज़ा
2. हाशिये पर नोट किया हुआ और रेखांकित

पृष्ठ 116 (84)

विदेशी अधीनता :

विदेशी जुवे की अधीनता राष्ट्रों के पतन के सबसे प्रबल कारणों में से एक है।

– *प्रो.ए.ई.रॉस*[1]

जनतन्त्र का प्रभुत्व और विदेशी राष्ट्र : एक विदेशी जनता के ऊपर एक जनतन्त्र की कार्रवाइयाँ जितनी झपट्टामार और निर्मम होती हैं, उतनी और किसी भी शासन की नहीं होती।

– *लालाजी*[2]

विवाह :

डॉ. टैगोर[3] का मानना है कि आदिम युगों से लेकर आज तक विवाह की प्रणाली सिर्फ़ भारत में ही बल्कि सारी दुनिया में स्त्री और पुरुष के सच्चे मिलन के रास्ते में एक बाधा ही बनी हुई है, जोकि केवल तभी सम्भव है जब समाज इतना सक्षम हो जाये कि वह स्त्री को, घर में रचनात्मक कार्य करने से रोके बग़ैर, उसकी विशिष्ट प्रतिभा को रचनात्मक कार्य में लगाने के लिए एक व्यापक क्षेत्र मुहैया कर सके।

पृष्ठ 117 (90)

नागरिक और मनुष्य :

स्पार्टावासी पेडार्कटीज़ तीन सौ की परिषद में दाख़िले के लिए उपस्थित हुआ, परन्तु उसे वापस कर दिया गया; वह इस ख़ुशी में चला गया कि 300 स्पार्टावासी उससे बेहतर तो थे। मैं समझता हूँ कि इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं कि वह सच्चा था,

वह एक सच्चा नागरिक था।

---

1. अज्ञात
2. लाला लाजपत राय (1865-1928), लाहौर में साइमन कमीशन का विरोध करने पर ब्रिटिश पुलिस ने बर्बर लाठीचार्ज किया, और इसी में लगी सांघातिक चोट के फलस्वरूप बाद में, लाला जी की मृत्यु हो गयी। उनकी मौत और पंजाब के अपमान का बदला लेने के लिए भगतसिंह और उनके क्रान्तिकारी साथियों ने ब्रिटिश पुलिस अफ़सर, साण्डर्स की गोली मार कर हत्या कर दी।
3. रवीन्द्रनाथ ठाकुर

एक स्पार्टावासी माँ के पाँच बेटे सेना में थे। एक दास आया। काँपते हुए उसने समाचार पूछा। "तुम्हारे पाँचों बेटे मार डाले गये।"

"तुच्छ दास, क्या तुमसे मैंने यह पूछा था?"

"हमने विजय हासिल कर ली है"। वह देवताओं को धन्यवाद देने के लिए दौड़ी-दौड़ी मन्दिर चली गयी।

वह एक सच्ची नागरिक थी।

– एमिली, पृष्ठ 8[1]

जीवन और शिक्षा :

लोग सिर्फ़ अपने बच्चे की ज़िन्दगी की सलामती के ही बारे में सोचते रहते हैं, लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है, अगर वह मनुष्य है तो उसे स्वयं भी अपनी ज़िन्दगी की सलामती के बारे में शिक्षित होना ज़रूरी है, ताकि वह भाग्य के थपेड़ों को सह सकें, सम्पदा और ग़रीबी का बहादुरी से मुक़ाबला कर सके, ज़रूरत पड़ने पर आइसलैण्ड की बर्फ़ के बीच या माल्टा की तपती चट्टानों पर निवास कर सकें। बेकार ही तुम मौत के ख़िलाफ़ खैर मनाते हो, उसे मरना तो है ही, और भले ही तुम अपनी सतर्कताओं के चलते उसे न मरने देना चाहो, लेकिन यह मुगालता ही है।

उसे मौत से बचने के बजाय जीने की शिक्षा दो! जीवन साँस लेना नहीं बल्कि कर्म है। अपनी इन्द्रियों का, अपने दिमाग़ का, अपनी क्षमताओं का, और अपने अस्तित्व को चेतन बनाये रखने वाले प्रत्येक भाग का इस्तेमाल करना है। **जीवन का अर्थ उम्र की लम्बाई में कम, जीने के बेहतर ढंग में अधिक है।** एक आदमी सौ वर्ष जीने के बाद क़ब्र में जा सकता है, लेकिन उसका जीना निरर्थक भी हो सकता है। अच्छा होता कि वह जवानी में ही मर गया होता।

– एमिली, पृष्ठ 10

पृष्ठ 118 (91)

सत्य :

सत्य कोई ख़ज़ाना नहीं प्रदान करता, और जनता कोई राजदूत या प्रोफ़ेसर का

---

1. *एमिली* – फ़्रांसीसी दार्शनिक ज्याँ जाक रूसो (1712–1778) का उपन्यास (1762) जिसमें यह सिद्धान्त निरूपित किया गया है कि बच्चे को सभ्यता के बुरे प्रभावों से बचाने के लिए प्राकृतिक वातावरण में विकास का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए।

पद या पेंशन नहीं प्रदान करती।

– रूसो, 122
एस.सी.[1]

जुर्म और मुजरिम :

"...पकी-पकायी धारणाएँ देकर जुर्म को समझा नहीं सकता। लोग जैसा सोचते हैं उससे इसका फ़लसफ़ा कुछ अधिक ही जटिल है। यह तो मानी हुई बात है कि न तो कोई क़ैद, न कोई कालकोठरी और न कोई कड़ी मशक़्क़त की प्रणाली ही किसी मुजरिम को सुधार सकती है। दण्ड-विधान के ये रूप सिर्फ़ उसे दण्डित करते हैं और समाज को यह आश्वासन देते हैं कि वह और जुर्म नहीं करेगा। क़ैद, नियम-विधान और कड़ी से कड़ी मशक़्क़त उस पर कोई असर नहीं डाल पाते, सिवाय इसके कि ऐसे व्यक्तियों में एक भारी नफ़रत, वर्जित काम को और चाव से करने की एक ललक, और एक ख़ौफ़नाक नाफ़रमानी ही विकसित हो जाती है। इसीलिए मेरा पक्के तौर पर मानना है कि यह कालकोठरी वाली परम्परागत प्रणाली दिखावटी और कपटपूर्ण नतीजे ही देती है। यह मुजरिम से उसकी ताक़त निचोड़ लेती है, उसे अशक्त करके और डरा कर उसकी आत्मा को निस्तेज कर डालती है, और इस प्रकार अन्ततः उसे पश्चाताप और सुधार के एक नमूने के तौर पर, एक बेजान यादगार के रूप में ही प्रस्तुत करती है।

द हाउस ऑफ़ डेड पृष्ठ, 17
फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की[2]

पृष्ठ 111 (112)

इच्छा बनाम सन्तुष्टि!

यदि एक चेतन प्राणी की शक्तियाँ उसकी इच्छाओं के बराबर होतीं तो वह पूरी तरह सुखी होता...। लेकिन सिर्फ़ अपनी इच्छाओं को सीमित करना ही काफ़ी नहीं है, क्योंकि यदि वे हमारी शक्तियों से कम हैं, तब तो हमारी क्षमताओं का एक अंश यों ही बेकार चला जायेगा, और तब हम अपने पूरे अस्तित्व का आनन्द भी

1. रूसो की पुस्तक *सोशल काण्ट्रैक्ट* : इसमें एक ऐसे आदर्श राज्य का वर्णन प्रस्तुत किया गया है जिसमें सम्प्रभुता पूरी जनता में निहित थी। उसके विचार 1789 की फ़्रांसीसी क्रान्ति की एक महत्त्वपूर्ण प्रेरकशक्ति बने।
2. फ़्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की (1821-1881) का उपन्यास *द हाउस ऑफ़ डेड*, जो स्वयं उनके कारावास के अनुभवों के आधार पर 1861 में लिखा गया।

नहीं ले पायेंगे। इसी तरह, अपनी शक्तियों का महज विस्तार भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि यदि हमारी इच्छाएँ भी बढ़ जायें, तब तो हम और अधिक दुखी ही हो जायेंगे। सच्चा सुख तो अपनी इच्छाओं और अपनी शक्तियों के बीच के अन्तर को घटाते जाने में निहित है।

– 44, एमिली

पृष्ठ 120 (93)

"बुर्जुआ क्रान्ति का जन्म अपनी पूर्ववर्ती शासन-व्यवस्था में पहले से मौजूद परिस्थिति से होता है।

"बुर्जुआ क्रान्ति आमतौर पर सत्ता पर क़ब्ज़े के साथ ही ख़त्म हो जाती है। लेकिन सर्वहारा क्रान्ति के लिए सत्ता पर क़ब्ज़ा तो महज एक शुरुआतभर है, सत्ता, जब क़ब्ज़े में आ जाती है, तब वह पुरानी अर्थव्यवस्था के रूपान्तरण और एक नयी अर्थव्यवस्था के संगठन के लिए एक उत्तोलक के रूप में इस्तेमाल की जाती है।"

पृष्ठ 20[1]

———○———

"अभी भी दो भारी-भरकम और अत्यन्त दुष्कर कार्यभार बाक़ी हैं – (एक देश – यानी रूस – में मौजूदा शासन-व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के बाद भी)।

"सबसे पहला कार्यभार है आन्तरिक संगठन।

"दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या विश्व क्रान्ति की... – अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की, विश्व क्रान्ति को आगे बढ़ाने की है (जिसके हल किये बिना कम्युनिस्ट शासन-व्यवस्था अन्तरराष्ट्रीय पूँजीवाद के ख़तरे के विरुद्ध सुरक्षित नहीं रह सकती।)

पृष्ठ 21-22[2]

पृष्ठ 121 (94)

1. यदि सर्वहारा को आबादी के बहुमत को अपने पक्ष में करना है तो उसके लिए सबसे पहले ज़रूरी है कि वह बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंके और राज्य सत्ता पर क़ब्ज़ा करे।

2. दूसरे, उसे पुराने राज्य उपकरण को तोड़कर सोवियत सत्ता स्थापित करना, और एक झटके में उस प्रभाव को ख़त्म कर देना ज़रूरी है, जिसे बुर्जुआ वर्ग और

1. और 2. लेनिन की रचनाओं से उद्धृत अंश

वर्ग-सहयोग के निम्न बुर्जुआवर्गीय समर्थक मेहनतकश (ग़ैर-सर्वहारा) जनसमुदायों के ऊपर डालते रहते हैं।

3. तीसरे, सर्वहारा वर्ग के लिए आवश्यक है कि वह उस प्रभाव को पूरी तरह और अन्तिम रूप से नष्ट कर दे, जिसे बुर्जुआ वर्ग और निम्न-बुर्जुआ समझौतावादी बहुसंख्यक मेहनतकश (ग़ैर-सर्वहारा) जनसमुदायों के ऊपर डालते रहते हैं। यह शोषकों की क़ीमत पर इन समुदायों की आर्थिक आवश्यकताओं के क्रान्तिकारी तुष्टिकरण के द्वारा किया जाना चाहिए।

निकोलाई लेनिन[1]
पृष्ठ 23

"सर्वहारा अधिनायकत्व का मतलब है जनसमुदायों का कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा मार्गदर्शन और निर्देशन। यद्यपि पार्टी काफ़ी प्रभाव या नियन्त्रण रखे हुए है, फिर भी इतना ही सब कुछ नहीं है। अपने मार्गदर्शन के अलावा, जनसमुदायों की 'इच्छा' भी किसी उद्देश्य विशेष की प्राप्ति के लिए आवश्यक होती है।

"हमें यह स्वीकार करना होगा कि मज़दूरों के व्यापक समुदायों का वर्ग-चेतन अल्पसंख्या द्वारा नेतृत्व और मार्गदर्शन आवश्यक है। और यह पार्टी ही हो सकती है। पार्टी के पास पार्टी को सर्वहारा मज़दूरों के साथ जोड़ने के लिए 'ट्रेड यूनियनें' हैं...राजनीतिक क्षेत्र में सभी मेहनतकश जनसमुदायों को इससे जोड़ने के लिए सोवियतें हैं। [पृष्ठ 122 (95) पर जारी]
आर्थिक क्षेत्र में ख़ासतौर से किसान समुदायों को जोड़ने के लिए 'कोआपरेटिवें' हैं, उदीयमान पीढ़ी के बीच से कम्युनिस्टों को प्रशिक्षित करने के लिए 'युवा लीग' है। अन्ततः पार्टी स्वयं ही सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत एक अनन्य मार्गदर्शक शक्ति है।"[2]

पृष्ठ 123 (96)

आँकड़े : आमदनियों में असमानता

उत्पादन :

युद्ध पूर्व यूनाइटेड किंग्डम का (इंग्लैण्ड)

वार्षिक उत्पादन का मान रहा :	£ 2000,000,000
विदेशी निवेशों से लाभ	£ 200,000,000
योग	£ 2200,000,000

---

1. और 2. लेनिन की रचनाओं से

वितरण :

कुल आबादी के 1/9 अर्थात, पूँजीपति या बुर्जुआ ने ले लिया कुल उत्पादन का 1/2	अर्थात £ 1100,000,000	{ न्यूनतम वार्षिक औसत आय £ 160
कुल आबादी के 2/9 अर्थात निम्न बुर्जुआ वर्ग ने शेष आधे का 1/3 या कुल का 1/6 ले लिया	अर्थात £ 300,000,000	{ औसत आय £ 160 प्रतिवर्ष से कम
आबादी के 2/3 अर्थात शारीरिक श्रम करने वाले या सर्वहारा को बाक़ी मिला	£ 800,00,000	{औसत आय £ 60 वार्षिक

संयुक्त राज्य अमेरिका : 1890 में

कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत (उत्पादन के) साधनों के मालिकों को मिला
कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत सभी मज़दूरों को दिया गया।[1]

पृष्ठ 124 (91)

जीवन का उद्देश्य

"जीवन का उद्देश्य मन को नियन्त्रित करना नहीं बल्कि उसका सुसंगत विकास करना है, मरने के बाद मोक्ष प्राप्त करना नहीं, बल्कि इस संसार में ही उसका सर्वोत्तम इस्तेमाल करना है, केवल ध्यान में ही नहीं, बल्कि दैनिक जीवन के यथार्थ अनुभव में भी सत्य, शिव और सुन्दर का साक्षात्कार करना है, सामाजिक प्रगति कुछेक की उन्नति पर नहीं, बल्कि बहुतों की समृद्धि पर निर्भर करती है, और आत्मिक जनतन्त्र या सार्वभौमिक भ्रातृत्व केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब सामाजिक-राजनीतिक और औद्योगिक जीवन में अवसर की समानता हो"।[2]

नोटबुक में पृष्ठ सं. 125 से 164 नहीं है।
हमें उपलब्ध प्रति में पृष्ठ (91) के बाद पृष्ठ (100) है। - सम्पादक

---

1. और 2. स्रोत अज्ञात

राज्य का विज्ञान

प्राचीन राज्य व्यवस्था : रोम[1] और स्पार्टा,[2] अरस्तू[3] और प्लेटो[4] : राज्य के प्रति व्यक्ति की मातहती इन प्राचीन राज्य व्यवस्थाओं, स्पार्टा और रोम की प्रमुख विशेषता थी। हेलास[5] में, या रोम में, नागरिक को बस थोड़े से निजी अधिकार प्राप्त थे। उसका आचरण काफ़ी हद तक सार्वजनिक सेंसरशिप के अधीन था, और उसका धर्म राज्यसत्ता द्वारा लागू किया गया होता था। एकमात्र सच्चे नागरिक और सम्प्रभुतासम्पन्न निकाय के सदस्य विशेषाधिकार प्राप्त कुलीन वर्ग के मुक्त लोग होते थे, जिनके लिए शारीरिक श्रम दास किया करते थे, जिनके पास कोई नागरिक अधिकार न थे।

सुकरात :

सुकरात[6] को यह दलील देते हुए प्रस्तुत किया जाता है कि जो कोई भी नागरिक राज्य में पहुँचने के बाद, यदि स्वेच्छा से एक नगर में रहने लगे, तो उसे सरकार की मातहती स्वीकार करनी चाहिए, भले ही उसे इसके क़ानून अनुचित क्यों न लगें, तदनुसार ही, इस आधार पर कि यदि वह जेल से फ़रार होकर भाग जाये, तो राज्य के साथ उसका **क़रार** भंग हो जायेगा, वह एक अनुचित सज़ा के लागू होने का भी इन्तज़ार करते रहने के लिए तैयार रहे।

प्लेटो : (सामाजिक समझौता)

वह समाज और राज्य की उत्पत्ति को पारस्परिक आवश्यकताओं में देखता है, क्योंकि मनुष्य अलग-अलग रहकर अपनी बहुविध आवश्यकताओं को तुष्ट करने में असमर्थ होते हैं। वह एक क़िस्म के आदर्शीकृत स्पार्टा का चित्रण करते हुए कहता है, "एक आदर्श राज्य में, दार्शनिकों को शासन करना चाहिए, और नागरिकों के निकाय को इस कुलीन तन्त्र या सर्वश्रेष्ठों की सरकार के प्रति निश्चित रूप

---

1. प्राचीन रोमन गणराज्य और साम्राज्य
2. यूनान का प्राचीन नगरराज्य
3. अरस्तू (384-322 ई.पू.) : यूनानी दार्शनिक और प्लेटो का शिष्य। उसने बहुतेरे विषयों पर लिखा, जिनमें से *पालिटिक्स* और *पोयटिक्स* विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
4. प्लेटो (427-347 ई.पू.): यूनानी दार्शनिक और सुकरात का शिष्य, और आदर्श राज्य के यूटोपिया के तौर पर, *रिपब्लिक* का लेखक, जिसमें उसने एक दार्शनिक राजा और विवेकसम्मत राज्य-व्यवस्था की कल्पना की थी।
5. हेलास : प्राचीन यूनान
6. सुकरात (469-399 ई. पू.) : यूनानी दार्शनिक जिसे नौजवानों को "भ्रष्ट करने" के आरोप में जहर का प्याला पीकर आत्महत्या कर लेने की सज़ा दी गयी।

से आज्ञाकारी होना चाहिए।" वह नागरिकों के सचेत प्रशिक्षण और शिक्षा पर ज़ोर देता है।

अरस्तू :

वह पहला व्यक्ति था जिसने राजनीति को नीतिशास्त्र से मुक्त किया, हालाँकि वह सतर्क भी था कि ये दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक न हो जायें। उसकी दलील थी, "लोगों की बहुसंख्या विवेक के बजाय अपनी भावनाओं से शासित होती है, और इसीलिए राज्य के लिए ज़रूरी है कि वह उन्हें जीवन-पर्यन्त अनुशासन में रहने का प्रशिक्षण दे, जैसाकि स्पार्टा में है। जब तक राजनीतिक समाज स्थापित नहीं होता, तब तक न्याय का कोई प्रशासन नहीं हो सकता...(लेकिन) इसके लिए आवश्यक है कि सर्वोत्तम संविधान और विधि-निर्माण की सर्वोत्तम प्रणाली की खोज की जाये...। [पृष्ठ 166 (101) पर जारी]

"राज्य का बीज परिवार या कुटुम्ब में होता है। कई कुटुम्बों के संयुक्त होने से ग्राम समुदाय की उत्पत्ति हुई है (जिसके) सदस्य **पितृसत्तात्मक सरकार** के अधीन होते हैं।

"कई गाँवों को मिलाकर **राज्य का निर्माण** हुआ, जो एक प्राकृतिक, स्वतन्त्र, और आत्मनिर्भर संगठन था।

"लेकिन जहाँ कुटुम्ब एक व्यक्तित्व द्वारा शासित होता है, वहीं संवैधानिक सरकारों में व्यक्ति स्वतन्त्र और अपने शासकों के समान होते हैं।

"प्राकृतिक सामाजिक मैत्री और परस्पर लाभ से एकता गठित होती है। मनुष्य अपने स्वभाव से एक राजनीतिक **(सामाजिक)** प्राणी है।

"राज्य एक संश्रय से कहीं अधिक है, जिससे व्यक्ति जुड़ सकते हैं या बिना कोई फ़र्क़ पड़े छोड़ सकते हैं, लेकिन स्वतन्त्र या नागरिकतारहित मनुष्य अविश्वसनीय, असभ्य, और एक नागरिक से भिन्न कोई चीज़ होता है।

प्लेटो :

प्लेटो ने एक ऐसे निकाय के रूप में राज्य की इस अवधारणा का पूर्वानुमान किया था जिसके सदस्य **एक सर्वमान्य लक्ष्य के लिए सामंजस्यपूर्ण ढंग से संयुक्त हों।**

अरस्तू :

अरस्तू का मानना था कि जहाँ स्वतन्त्रता और समानता हो, वहाँ बारी-बारी से शासन और अधीनीकरण हो, लेकिन सबसे अच्छा यही है कि यदि सम्भव हो तो, वे ही व्यक्ति हमेशा शासन करते रहें।

प्लेटो के साम्यवाद के विरोध में उसकी दलील बाक़ायदा **नियम निर्धारित निजी सम्पत्ति** के पक्ष में थी, जिसके पीछे उसका विचार यह था कि राज्य में सिर्फ़ एक नैतिक एकता ही सम्भव या वांछनीय है।

(सरकारों के प्रकार)

उसने सरकारों को राजतन्त्रों, कुलीनतन्त्रों और गणतन्त्रों तथा क्रमशः उनके विकृत रूपों, जैसे निरंकुश तन्त्रों, अल्पतन्त्रों और जनतन्त्रों में वर्गीकृत किया, जिसका आधार यह था कि इनमें सर्वोच्च सत्ता एक या कुछ या कई के हाथों में होती है, और इनका उद्देश्य सामान्य हित या शासकों का निजी हित होता है तथा इनमें स्वतन्त्रता, सम्पदा, संस्कृति और कुलीनता को भी तवज्जो दी जाती है।

प्रत्येक राज्य व्यवस्था के तीन अंग होते हैं : (1) **विमर्शात्मक** (2) **कार्यात्मक** और (3) **न्यायिक निकाय**। नागरिकता का निर्धारण न तो निवास से होता है न ही क़ानूनी अधिकार रखने से, बल्कि न्यायिक सत्ता और सरकारी कामकाज में भागीदारी से होता है।

नैतिकता का एक निश्चित स्तर प्राप्त करके कइयों को शासन करना चाहिए, क्योंकि अलग-अलग व्यक्तिगत तौर पर कम योग्य होने के बावजूद, वे सम्मिलित रूप से, कुछेक चुनिन्दा व्यक्तियों से कहीं अधिक चतुर और अधिक सद्गुणसम्पन्न होते हैं। लेकिन सारी विमर्शात्मक और न्यायिक कार्यवाहियों को सँभालने के बावजूद, **उन्हें उच्चतम कार्यात्मक पदों से बाहर ही रखना चाहिए। सबसे अच्छी राज्यव्यवस्था** वह है जिसमें बहुत धनी और बहुत ग़रीब के बीच का मध्यम वर्ग सरकार चलाये, कारण कि इस वर्ग का जीवन सबसे स्थायी होता है तथा यह सबसे विवेकसम्मत, और साथ ही संवैधानिक कार्यवाही में सबसे सक्षम भी होता है। [पृष्ठ 167 (102) पर जारी] वस्तुतः इसी के लिए यह कहा जाता है कि **सम्प्रभुता को नागरिकों की बहुसंख्या में निहित होना चाहिए**, जिसमें बेशक दास नहीं आते।

जनतन्त्र **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के मामले में समानता** पर एकमत होते हैं, जिसका निहितार्थ यह है कि सभी नागरिक, राज्य के पदों पर आसीन होने या चुने जाने के लिए, तथा हरेक सब पर और सभी हरेक पर शासन करने के लिए अर्ह्य होते हैं।

अरस्तू भी, प्लेटो की भाँति ही जनतन्त्र को सरकार का एक विकृत रूप मानता था, और कहता था कि यह अन्य किसी प्रकार के राज्यों की अपेक्षा बड़े राज्यों के लिए अधिक उपयुक्त है।

स्टोइकवादी : सिनिकवादी :

एपीक्यूरसवादी : एपीक्यूरस[1] का कहना था, "न्याय स्वयं में कुछ नहीं है, यह बस परस्पर नुक़सान रोकने के लिए (न्याय के आधार के तौर पर) समझौते

---

1. एपीक्यूरस : (341-270 ई.पू.) यूनानी दार्शनिक, जो मानता था कि आत्मसंयम से जीवन सुखमय बनाया जा सकता है। नैतिकता सन्तोषप्राप्ति का एक साधन है।

की एक तरकीबभर है।

स्टोइक : *(वाद)*

दार्शनिक ज़ेनो (340-260 ई.पू.)[1] का एक शिष्य, जिसने एथेंस के 'स्टोआ पॉइकलाइट' (पेण्टेड पोर्च) नामक बग़ीचे में अपनी दार्शनिक शाखा का शिक्षण-संस्थान खोला। बाद में कैटो द यंगर[2], सेनेका[3], मार्क्यूस ऑरेलियस[4] रोमन स्टोइकवादी हुए। स्टोइक शब्द का शाब्दिक अर्थ है : 'वह व्यक्ति जो सुख या दुख के प्रति विरक्त हो।'

स्टोइकवाद पुराने दर्शन की एक शाखा है, जो जीवन और कर्त्तव्य के प्रति अपने दृष्टिकोण में एपीक्यूरसवाद का प्रबल विरोधी है; और सुख या दुख के प्रति उदासीन है।

सिनिकवाद :

दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय जिसकी स्थापना एथेंस के एण्टीस्थेनीज[5] (जन्म 444 ई.पू.) ने की थी, जिसकी अभिलाक्षणिक विशिष्टता धन-दौलत, कला, विज्ञान और आमोद-प्रमोद के विरुद्ध एक प्रकट घृणा के रूप में थी। इन्हें सिनिक इनके रूखे व्यवहार के कारण कहा जाता है। सिनिकवाद कभी-कभी मानव-स्वभाव के प्रति तिरस्कार भावना के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है।

एपीक्यूरसवादी :

एपीक्यूरस (341-270 ई.पू.) एक यूनानी दार्शनिक था, जिसकी शिक्षा थी कि सुख ही असली चीज़ है। एपीक्यूरसवादी उसे कहा जाता है जो खाओ-पीओ और मौज-मस्ती में विश्वास करता है।

---

1. ज़ेनो : यूनानी दार्शनिक, जो आत्मसंयम और प्रकृति की संगति में जीवन जीने का हिमायती था।
2. कैटो द यंगर (95-46 ई.पू.) : रोमन दार्शनिक जो स्टोइकवादियों का संरक्षक सन्त बना।
3. सेनेका : पूरा नाम ल्यूसियस एनीयस सेनेका (4 ई.पू.-65 ई.) : रोमन लेखक और राजनीतिज्ञ तथा रोमन सम्राट नीरो का शिक्षक, जिसने स्टोइकवाद पर कई निबन्ध और दुखान्त नाटक भी लिखे। थोड़े समय के लिए वह एक तरह से रोम का शासक भी रहा, फिर बाद में आत्महत्या करने की सज़ा मिली।
4. मार्कस आरेलियस एन्तोनियस : (121-180 ई.) : रोमन दार्शनिक और सम्राट (161-180 ई. तक)। उसने *मेडिटेशंस* नाम से एक क्लासिकीय स्टोइकवादी ग्रन्थ लिखा।
5. एण्टीस्थेनीज़ (444-365 ई. पू.) : सुकरात से प्रभावित यूनानी दार्शनिक। उसके सादगी भरे जीवन और शिक्षाओं ने ग़रीबों को आकर्षित किया।

रोमन राज्य-व्यवस्था

रोमनों ने राजनीतिक सिद्धान्त में कम ही ऐसा इज़ाफ़ा किया गया जिसका प्रत्यक्ष महत्त्व हो, लेकिन एक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित विभाग, यानी विधिशास्त्र में - उन्होंने गहरी रुचि वाला और मूल्यवान योगदान किया।

जस-सिविक
जस-जेण्टियम

गणतन्त्र के अन्तर्गत, "नागरिक क़ानून" (*जस-सिविक*) के अतिरिक्त, *जस-जेण्टियम* (राष्ट्र के क़ानून) नाम से ढेरों नियम और सिद्धान्त अस्तित्व में आ चुके थे, जो इतालवी क़बीलों के बीच प्रचलित सामान्य विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करते थे।

जस नेचुरेल्स

महान रोमन *ज्यूरिस-कंसल्ट्स* (क़ानून-विज्ञान के विशेषज्ञ) स्टोइकवादियों के विचार से प्रेरणा लेकर) धीरे-धीरे प्रकृति के क़ानून (*जस नेचुरेल*) को *जस-जेण्टियम* के समरूप मानने लगे।

उनकी शिक्षा थी कि यह क़ानून दैवीय और शाश्वत था, और कि यह किन्हीं विशिष्ट राज्यों के क़ानूनों से अपनी भव्यता और वैधता में कहीं अधिक श्रेष्ठ था। **प्राकृतिक क़ानून** को वास्तव में अस्तित्वमान माना जाता था, और इसे नागरिक क़ानून से सम्बद्ध समझा जाता था।

एण्टोनियाई काल[1] में, जब रोमन क़ानून अपना चरम विकास कर चुका था और स्टोइकवादी सिद्धान्त सर्वाधिक प्रभावी हो चुके थे, तब विधिवेत्ताओं ने राजनीतिक सिद्धान्तों के रूप में नहीं, बल्कि न्यायशास्त्रीय रूप से, यह सिद्धान्त सूत्रबद्ध किया कि :

"सारे मनुष्य जन्मजात स्वतन्त्र होते हैं।"

और कि प्रकृति के क़ानून से, **"सारे मनुष्य समान होते हैं"** - जिसका निहितार्थ यह था कि भले ही नागरिक क़ानून में वर्ग-भेद की मान्यता थी, प्रकृति के क़ानून के समक्ष समूची मानवजाति बराबर थी।

रोमन राज्य व्यवस्था में सामाजिक समझौता :

यद्यपि रोमन विधिवेत्ताओं ने नागरिक समाज की उत्पत्ति के तौर पर किसी समझौते को स्वीकार नहीं किया था फिर भी स्वीकृत अधिकारों और दायित्वों को एक कल्पित, लेकिन ग़ैर-मौजूद समझौते से निगमित करने की एक रुझान मौजूद थी।

---

1. रोमन सम्राट एण्टोनियस पायस (86-161 ई.) का शासनकाल (138-161 ई.)। उसका शासनकाल शान्ति और उत्तम प्रशासन का काल माना जाता है।

सम्प्रभुता के मामले में, नागरिक *कोमिटिया ट्रिब्यूरा*[1] में एकत्र होकर, गणतन्त्र के स्वर्णिम दिनों में, सर्वोच्च सत्ता के रूप में काम करते थे।

साम्राज्य के अन्तर्गत, सम्प्रभु सत्ता सम्राट में निहित थी, और बाद के *ज्यूरिस कंसल्ट्स* के अनुसार, जनता *लेक्स रेजिया*[2] के अनुसार, सर्वोच्च कमान प्रत्येक सम्राट को, उसके शासन के शुरू होते ही, सौंप देती थी, और इस प्रकार शासन करने और क़ानून बनाने के अपने सारे अधिकार उसे सौंप देती थी।

पृष्ठ 169 (104)

मध्य युग

(टॉमस एक्विनास)

टॉमस एक्विनास[3] **:** (1226–1274) के बारे में कहा जाता है कि वह मध्य युग के राजनीतिक सिद्धान्त का प्रमुख प्रवर्तक था। उसने, रोमन विधिवेत्ताओं का अनुसरण करते हुए, एक प्राकृतिक क़ानून को मान्यता दी, जिसके सिद्धान्त मानवीय विवेक में दैवीय रूप से निविष्ट किये गये (माने गये – स.) और इसके साथ ही उसने उन प्रत्यक्ष क़ानूनों को भी मान्यता दी, जो भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हुआ करते थे।

उसका कहना था कि क़ानून बनाने वाली सत्ता, जोकि सम्प्रभुता की अनिवार्य विशेषता होती है, सामान्य कल्याण की दिशा में निर्देशित होनी चाहिए, और कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, **इसे बहुसंख्यक जनता या उसके प्रतिनिधि, राजा, से सम्बद्ध होना चाहिए।** उसे **राजा, कुलीनों,** और **जनता** की मिली-जुली सरकार सर्वोत्तम प्रतीत होती थी जिसमें सर्वोच्च सत्ता के रूप में **पोप** हो।

पादुआ का मार्सिलिओ[4]

(1328 में निधन)

समझौते की धारणा

अपनी कृति *'डिफेंसर पैसिस'* में पादुआ के मार्सिलिओ ने लोकाधारित

1. राजकीय या शाही कमेटी, जो सम्राट द्वारा गठित की जाती थी।
2. राजकीय क़ानून
3. टॉमस एक्विनास (1226–1274) : इतालवी दार्शनिक
4. पादुआ का मार्सिलिओ (मृत्यु 1328 ई.) : इटली के पादुआ शहर का निवासी राजनीतिक सिद्धान्तकार जिसने चर्च और राज्य को एक-दूसरे से पृथक करने को लेकर बादशाह लुई चतुर्थ के लिए *डिफेंसर पैसिस* ग्रन्थ लिखा, जो काफ़ी विवादास्पद सिद्ध हुआ।

सम्प्रभुता के सिद्धान्त की हिमायत की, और **लौकिक सत्ता के प्रति उन पोपवादी पाखण्डों का विरोध किया**, जो *फाल्सो डिक्रिटल्स* पर आधारित थे।

(जनता की सम्प्रभुता)

चूँकि मनुष्य ने नागरिक जीवन अपने पारस्परिक हित के लिए अपनाया इसलिए क़ानून भी नागरिक के निकाय द्वारा ही बनाये जाने चाहिए; क़ानून जब तक उन लोगों द्वारा नहीं बनाये जाते, जिनके हित इनसे सीधे प्रभावित होते हैं और जिन्हें पता होता है कि उनकी आवश्यकताएँ क्या हैं, तब तक न तो वे सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं, और न ही उनका तत्परता से पालन किया जा सकता है।

उसने दावे के साथ कहा कि **क़ानून बनाने वाली सत्ता जनता में निहित होती है,** और कि विधायिका का काम कार्यपालिका का गठन करना है, लेकिन वह उसे भी परिवर्तित या रद्द कर सकती है।

पुनर्जागरण - सुधार!!

पुनर्जागरण में, ज्ञान के सभी क्षेत्र जागरूक हो उठे और जो लीकबद्ध दर्शन हज़ारों वर्षों से धर्मशास्त्र की चाकरी करता आ रहा था, अब उसका स्थान **प्रकृति और मनुष्य** के एक नये दर्शन ने ले लिया, जो अधिक उदार, अधिक गहरा, और अधिक बोधगम्य था।

बेकन[1] ने मनुष्य को अधिभूतवाद से प्रकृति और यथार्थ की ओर लौटने का आह्वान किया।

दर्शन की शुरुआत निश्चय ही सार्वभौमिक सन्देहवाद से होनी चाहिए। लेकिन जल्द ही यह तथ्य असन्दिग्ध पाया जाता है : मनुष्य में चिन्तनशील सिद्धान्त का अस्तित्व। **चेतना का अस्तित्व!**

कार्तवादी दर्शन

सुधार काल में आत्मगत सच्चाई पर विश्वास और व्यक्ति की सत्ता का जिस ज़ोर-शोर के साथ आह्वान किया गया वही **कार्तवादी दर्शन** का आधार बना।

कार्तवादी - फ़्रांसीसी दार्शनिक रेने द कार्त[2] (1596-1650) और उसके दर्शन से सम्बन्धित।

---

1. सम्भवत: फ्रांसिस बेकन (1561-1626) : अंग्रेज़ दार्शनिक और राजनीतिज्ञ की किसी रचना से उद्धृत।

2. फ़्रांसीसी दार्शनिक और गणितज्ञ। कार्तवादी दर्शन चेतना और पदार्थ के भेद पर आधारित है, जो द कार्त की कृति *डिस्कोर्स ऑन मैटर* (1673) में उसके इस सूत्र-वाक्य से स्पष्ट है : *कॉगनिटो अर्गो सम* (Cogito ergo sum) - अर्थात "मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।"

नया युग

सुधार-काल के बाद, पोप की सत्ता चरमरा गयी, तथा शासक और जनता दोनों के दिमाग़ आज़ादी की लहर में तरंगायित हो चले। लेकिन एक ऊहापोह की स्थिति भी पैदा हो गयी। इस नयी स्थिति से निपटने के लिए बहुतेरे चिन्तकों ने राज्य के सवाल पर सोचना शुरू कर दिया। चिन्तन की विभिन्न शाखाएँ उठ खड़ी हुईं।

मैकियावेली :

मैकियावेली - इस मशहूर इतालवी राजनीतिक विचारक ने सरकार के गणतान्त्रिक रूप को सर्वोत्तम माना, लेकिन सरकार के इस रूप के स्थायित्व पर सन्देह होने के कारण, उसने एक सशक्त राजतन्त्रात्मक शासन को सुरक्षित रखने के सिद्धान्तों का भी निरूपण किया, और इसी नाते उसने "द प्रिन्स"[1] की रचना की।

एक **केन्द्रीकृत सरकार** की उसकी हिमायत का यूरोप के राजनीतिक सिद्धान्त और व्यवहार पर भारी प्रभाव पड़ा।

मैकियावेली सम्भवत: पहला लेखक था जिसने एकदम धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से "राजनीति" पर विचार किया।

अन्य विचारक

क़रार और समझौता

अन्य विचारकों में से ज़्यादातर ने क़रार या समझौते के सिद्धान्त का समर्थन किया। रोमन क़ानून में (क़रार) व्यक्तियों के बीच एक सहमति का नतीजा हुआ करता था और इसका दायरा समझौते से छोटा हुआ करता था, जबकि समझौता क़रार के साथ-साथ एक बाध्यकारी दायित्व भी होता था।

ऐसे विचारकों के दो अलग-अलग सम्प्रदाय थे। पहले प्रकार का सम्प्रदाय ईश्वर और मनुष्य के बीच क़रार की यहूदी धारणा पर आधारित सिद्धान्त का प्रतिपादन करता था, जो समझौते की रोमन धारणा से सम्पूरित था। यह सरकार और जनता के बीच एक अलिखित समझौते का प्रतिपादन करता था।

---

1. द प्रिन्स : 1527 में, इतालवी राजनीतिक चिन्तक मैकियावेली द्वारा लिखी गयी प्रसिद्ध पुस्तक, जिसमें राज्यसत्ता हासिल करने के उपायों का विस्तारपूर्वक विवेचन और विश्लेषण किया गया है। मैकियावेली और उसकी पुस्तक ने अपने समय तथा बाद के युग में भी राजनीति पर काफ़ी प्रभाव डाला।

दूसरा या आधुनिक प्रकार का सम्प्रदाय व्यक्तियों के बीच एक क़रार के जरिये राजनीतिक समाज की संस्थाबद्धता से सम्बन्धित है। चिन्तन की इस शाखा के प्रमुख विचारक हूकर[1], हॉब्स[2], लॉक[3] और रूसो[4] हुए हैं।

लोक-स्वतन्त्रता के हिमायती

ह्यूजिनॉत[5]

1. *विण्डिसिए कोण्ट्रा टाइरैनॅस*[6] (1576) **ह्यूजिनॉत लैंगुएत** की रचना। इसमें दलील दी गयी थी कि राजा अपनी सत्ता जनता की इच्छा से प्राप्त करे, और कि यदि राजा क़ानूनों के परिपालन में उस क़रार को भंग करे जो उसके और जनता के बीच संयुक्त रूप से राजशाही की स्थापना के समय किया गया होता है, तब **जनता भी राज्यनिष्ठा से मुक्त हो जायेगी।**

बुकानन[7] :

2. बुकानन का भी यही कहना था कि राजा और जनता एक पैक्ट के तहत वचनबद्ध होते हैं, और कि यदि राजा इसे भंग कर दे, तो वह अपने अधिकार भी खो बैठता है।

---

1. रिचर्ड हूकर : देखें नोटबुक पृष्ठ *107* (*80*) का सन्दर्भ 1
2. टॉमस हॉब्स : देखें नोटबुक पृष्ठ *108* (*81*) का सन्दर्भ 2
3. जॉन लॉक (1632-1707) : अंग्रेज़ दार्शनिक और एक अग्रणी व्यवहारवादी। उसने सामाजिक संविदा के हॉब्स के सिद्धान्त की आलोचना की जो राजतन्त्र के समर्थन तक जाते थे; 1689 में अपनी प्रसिद्ध कृति *टू ट्रीटाइजेज़ ऑन गवर्नमेण्ट* लिखी, जिसने आगे चलकर अमेरिकी संविधान निर्माताओं को प्रभावित किया; उसकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक *एस्से कंसर्निंग ह्यूमन अण्डरस्टैण्डिंग* है जो ऐन्द्रिक अनुभव पर आधारित ज्ञान की अवधारणा के समर्थन में है।
4. ज्याँ जाक रूसो : देखें नोटबुक पृष्ठ *119* (*92*) का सन्दर्भ 1
5. ह्यूजिनात : यह नाम सोलहवीं सदी के मध्य से फ़्रांस के प्रोटेस्टेण्टों को दिया जाने लगा था, कारण कि तूर्स शहर में स्थानीय प्रोटेस्टेण्ट ईसाई रात में राजा ह्यूगो के फाटक पर मुलाक़ात किया करते थे। राजा ह्यूगो को जनता एक दैवीय शक्ति मानती थी।
6. *विण्डीसिए कोण्ट्रा टाइरैनस* : ह्यूबर्ट लैंगुएत (1518-1581) की रचना जिसमें निरंकुश शासन के विरुद्ध प्रतिरोध करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया था; परन्तु इसके लिए यह भी ज़रूरी बताया गया था कि ऐसा प्रतिरोध एक समुचित रूप से गठित आधिकारिक निकाय द्वारा ही किया जाना चाहिए।
7. जॉर्ज बुकानन (1506-1582) : स्कॉट विचारक, जिन्होंने अपनी रचना *डि ज्यूर रेग्नी एपुड स्कोटोस* (1579) में लिखा कि राजा उन परिस्थितियों से बँधा होता है जिनके तहत उसे सर्वोच्च सत्ता प्रदान की गयी; और निरंकुश शासकों का प्रतिरोध करना तथा यहाँ तक कि उन्हें दण्डित करना भी न्यायपूर्ण है।

जेसुइट[1] :

3. यहाँ तक कि जेसुइट बेलार्मिन[2] और मारिएना[3] की भी यही दलील थी कि राजा अपनी सत्ता जनता से प्राप्त करे; परन्तु पोप के अधीन रहे।

राजा जेम्स प्रथम[4] (1609) : जेम्स प्रथम ने इस सिद्धान्त को, 1609 में, संसद में एक वक्तव्य देते हुए यह कहकर स्वीकार किया कि "एक स्थापित राज्य का हरेक न्यायप्रिय राजा यह देखने के लिए बाध्य है कि उसकी सरकार के गठन में, जनता के साथ उसके क़ानूनों के तहत जो पैक्ट किया जाता है वह जनता को स्वीकार्य भी हो।"

कनवेंशन पार्लियामेण्ट (1688) : कनवेंशन पार्लियामेण्ट ने 1688 में घोषित किया कि जेम्स द्वितीय[5] को "राजा और जनता के बीच मूल समझौते को तोड़कर संविधान को उलटने की कोशिश करने के कारण सिंहासन ख़ाली कर देना पड़ा।"

बोदैं[6] (1586)8 : आधुनिक काल के पहले सम्पूर्ण राजनीतिक दार्शनिक और 'रिपब्लिक' (1577 और 1586) के लेखक, बोदिन का कहना है कि **"समझौता नहीं, बल्कि ताक़त से गणराज्य की उत्पत्ति हुई है।"** आदिकालीन पितृसत्तात्मक सरकारों को जीत करके उखाड़ फेंका गया, और इस प्रकार, प्राकृतिक स्वतन्त्रता का अन्त हो गया।

उसके विचार से, **"सम्प्रभुता नागरिकों के ऊपर सर्वोच्च सत्ता है।"** वह मानता था कि **"सम्प्रभुता स्वतन्त्र, अविभाज्य, स्थायी, अहस्तान्तरणीय और**

---

1. जेसुइट : *सोसायटी ऑफ़ जीसस* नामक सम्प्रदाय का सदस्य; इस कैथोलिक धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना 1540 में, सेण्ट इग्नेशियस लोयोला ने की थी।
2. बेलार्मिन (इतालवी में बेलार्मिनो) - राबर्टो फ्रांसिस्को रोमोलो (1542-162) इतालवी धर्मशास्त्री, वह मानता था कि पोप के पास एक अयोग्य शासक को हटा देने का अप्रत्यक्ष अधिकार होता है।
3. जुआन डि मारिएना (1536-1624) : स्पेन का इतिहासकार और जेसुइट; वह एक निरंकुश शासक को उखाड़ फेंकने को वैध मानता था।
4. जेम्स प्रथम (1602-1625): ब्रिटेन का राजा। उसने राजा के दैवीय अधिकार की घोषणा की, जिसको लेकर संसद से उसका टकराव हुआ।
5. जेम्स द्वितीय (1633-1701) : ब्रिटेन का राजा। अपनी कैथोलिक पक्षधरता और स्वेच्छाचारी शासन के कारण उसे 1688 की "गौरवशाली क्रान्ति" के बाद, सिंहासन छोड़कर फ़्रांस भागना पड़ा।
6. ज्याँ बोदैं (1530-1596) : फ़्रांसीसी दार्शनिक। उसका मानना था कि सम्प्रभु शासक की सत्ता को जनतान्त्रिक संसद संशोधित कर सकती है।

निरपेक्ष सत्ता" है। **उसने सम्प्रभुता की अपनी धारणा और उस समय की मौजूद राजशाही के बीच घालमेल कर दिया।**

अल्थूसियस (1557-1638)[1]**:** वह स्पष्ट रूप से यह कहने के लिए जाना जाता है कि **सम्प्रभुता एकमात्र जनता में ही निहित होती है**। राजा सिर्फ़ उसका मजिस्ट्रेट या प्रशासकभर होता है, और कि समुदाय का सम्प्रभुता का अधिकार अहस्तान्तरणीय होता है।

ग्रोटियस (1625)[2]**:** अपनी कृति *"डि ज्यूरे बेली एट पेरिस"* (1628) में ग्रोटियस कहता है कि **मनुष्य में एक शान्तिप्रिय और व्यवस्थित समाज की प्रबल इच्छा होती है।** लेकिन वह अ-प्रतिरोध का सिद्धान्त विकसित करता है, और इस बात से इन्कार करता है कि **लोग हमेशा और हर जगह सम्प्रभुता सम्पन्न होते हैं अथवा यह कि सारी सरकारें शासितों के लिए गठित होती हैं।** सम्प्रभुता या तो विजय से आती है या सहमति से, लेकिन वह इस धारणा पर ज़ोर देता है कि **सम्प्रभुता अविभाज्य सत्ता है।**

हूकर : वह अपनी कृति *'एक्लेसियस्टिकल पालिटी'* - खण्ड 1 (1592-3) में प्रकृति की एक ऐसी मौलिक दशा को स्वीकार करता है जिसमें सभी मनुष्य बराबर थे और किसी भी क़ानून के मातहत नहीं थे। मानवोचित गरिमा के अनुकूल जीवन की इच्छा और एकाकीपन के प्रति अरुचि ने उन्हें *'राजनीतिक समाजों'* में एकबद्ध होने के लिए प्रेरित किया। **'प्राकृतिक रुझान'** और एक साथ जीवन जीने की उनकी एकबद्धता के तौर-तरीक़े पर प्रत्यक्ष या गुप्त सहमति से चलने वाली व्यवस्था ही वर्तमान 'राजनीतिक समाजों' के दो बुनियादी आधार बने। इनमें से दूसरे आधार को ही हम *"सामान्य हित के क़ानून"* कहते हैं।

पृष्ठ 172 (107) **राज्य की उत्पत्ति**

सम्प्रभुता : **विधायी सत्ता का कार्यपालिका पर भी नियन्त्रण**

'सभी आपसी शिकायतों, क्षतियों और ग़लतियों को दूर करने के लिए एकमात्र तरीक़ा किसी क़िस्म की सरकार, या सर्वमान्य न्यायकर्ता की व्यवस्था करना ही था।'

1. जोहान्स अल्थूसियस (1557-1638) : एक जर्मन विधिवेत्ता और डच गणराज्य की सीमा पर स्थित एक इम्पीरियल शहर एमडैन का चीफ़ मजिस्ट्रेट
2. ह्यूगो ग्रोटियस (1583-1645) : डच विधिवेत्ता और राजनीतिज्ञ। उसकी पुस्तक अन्तरराष्ट्रीय क़ानून का सबसे पहले निरूपण करने वाली कृति मानी जाती है।

वह इस बात पर अरस्तू से सहमत था कि **सरकार की उत्पत्ति राजतन्त्र से हुई।** लेकिन वह यह भी कहता है कि 'क़ानून सिर्फ़ भलाई की शिक्षा ही नहीं देते, बल्कि एक बाध्यकारी शक्ति भी रखते हैं, जो शासितों की सहमति से प्राप्त होती है, और जो या तो व्यक्तिगत तौर पर या प्रतिनिधियों के मार्फ़त प्रदर्शित होती है।'

"क़ानून, चाहे जिस किसी भी क़िस्म के मनुष्यों के लिए हों, वे उनकी सहमति से ही उपलब्ध (अर्थात वैध) होते हैं।"

"वे क़ानून क़ानून नहीं हैं जो जनता के अनुमोदन से नहीं बनाये गये होते हैं।"

"जनता की सम्प्रभुता"

इस प्रकार उसने स्पष्ट तौर पर कहा कि सम्प्रभुता या क़ानून-निर्मात्री सत्ता अन्ततः जनता में ही निहित होती है।

1620 :

मेफ़्लावर (1620) पर सवार **"पिलग्रिम फ़ादर्स"[1] की मशहूर घोषणा :** "ईश्वर को साक्षी मानकर हम सब मिलकर एक दूसरे क़रार की घोषणा करते हैं और अपनेआप को एक नागरिक राजनीतिक निकाय के रूप में संयुक्त करते हैं।"

1647 :

इंग्लैण्ड की जनता का क़रार : एक और मशहूर प्यूरिटन[2] दस्तावेज़, जो आर्मी ऑफ़ द पार्लियामेण्ट **(1647)** से निःसृत हुआ, सोच की इसी प्रवृत्ति का संकेत देता है।

मिल्टन[3]

1649 (जनता की सम्प्रभुता)[4]

अपनी कृति *"टेन्योर ऑफ़ किंग्स एण्ड मैजिस्ट्रेट्स"* (1649) में वह भी ऐसे ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। वह दावे के साथ कहता है कि "सभी मनुष्य प्राकृतिक रूप से स्वतन्त्र ही पैदा हुए थे।" वे एक "सामान्य संघ के रूप में एक-दूसरे के साथ बँधने के लिए इसलिए सहमत हुए कि वे एक-दूसरे को क्षति

---

1. पिलग्रिम फ़ादर्स : इंग्लैण्ड के चर्च के प्यूरिटन विद्रोहियों का एक जत्था जो परेशान किये जाने से बचने तथा उत्तरी अमेरिका में जा बसने के लिए, *मेफ़्लावर* नामक जहाज़ से भाग निकला।
2. प्यूरिटन : प्रोटेस्टेण्ट ईसाई सम्प्रदाय का सदस्य
3. जॉन मिल्टन (1608-1674) : अंग्रेज़ कवि। *पैराडाइज लॉस्ट* और *पैराडाइज रिगेन्ड* के रचयिता
4. मोटे अक्षरों में हाशिये पर दर्ज

पहुँचाने से बच सकें तथा एक साथ मिलकर उस किसी भी चीज़ से अपना बचाव कर सकें जो गड़बड़ी पैदा करने वाली हो या इस तरह की सहमति के ख़िलाफ़ पड़ती हो। इसी की बदौलत क़स्बे, नगर और राज्य अस्तित्व में आये। तब आत्मरक्षा और संरक्षण की यह आधिकारिक सत्ता जो बुनियादी तौर पर उनमें से प्रत्येक के भीतर तथा संयुक्त रूप से सबमें निहित थी, डिप्टियों और कमिश्नरों के रूप में राजाओं और मजिस्ट्रेटों को सौंप दी गयी।"

"राजाओं और मजिस्ट्रेटों की सत्ता और कुछ भी नहीं है, सिवाय इसके कि यह सिर्फ़ उन्हें जनता द्वारा सबकी भलाई के विश्वास के साथ प्रदानित, हस्तान्तरित और सौंपी गयी सत्ता है, **जो अभी भी बुनियादी तौर पर उसी में** (यानी जनता में - स.) **निहित होती है** और जो उसके प्राकृतिक जन्मसिद्ध अधिकार का उल्लंघन किये बग़ैर छीनी नहीं जा सकती। अत: राष्ट्र राजाओं को चुन या हटा सकते हैं, स्वतन्त्र-जन्मा मनुष्यों के महज इस अधिकार और स्वतन्त्रता के आधार पर कि वे किनसे शासित होना सर्वोत्तम समझते हैं।"

पृष्ठ 173 (108)

राजाओं के दैवी अधिकारों का सिद्धान्त

पितृसत्तात्मक सिद्धान्त

इसी युग में जहाँ बहुतेरे विचारक 'जनता की सम्प्रभुता' के इन सिद्धान्तों का इस प्रकार प्रतिपादन करने में लगे हुए थे, वहीं दूसरे सिद्धान्तकार भी थे, जो यह साबित करने की कोशिश कर रहे थे कि राज्य वृहदाकार परिवार ही हैं, जिनमें एक कुटुम्ब के मुखिया की पैतृक सत्ता, ज्येष्ठता क्रम की वंशपरम्परा में पूर्ववर्ती सम्प्रभु शासक के उस प्रतिनिधि को हस्तान्तरित कर दी जाती है जो किसी राष्ट्र पर शासन करने में सक्षम सिद्ध हो सके। **इसीलिए राजशाही को एक अजेय अधिकार पर आधारित माना गया, और राजा को केवल ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी ठहराया गया।** इसे ही **"राजाओं का दैवी अधिकार"** कहा गया। इसे ही **"पितृसत्तात्मक सिद्धान्त"** कहा गया।[1]

टॉमस हॉब्स :

1642-1650-1651 में लिखी गयी अपनी विविध रचनाओं में उसने सम्प्रभु शासक की असीमित सत्ता के सिद्धान्त को जनता के आरम्भिक क़रार के विरोधी सिद्धान्त के साथ संयुक्त कर दिया। परन्तु निरंकुशतावाद - मूक आज्ञाकारिता - के

1. यह स्पष्ट नही है कि भगतसिंह किसी पुस्तक से उद्धरण नोट कर रहे थे या ये उनकी अपनी टिप्पणियाँ हैं।

प्रति हॉब्स की पक्षधरता धर्मशास्त्रीय न होकर, धर्मनिरपेक्ष और तर्कसंगत थी। वह समुदाय (पूरी समष्टि) के सुख को सरकार का महान लक्ष्य मानता था।

(मनुष्य एक असामाजिक प्राणी)

हॉब्स का दर्शन सिनिकवादी है। उसके अनुसार, मनुष्य के मनोवेग स्वाभाविक रूप से उसके निजी संरक्षण और सुख की दिशा में ही निर्दिष्ट होते हैं, और वह उनकी प्राप्ति के अलावा और कोई उद्देश्य नहीं रखता। **अतः मनुष्य स्वभाव से असामाजिक है।** वह कहता है, **"प्राकृतिक अवस्था में, हरेक आदमी अपने जैसों से युद्धरत रहता है,** और हरेक का जीवन ख़तरे में, अकेला, असहाय, असुरक्षित, पशुवत और अल्पकालिक होता है।" **इस प्रकार के जीवन का भय ही उसे राजनीतिक एकता में बँधने के लिए विवश करता है।**

(लगातार ख़तरा उन्हें राज्य गठित करने पर विवश करता है!)

चूँकि महज पैक्ट काम नहीं देता, इसलिए **'एक सर्वोच्च सर्वमान्य सत्ता'** - **"सरकार"** की स्थापना

("जीत" या "अधिग्रहण" और "संस्थाबद्धता" सभी राज्यों के एकमात्र आधार)

समाज की स्थापना **"अधिग्रहण"** अर्थात जीत द्वारा या **"संस्थाबद्धता"** द्वारा, मसलन, पारस्परिक समझौते या क़रार द्वारा, होती है। इस प्रकार, एक बार जब सम्प्रभु सत्ता क़ायम हो जाती है, तब सभी को इसका आज्ञाकारी होना आवश्यक हो जाता है। इससे विद्रोह करने वाले किसी भी व्यक्ति को ख़त्म कर दिया जाना चाहिए। उसे तबाह कर दिया जाना चाहिए।

(सम्प्रभु शासक की असीमित सत्ता!)

वह[1] विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के सारे के सारे अधिकार सम्प्रभु शासक के हवाले कर देता है। वह लिखता है, "प्रभावी होने के लिए सम्प्रभु सत्ता को निश्चय ही असीमित, अहस्तान्तरणीय और अविभाज्य होना चाहिए। बेशक असीमित सत्ता गड़बड़ियों को जन्म दे सकती है, लेकिन सबसे इसका बुरा से बुरा रूप भी उतना बुरा नहीं है जितना कि गृहयुद्ध या अराजकता।

पृष्ठ 174 (109)

उसके विचार से राजशाही, कुलीनतन्त्र, या जनतन्त्र में सत्ता को लेकर कोई

1. हॉब्स

अन्तर नहीं है। सामान्य शान्ति और सुरक्षा की दिशा में इनकी उपलब्धियाँ इनके द्वारा शासित जनता या लोगों की आज्ञाकारिता पर निर्भर करती हैं। फिर भी वह 'राजशाही' को ही अधिक पसन्द करता है। उसके विचार से 'सीमित राजशाही' ही सर्वोत्तम है। लेकिन वह इस बात पर भी ज़ोर देता है कि सम्प्रभु शासक को निश्चय ही धार्मिक के साथ-साथ नागरिक मामलों का भी नियमन करना चाहिए, और यह तजबीज भी करनी चाहिए कि कौन से सिद्धान्त शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

इस प्रकार, वह सम्प्रभुता के एक स्पष्ट और वैध सिद्धान्त की हिमायत तो करता है, लेकिन इसके साथ ही वह राजा या सम्प्रभु शासक पैदा करने के लिए सामाजिक समझौते की कल्पना को भी बरक़रार रखता है।

स्पिनोज़ा[1] : (1677)

(मनुष्य की असमाजिकता)

अपनी कृति *ट्रैक्टेटस पॉलिटिकस* (1677), में वह मानता है कि शुरू-शुरू में मनुष्यों का सभी चीज़ों पर समान अधिकार था, इसलिए प्राकृतिक अवस्था **युद्ध की अवस्था** था। मनुष्यों ने अपने विवेक से प्रेरित होकर अपनी शक्तियों को नागरिक सरकार की स्थापना के लिए संयुक्त किया। चूँकि मनुष्यों के पास निरंकुश सत्ता थी, इसलिए इस प्रकार स्थापित **सम्प्रभु सत्ता** भी निरंकुश सत्ता ही थी। उसके विचार से 'अधिकार' और 'सत्ता' एक समान है। अत: सत्ता से लैस होकर सम्प्रभु शासक को सारे के सारे अधिकार स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार, वह 'निरंकुशतावाद' का समर्थन करता है।

पुफ़ेन्डोर[2] :

(*लॉ ऑफ़ नेचर एण्ड नेशंस* **1672**)[3]

उसके विचार से, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जो परिवार और शान्तिमय जीवन की ओर स्वाभाविक रुझान रखता है।

---

1. स्पिनोज़ा (1632-1677) : देकार्त से प्रभावित डच दार्शनिक। उसने अपनी पुस्तक *एथिक्स* (1677) में यह विचार प्रकट किया कि मानव-जीवन ईश्वर (या प्रकृति) से ओतप्रोत है। अपारम्परिक विचारों के कारण अपने मूल सम्प्रदाय से 1956 में निष्कासित।
2. सैमुअल बैरन फान पुफ़ेन्डोर (1632-1684) : जर्मन विधिवेत्ता और इतिहासकार। उसका विचार था कि राज्य के क़ानून प्राकृतिक क़ानून में ही शामिल हैं।
3. सम्भवत: पुफ़ेन्डोर की पुस्तक, *दि ज्यूरे नेचुरी एट जेण्टियम* का अंग्रेज़ी शीर्षक

एक आदमी द्वारा दूसरे आदमी को पहुँचायी जा सकने वाली क्षतियों का अनुभव ही नागरिक सरकार की प्रेरणा देता है, जो इस प्रकार गठित होती है : 1. एक कामनवेल्थ गठित करने हेतु कुछ लोगों के बीच एक सर्वसम्मत आपसी क़रार द्वारा, 2. बहुमत के इस प्रस्ताव द्वारा कि अमुक शासक को सत्ता पर आसीन किया जाये, 3. सरकार और जनता के बीच इस क़रार द्वारा कि सरकार शासन करे और जनता विधिसम्मत आदेशों का पालन करे।

पृष्ठ 175 (110)

लॉक :

(नागरिक सरकार के दो सिद्धान्त-1690)

"किसी भी मनुष्य को शासन करने का प्राकृतिक अधिकार नहीं होता।"

वह प्राकृतिक अवस्था का – यानी शासनाधिकार और प्रभुत्व के मामले में स्वतन्त्रता और समानता वाली एक ऐसी अवस्था का चित्रण करता है जो सिर्फ़ प्राकृतिक क़ानून या विवेक के ही अधीन रहे, जो लोगों को एक-दूसरे के जीवन, स्वास्थ्य, आज़ादी और स्वामित्व अधिकारों के मामले में नुक़सान पहुँचाने से रोकते हैं। निषेध या क्षतिपूर्ति के रूप में सज़ा देने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में होता है।

प्राकृतिक अवस्था!

"प्राकृतिक अवस्था वास्तव में वह है जिसमें लोग आपस में फ़ैसला करने के अधिकार के साथ, बिना किसी एक सर्वमान्य शासक के, विवेक के अनुसार एक साथ रहते हैं।"

निजी सम्पत्ति!

"प्रत्येक व्यक्ति का यह प्राकृतिक अधिकार है कि वह अपने पास सम्पत्ति रखे और प्राकृतिक सामग्री पर अपने निजी श्रम से प्राप्त उत्पाद पर भी अपना अधिकार रखे। एक आदमी जितनी अधिक भूमि को जोत, बो, सुधार सकता है और खेती-बाड़ी के काम में ला सकता है तथा उससे प्राप्त जितनी पैदावार इस्तेमाल में ला सकता है, वह सब उसी की सम्पत्ति हैं।

सम्पत्ति और नागरिक समाज!

उसके अनुसार **"सम्पत्ति" "नागरिक समाज"** की पूर्ववर्ती है।

नागरिक समाज की उत्पत्ति!

लेकिन ऐसा लगता है कि लोगों को किसी प्रकार का ख़तरा और भय रहता था, और इसीलिए, उन्होंने **नागरिक स्वतन्त्रता** के पक्ष में, अपनी **प्राकृतिक स्वतन्त्रता** को तिलांजलि दे दी। संक्षेप में, **आवश्यकता, सहूलियत और रुझान ने लोगों को समाज में बँधने के लिए विवश किया।**

नागरिक समाज की परिभाषा!

जो लोग एक निकाय में गठित हो चुके होते हैं, और जिनके पास एक ऐसा सर्वमान्य स्थापित क़ानून और न्यायाधिकरण होता है जिसमें अपील की जा सके तथा जिसे आपसी विवादों को निपटाने एवं दोषी को दण्डित करने का अधिकार हो, वे एक नागरिक समाज में होते हैं।

सहमति :

दूसरों पर विजय सरकार का 'स्रोत' नहीं है। सहमति ही किसी भी वैध सरकार का स्रोत थी, और हो सकती है।

क़ानून-निर्मात्री सभा लोगों के जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के ऊपर पूर्णत: मनमाना अधिकार नहीं रखती, क्योंकि इसके पास सिर्फ़ वही संयुक्त अधिकार होता है जो समाज के गठन से पहले अलग-अलग सदस्यों के पास हुआ करता था, और जिसे उन्होंने अपने विशेष और सीमित उद्देश्यों के लिए सौंप दिया है।

क़ानून :

"क़ानून का उद्देश्य स्वतन्त्रता को ख़त्म करना या रोकना नहीं, बल्कि उसे सुरक्षित करना और विस्तृत करना है।"

विधायिका :

विधायिका कुछ निश्चित उद्देश्यों के लिए सिर्फ़ एक न्यासधारी सत्ताभर है, जो यदि इसमें न्यस्त किये गये विश्वास को खण्डित करे, तो जनता द्वारा भंग या परिवर्तित की जा सकती है।

जनता की सर्वोपरि सम्प्रभुता!

इस प्रकार सर्वोच्च सत्ता या सर्वोपरि सम्प्रभुता हमेशा जन-समुदाय के पास ही रहती है, परन्तु वह इसका इस्तेमाल तब तक नहीं करता, जब तक कि सरकार भंग नहीं हो जाती।

विधायिका और कार्यपालिका

निजी हितों पर सामान्य हित की बलि रोकने के लिए, यह ज़रूरी है कि **विधायिका** और **कार्यपालिका** की सत्ताएँ अलग-अलग हाथों में रहें, और कार्यपालिका विधायिका के मातहत रहे।

जहाँ ये दोनों सत्ताएँ एक ही निरंकुश राजा में निहित होती हैं, वहाँ कोई नागरिक सरकार नहीं होती, क्योंकि राजा और उसकी जनता के बीच कोई सर्वमान्य न्यायिक सत्ता नहीं होती।

स्वतन्त्र समाजों में राज्यों के भिन्न-भिन्न रूप हैं, जनतन्त्र[1], अल्पतन्त्र, या निर्वाचित राजतन्त्र तथा मिश्रित रूपों वाली व्यवस्थाएँ।

'क्रान्ति का अधिकार'!

"जब सरकार समझौते के प्रति अपना दायित्व पूरा करने – यानी व्यक्तिगत अधिकारों का संरक्षण करने – में विफल हो जाती है तो क्रान्ति न्यायसंगत बन जाती है।

रूसो [1]

रूसो[2] :

समानता

कोई भी आदमी इतना अधिक धनी नहीं होना चाहिए कि वह दूसरे को ख़रीद सके, और न ही कोई आदमी इतना अधिक ग़रीब होना चाहिए कि वह अपनेआप को बेचने के लिए मजबूर हो जाये। भारी असमानताएँ निरंकुशता के लिए रास्ता तैयार करती हैं।

सम्पत्ति और नागरिक समाज :

जिस पहले आदमी ने ज़मीन के एक टुकड़े को घेरकर यह कहने को सोचा होगा कि 'यह मेरा है', तथा जिसे अपनी बात पर विश्वास करने वाले सीधे-सादे लोग मिल गये होंगे, वही नागरिक समाज का असली संस्थापक था।

अगर किसी ने इस धोखेबाज़ी का पर्दाफ़ाश कर दिया होता, और यह एलान कर दिया होता कि **यह धरती किसी की सम्पत्ति नहीं है और कि इसके फल सबके हैं,** तब मानवजाति को इतने युद्ध, अपराध और सन्त्रास नहीं झेलने पड़े होते।

---

1. और 2. मूल में ऐसे ही नोट किये हुए; देखें नोटबुक पृष्ठ सं. *118 (91)* का सन्दर्भ 1

पृष्ठ 117 (112)

"जो आदमी ध्यान करता है वह दुराचारी प्राणी है।"[1]

नागरिक क़ानून :

कमज़ोरों के उत्पीड़न और सबकी असुरक्षा की ओर इशारा कर धनिकों ने बड़ी चालाकी से न्याय और शान्ति के नियम निरूपित किये, ताकि उनके द्वारा सबके स्वामित्वों की गारण्टी रहे, और क़ानूनों को लागू करने के लिए एक सर्वोच्च शासक की स्थापना की।

निश्चय ही समाज और क़ानूनों की उत्पत्ति इसी भाँति हुई होगी, जिसने ग़रीबों को नयी बेड़ियाँ पहना दीं और धनिकों को नयी ताक़त प्रदान कर दी, प्राकृतिक स्वतन्त्रता को अन्तिम रूप से ख़त्म कर दिया, और थोड़े से महत्त्वाकांक्षी लोगों के लाभ के लिए, हमेशा-हमेशा के लिए सम्पत्ति और असमानता का क़ानून निर्धारित कर दिया, **एक चालाकी भरी लूट को एक अटल अधिकार में तब्दील कर दिया**, और इस प्रकार आइन्दा के लिए सारी मानवजाति को श्रम, दासता, और दुर्गति का शिकार बना दिया।[2]

पुनश्चः असमानताएँ

लेकिन यह बात पूरी तरह प्राकृतिक क़ानून के ख़िलाफ़ है कि मुट्ठीभर लोग तो बेशुमार दौलत गटकते रहें, जबकि विशाल भूखी आबादी जीवन की ज़रूरी चीज़ों के लिए भी तरसती रहे।[3]

पृष्ठ 118 (113)

उसकी रचनाओं का हश्र

एमिली और *सोशल काण्ट्रैक्ट* दोनों ही 1762 में प्रकाशित हुईं, पहली को पेरिस में जलाया गया, रूसो बमुश्किल गिरफ़्तार होते-होते बचा, फिर दोनों किताबों को सार्वजनिक तौर पर, जेनोआ में, उसकी जन्मस्थली में, जलाया गया, जहाँ उसे कहीं अधिक शोहरत मिलने की उम्मीद थी।

---

1. सम्भवतः रूसो का उद्धरण
2. रूसो, *सोशल कॉण्ट्रैक्ट*
3. वही

राजा की सम्प्रभुता से जनता की सम्प्रभुता की ओर

रूसो एकता और केन्द्रीकरण की फ़्रांसीसी धारणाओं को बनाये रखता है; जबकि सत्रहवीं सदी में राज्य (या सम्प्रभुता) को राजशाही के साथ गड्डमड्ड कर दिया गया था। 18वीं सदी में रूसो के प्रभाव से यह जनता में निहित समझी जाने लगी।

अनुबन्ध

अनुबन्ध के जरिये लोग नागरिक स्वतन्त्रता और नैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्राकृतिक स्वतन्त्रता का प्रतिदान करते हैं।[1]

प्रथम स्वामित्व का अधिकार

सम्पत्ति का अधिकार :

इसका औचित्य इन दशाओं पर निर्भर करता है :

(अ) कि ज़मीन गैर-आबाद है, (ब) कि एक आदमी सिर्फ़ उतने ही रकबे पर क़ब्ज़ा करता है जितना कि उसके गुज़ारे के लिए ज़रूरी हो; (स) कि वह इस पर महज खोखली औपचारिकता के जरिये नहीं, बल्कि मेहनत और खेती-बाड़ी करने के नाते दख़ल रखता है।[2]

पृष्ठ 114 (114)

धर्म :

रूसो धर्म को भी सम्प्रभु शासक की निरंकुशता के अधीन रखता है।

भूमिका[3] :

मैं इस बात की जाँच करना चाहता हूँ कि क्या, आज लोग जैसे हैं और जैसे क़ानून बनाये जा सकते हैं, उनको मद्देनज़र रखते हुए, यह सम्भव है कि नागरिक मामलों के प्रशासन हेतु कुछ न्यायसंगत और निश्चित नियम स्थापित किये जायें...।

---

1. और 2. *सोशल कॉण्ट्रैक्ट* के आधार पर
3. रूसो, *सोशल काण्ट्रैक्ट* की भूमिका से

...मुझसे पूछा जा सकता है कि क्या मैं कोई राजा या विधि निर्माता हूँ जो मैं राजनीति पर लिखता हूँ। मेरा उत्तर है कि मैं नहीं हूँ। अगर मैं वैसा होता, तो यह कहने में समय नष्ट नहीं करता कि क्या किया जाना चाहिए, बल्कि उसे कर डालता या ख़ामोश रहता।

———○———

मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र होता है लेकिन हर जगह बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है।[1]

———○———

ग़ुलामी के जुवे को बलपूर्वक उतार फेंकना!

मैं कहना चाहूँगा कि जब तक लोग आज्ञापालन के लिए मजबूर किये जाते रहें और वे आज्ञापालन करते रहें, अच्छा है; लेकिन वे जितनी जल्दी इस जुवे को उतार फेंक सकें और उतार फेंकते हैं, तो वह और भी अच्छा है; कारण कि, यदि लोग अपनी आज़ादी फिर उसी अधिकार (अर्थात ताक़त) से वापस लेते हैं जिस अधिकार से यह उनसे छीनी गयी होती है, तो या तो उनका ऐसा करना न्यायसंगत है, या उनसे इसे छीन लिये जाने का कोई औचित्य नहीं था।[2]

पृष्ठ 180 (115)

ताक़त :

"सत्ता, जो हिंसा के द्वारा हासिल की जाती है, महज एक हड़पी गयी सत्ता होती है, और सिर्फ़ तब तक ही बनी रहती है जब तक उसकी कमान सँभालने वाले की ताक़त उसको मानने वालों की ताक़त पर हावी रहती है, और जब इसको मानने वालों की ताक़त सबसे अधिक हो जाती है और वे उसके जुवे को उतार फेंकते हैं, तो ऐसा वे उतने ही अधिकार और न्याय के साथ करते हैं जिसके साथ उन पर सत्ता थोप रखी गयी थी। वही (ताक़त का) क़ानून जो सत्ता का अधिकार देता है, बाद में उसे छीन भी लेता है; यह सबसे ताक़तवर का क़ानून है।"

दिदेरो – *इंसाइक्लोपीडिया*[3]

"सत्ता"

———○———

1. रूसो की प्रसिद्ध उक्ति, *सोशल कॉण्ट्रैक्ट* से
2. वही
3. देनी दिदेरो (1713–1784) : प्रबोधन काल का फ़्रांसीसी दार्शनिक। विश्वकोष (इन्साइक्लोपीडिया) का प्रमुख सम्पादक। फ़्रांसीसी क्रान्ति की वैचारिक ज़मीन तैयार करने में रूसो और वाल्तेयर के साथ उसकी मुख्य भूमिका थी।

दास अपनी बेड़ियों में सब कुछ खो देते हैं, यहाँ तक कि उनसे निजात पाने की इच्छा भी![1]

सबसे ताक़तवर का अधिकार

"सत्ताधिकारियों का आज्ञापालन करो। यदि इसका मतलब ताक़त के आगे झुकना है, तो यह आदेश अच्छा तो है लेकिन ग़ैर-ज़रूरी है; मेरा कहना है कि इसका कभी उल्लंघन नहीं होगा।"[2]

दासता का अधिकार

"क्या तब पराधीन जन अपनी अस्मिताओं का इस शर्त पर त्याग कर दें कि उनकी सम्पत्ति भी ले ली जाये? मैं समझ नहीं पाता कि उनके लिए क्या शेष रह जायेगा?

"कहा जा सकता है कि निरंकुश शासक अपने शासितों के लिए नागरिक शान्ति सुनिश्चित करता है। हो सकता है, ऐसी ही बात हो; लेकिन इससे उनको मिलता क्या है, जबकि युद्ध, जो उसकी महत्त्वाकांक्षाओं के चलते उन पर थोप दिये जाते हैं, तथा उसकी अतोषणीय लोलुपता और उसके प्रशासन के सन्ताप, उनके अपने बैर-विरोध से कहीं अधिक ही उन्हें तंग करते हैं? [पृष्ठ 181 (116) पर जारी]

"यह कहना, कि एक आदमी अपनेआप को बिना किसी एवज में यों ही सौंप देता है, एकदम वाहियात और अकल्पनीय बात है।"

इस तरह की बात, चाहे एक आदमी दूसरे आदमी को सम्बोधित करके कहे या राष्ट्र को सम्बोधित करके कहे, हमेशा मूर्खतापूर्ण ही कही जायेगी :

> "मैं पूरी तरह से तुम्हारी क़ीमत पर और पूरी तरह से अपने लाभ के लिए तुमसे एक समझौता करता हूँ, और मैं इसे तब तक लागू किये रखूँगा, जब तक मैं चाहूँगा, और तुम भी इसे तब तक लागू किये रखोगे जब तक मैं चाहूँगा।"[3]

समानता :

यदि तुम राज्य को स्थायित्व प्रदान करना चाहते हो, तो इन दो चरम अवस्थाओं को, जहाँ तक सम्भव हो सके, क़रीब लाओ : न तो धनिकों को बरदाश्त करो, न ही भिखारियों को। ये दोनों ही स्थितियाँ, जो स्वाभाविक तौर पर एक-दूसरे से

1. रूसो, *सोशल कॉण्ट्रैक्ट*
2. वही 3. वही

अविभाज्य हैं, सामान्य हित के लिए समान रूप से सांघातिक हैं : एक वर्ग से निरंकुश पैदा होते हैं, तो दूसरे वर्ग से, निरंकुशता के समर्थक : हमेशा इन्हीं दोनों के बीच सार्वजनिक स्वतन्त्रता का व्यापार चलता रहता है : एक ख़रीदता है, दूसरा बेचता है।[1]

पृष्ठ 182 (117)

"ओलावृष्टि कुछेक क्षेत्रों को बरबाद कर डालती है, पर इससे अकाल बिरले ही पड़ता है। दंगे-फसाद और गृहयुद्ध सदारत करने वाले लोगों को काफ़ी चौंका देते हैं; फिर भी वे राष्ट्रों के लिए कोई वास्तविक संकट नहीं पैदा करते, जब तक इस बात को लेकर विवाद चलता है कि कौन उन पर निरंकुश शासन करे। उनकी वास्तविक समृद्धि या विपदाएँ तो उनकी स्थायी स्थितियों से पैदा होती हैं। जब सब कुछ जुवे तले कुचल कर रख दिया जाता है, तभी सब कुछ नष्ट हो जाता है; तभी ये शासक, इत्मीनान से सब कुछ नष्ट करने के बाद, एक मुर्दा ख़ामोशी पैदा कर देते हैं, जिसे वे शान्ति कहते हैं।"

पृष्ठ 176[2]

पृष्ठ 183 (118)

फ़्रांसीसी क्रान्ति[3] :

अमेरिका : अमेरिकी स्वतन्त्रता-संग्राम का फ़्रांस की स्थिति पर भारी प्रभाव पड़ा। (1776)

टैक्स :

'राजा' के नाम पर काम करने वाले कोर्ट या मन्त्रिमण्डल ने मनमाने ढंग से टैक्सों के फ़रमान तैयार किये और उसे पार्लियामेण्ट[4] में इन्दराज किये जाने के लिए भेज दिया, क्योंकि जब तक पार्लियामेण्ट उनका इन्दराज नहीं कर लेती, तब तक वे लागू नहीं हो सकते थे।

कोर्ट का दावा था कि पार्लियामेण्ट की सत्ता को एतराज़ का कारण बताने के अलावा और कोई अधिकार न था, जबकि वह (यानी कोर्ट या मन्त्रिमण्डल) अपने पास यह फ़ैसला करने का अधिकार सुरक्षित रखे हुए था कि कारण वाजिब हैं या ग़ैर-वाजिब, और कि तदनुसार ही वह अपनी मर्ज़ी से चाहे तो

---

1. वही 2. वही
3. फ़्रांसीसी क्रान्ति के बारे में भगतसिंह के इन नोट्स के स्रोत का पता नहीं चलता।
4. पार्लियामेण्ट : वास्तव में यह कोई निर्वाचित प्रतिनिधियों का निकाय नहीं, बल्कि राजा के सलाहकारों का एक निकाय या इजलास हुआ करती थी।

फ़रमान वापस ले ले या बाक़ायदा उसे आधिकारिक तौर पर इन्दराज किये जाने का **आदेश** जारी कर दे।

दूसरी तरफ़, पार्लियामेण्ट का दावा था कि उसके पास इन्कार कर देने का अधिकार था।

मन्त्री **एम. कैलोन**[1] को मुद्रा चाहिए थी। वह टैक्सों के मामले में पार्लियामेण्ट के कड़े रुख से परिचित था। उसने **"असेम्बली ऑफ़ नोटेबल्स"**[2] आहूत की (1787)।

यह **स्टेट्स-जनरल** नहीं थी, जोकि चुनी जाती थी, बल्कि इसके सभी सदस्य राजा द्वारा मनोनीत किये गये थे और इसमें कुल **141 सदस्य** थे। तब भी वह बहुमत का समर्थन हासिल न कर सका। तब उसने इसे **7 कमेटियों** में विभक्त कर दिया। प्रत्येक कमेटी में **20 सदस्य** थे। हरेक सवाल कमेटियों में बहुमत से और असेम्बली में कमेटियों के बहुमत से तय किया जाता था। उसने किन्हीं चार या प्रत्येक कमेटी में 11 ऐसे सदस्य रखने की कोशिश की, जिन पर वह विश्वास कर सकता था। लेकिन उसकी ये युक्तियाँ भी असफल रहीं।

पृष्ठ 184 (119)

एम. द लफ़ायत[4] एक दूसरी कमेटी का उपाध्यक्ष था। उसने एम. कैलोन पर

1. चार्ल्स अलेक्सान्द्र द कैलोन (1734-1802), फ़्रांसीसी राजनीतिज्ञ, जो नवम्बर 1783 में वित्तमन्त्री बना।

2. असेम्बली ऑफ़ नोटेबल्स : राज्य का ख़ज़ाना ख़ाली होने के कारण, वित्तमन्त्री कैलोन शाही ख़ज़ाने के लिए क़र्ज़ लेना चाहता था, परन्तु पार्लियामेण्ट ने इसे मंजूर नहीं किया। तब उसने राजा को सलाह दी कि आन्तरिक सीमाशुल्कों को ख़त्म कर दिया जाये और नोटेबल्स यानी कुलीनों और पादरियों पर टैक्स लगा दिया जाये। इसके लिए कुलीनों की एक सभा (असेम्बली ऑफ़ नोटेबल्स) जनवरी 1787 में बुलायी गयी। परन्तु कुलीनों ने अपने विशेषाधिकारों में कटौती किये जाने का विरोध कर दिया।

3. स्टेट्स जनरल: यह कुलीन वर्ग, पादरी वर्ग और बुर्जुआ वर्ग से चुने गये प्रतिनिधियों की एक सभा थी।

4. मार्क्विस द लफ़ायत (1757-1834) : अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम और फ़्रांस की क्रान्ति में भाग लिया। वह फ़्रांसीसी सेना का कर्नल (1779) और बाद में मेजर जनरल (1781) भी रहा; 1790 में उसकी तरक़्क़ी नेशनल गार्ड ऑफ़ पेरिस के कर्नल-जनरल पद पर हो गयी, और उसने क्रान्ति के आरम्भिक दौरों में बहुत सक्रिय भूमिका निभायी। लेकिन 1792 में संवैधानिक राजतन्त्र का समर्थन करने के कारण असेम्बली ने उसे ग़द्दार क़रार कर निर्वासित कर दिया। अपने निर्वासन काल में भी वह अपनी क्रान्तिकारी भूमिका के कारण 5 वर्षों तक प्रशा, जर्मनी, और आस्ट्रिया की जेलों में क़ैद रहा, और नेपोलियन बोनापार्त के हस्तक्षेप से ही जेल से रिहा होकर 1799 में फ़्रांस लौटा।

दो मिलियन लाइवर में शाही ज़मीन बेच डालने का आरोप लगाया। इसे उसने लिखित रूप में भी पेश किया। उसके कुछ ही समय बाद, **एम. कैलोन** को बरख़ास्त कर दिया गया।

तोलूस का आर्कबिशप प्रधानमन्त्री और वित्तमन्त्री नियुक्त हुआ। उसने पार्लियामेण्ट के समक्ष दो प्रकार के टैक्सों का प्रस्ताव रखा – स्टाम्प टैक्स और एक क़िस्म का भूमि टैक्स। इस पर पार्लियामेण्ट ने जवाब दिया,

> कि राष्ट्र अब तक जिस तरह के राजस्व की हिमायत करता आ रहा है, उसके साथ टैक्सों की चर्चा उनमें कटौती करने के अलावा और किसी भी उद्देश्य से नहीं करनी चाहिए,

और उन दोनों ही प्रस्तावों को उठाकर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। तब उन्हें वर्साई बुलाया गया, जहाँ राजा ने 'ए बेड ऑफ़ जस्टिस' नाम से एक विशेष बैठक की और उन प्रस्तावों का इन्दराज कर लिया। पार्लियामेण्ट पेरिस लौट गयी। वहाँ एक अधिवेशन किया। वर्साई में की गयी प्रत्येक कार्यवाही को ग़ैर-क़ानूनी क़रार देते हुए, इन्दराज को रद्द कर देने का आदेश दिया। तब सबको 'लेटर डि कैशेत्स' नामक शाही फ़रमान जारी हुआ और सभी को निर्वासित कर दिया गया। फिर बाद में उन्हें वापस बुला लिया गया। और फिर वे ही फ़रमान उनके सामने रखे गये। [पृष्ठ 185 (120) पर जारी]

फिर स्टेट्स जनरल की बैठक बुलाने का सवाल उठा। राजा ने इसके लिए पार्लियामेण्ट से वादा किया। लेकिन मन्त्रिमण्डल ने विरोध किया, और एक 'फुल कोर्ट' गठित करने का नया प्रस्ताव रखा। लेकिन इसका दो आधारों पर विरोध हुआ : पहला यह कि सैद्धान्तिक आधार पर सरकार को स्वयं को बदलने का कोई अधिकार नहीं था। इस तरह की नज़ीर नुक़सानदेह होगी। दूसरा विरोध स्वरूप को लेकर था, इसके विरोध में यह दलील दी गयी कि यह एक विस्तारित मन्त्रिमण्डल के अलावा और कुछ न होता।

अत: पार्लियामेण्ट ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। तब उसे सशस्त्र सेनाओं से घेर लिया गया। कई दिनों तक यह घेरेबन्दी चलती रही। फिर भी पार्लियामेण्ट अपनी बात पर अड़ी रही। तब उसके कई सदस्यों को गिरफ़्तार करके अलग-अलग जेलों में भेज दिया गया।

इसका विरोध-प्रदर्शन करने के लिए ब्रिटैनी से एक प्रतिनिधिमण्डल आया। उसके सदस्यों को बास्तीय (जेल) भेज दिया गया।

'असेम्बली ऑफ़ नोटेबल्स' फिर बुलायी गयी, और स्टेट्स जनरल की बैठक बुलाने के लिए फिर वही तरीक़ा अपनाने का फ़ैसला किया गया, जो 1614 में अपनाया गया था।

पार्लियामेण्ट ने तय किया कि इसके लिए कुल 1200 सदस्यों में से 600

साधारण जनता से, 300 पादरी वर्ग से, और 300 कुलीन वर्ग से चुने जाने चाहिए।

स्टेट्स जनरल[1] की बैठक **मई 1789** में हुई। कुलीन वर्ग और पादरी वर्ग के प्रतिनिधि दो अलग-अलग कक्षों में बैठे।

पृष्ठ 186 (121)

तीसरी श्रेणी, या साधारण जनता के प्रतिनिधियों ने पादरी वर्ग और कुलीन वर्ग के इस अधिकार को मानने से इन्कार कर दिया और स्वयं को 'राष्ट्र के प्रतिनिधि' घोषित करते हुए, अपने कक्ष में साथ बैठे राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के अलावा, अन्य किसी भी हैसियत के किसी भी सदस्य का कोई भी अधिकार मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार, स्टेट्स जनरल ही 'राष्ट्रीय असेम्बली' हो गयी। उसने दूसरे कक्षों में आमन्त्रण भेजे। पादरी वर्ग के प्रतिनिधियों की अधिकतर संख्या उनके साथ आ गयी। कुलीन वर्ग के 45 सदस्य उनके साथ आ गये, फिर उनकी संख्या बढ़कर 80 और बाद में उससे भी अधिक हो गयी।

पृष्ठ 187 (122)

टेनिस कोर्ट की शपथ

कुलीन वर्ग और पादरी वर्ग के दुष्ट तत्त्व राष्ट्रीय असेम्बली को उखाड़ फेंकना चाहते थे। उन्होंने मन्त्रिमण्डल के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचा। राष्ट्र के प्रतिनिधियों की मौजूदगी में ही कक्ष का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया और उस पर अंगरक्षक सेना का पहरा बैठा दिया गया। तब वे एक टेनिस कोर्ट की ओर बढ़ गये, और वहाँ सबने मिलकर शपथ खायी कि जब तक वे एक संविधान की स्थापना नहीं कर लेते, तब तक अलग नहीं होंगे।

बास्तीय[2]

दूसरे दिन कक्ष का दरवाज़ा उनके लिए फिर खोल दिया गया। लेकिन चुपके-चुपके 30 हज़ार की फ़ौज पेरिस को घेरने के लिए रवाना की जा चुकी थी।

---

1. स्टेट्स जनरल : 175 वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद मई 1789 में इसकी बैठक हुई। ख़ज़ाना ख़ाली हो जाने के कारण मजबूर होकर सम्राट लुई चौदहवें को सामन्तों, चर्च और बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधियों की यह बैठक बुलानी पड़ी। पहली दोनों श्रेणियों के क़रीब 300-300 और तीसरी श्रेणी के इससे दोगुने प्रतिनिधि आये। जल्द ही यह एक नये राजनीतिक संघर्ष का केन्द्र बन गयी। जनता के प्रतिनिधियों ने बढ़कर पहल अपने हाथ में ले ली। फ़्रांसीसी क्रान्ति के तूफ़ानी घटनाक्रम की शुरुआत इसी से हुई।

2. बास्तीय : पेरिस से कुछ दूर स्थित बास्तीय का क़िला, जहाँ राजतन्त्र विरोधी बन्दियों को रखा और यातनाएँ दी जाती थीं, निरंकुशता और दमन का एक घृणित प्रतीक था। 14 जुलाई 1789 को निहत्थी जनता की भीड़ ने इस पर धावा बोलकर क़ब्ज़ा कर लिया।

पेरिस की निहत्थी भीड़ ने बास्तीय पर धावा बोल दिया, बास्तीय का पतन हो गया।

14 जुलाई 1789

वर्साई[1] :

5 अक्टूबर 1789 – हज़ारों स्त्री-पुरुष राष्ट्रीय प्रतीक के प्रति अंगरक्षक सेना द्वारा किये गये गुस्ताख़ी भरे व्यवहार का बदला लेने के लिए वर्साई की ओर कूच कर गये। इसे वर्साई अभियान के नाम से जाना जाता है। उसके बाद घटी घटनाओं के फलस्वरूप राजा को पेरिस लाया गया।

पृष्ठ 188 (123)

प्रत्येक राष्ट्र का विवेक जब जाग जाता है, तो वह अपने सभी उद्देश्यों के लिए पर्याप्त सिद्ध होता है। *(पृष्ठ 112, राइट्स ऑफ़ मैन)*[2]

चूँकि हर काल में सरकार का स्वरूप पूरी तरह से राष्ट्र की इच्छा का ही मामला रहा है, यानी कि अगर उसने राजतन्त्रात्मक स्वरूप चुना, तो ऐसा करने का उसे अधिकार था; और उसके बाद अगर उसने गणतान्त्रिक होना पसन्द किया, तो उसका अधिकार था कि वह गणतान्त्रिक हो, और राजा से यह कहे कि "अब तुम्हारे लिए हमारे पास कोई गुंजाइश नहीं है।"

हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में, मन्त्री अर्ल ऑफ़ सेलबोर्न[3]

पृष्ठ 189 (124)

राजा :

यदि कहीं कोई ऐसा आदमी हो जो अन्य सबसे लोकोत्तर रूप में इतना अधिक बुद्धिमान हो कि राष्ट्र के संचालन के लिए उसकी बुद्धि ज़रूरी हो, तब तो राजशाही का कुछ औचित्य माना जा सकता है, लेकिन जब हम किसी देश पर नज़र दौड़ाते हैं और देखते हैं कि कैसे उसका हरेक हिस्सा अपने मामलों की सूझबूझ रखता

1. वर्साई : पेरिस से कुछ दूर स्थित वर्साई के महलों में राजा और उसके मन्त्रियों का ठिकाना था जहाँ से वे सेना के सहारे क्रान्ति को दबाने की कोशिश कर रहे थे। 5 अक्टूबर 1789 को हज़ारों लोगों ने वर्साई पर धावा बोला और राजा लुई चौदहवें, रानी मैरी अन्तोयनेत तथा उनके अमले को बन्दी बनाकर पेरिस ले आये।
2. टॉमस पेन की रचना *राइट्स ऑफ़ मैन* से (देखें पृष्ठ 14 (11) का सन्दर्भ 3)
3. प्रथम अर्ल ऑफ़ सेल्बोर्न राउण्डेल पामर (1812-1895) या उसका पुत्र द्वितीय अर्ल ऑफ़ सेल्बोर्न विलियम वाल्डग्रेव पामर (1859-1942)। दोनों ही ब्रिटिश संसद के सदस्य थे।

पेन और सेल्बोर्न के उद्धरण मोटे अक्षरों में पेज पर तिरछे लिखे हुए हैं।

है; और जब हम पूरी दुनिया पर नज़र दौड़ाते हैं और देखते हैं कि इसमें रहने वाले सभी मनुष्यों में से राजाओं का ही वंश ऐसा है जो अपनी क्षमता में सबसे नगण्य है, तब हमारी बुद्धि इस सवाल पर चकराने लगती है कि – आख़िर इन लोगों को क्यों बरक़रार रखा गया है? *112*[1]

अपमानकर्ता :

"यदि टैक्सों के जुल्मो-सितम को ख़त्म करने की गरज से राजशाही और हरेक क़िस्म की वंशानुगत सरकार की धोखाधड़ी और छल-कपट से भरी टैक्स-नीति का भण्डाफोड़ करना – असहाय बच्चों की शिक्षा तथा बूढ़ों एवं मुसीबत के मारे लोगों की सहायता की योजनाएँ प्रस्तावित करना – युद्ध के घृणित चलन को ख़त्म करना – सार्वभौमिक शान्ति, सभ्यता और वाणिज्य को प्रोत्साहित करना – और राजनीतिक अन्धविश्वास की बेड़ियों को तोड़ डालना, तथा अधोगति के शिकार मनुष्य को उसकी वाजिब गरिमा तक उठाना – यदि ये सब चीज़ें अपमानजनक हैं, तो मुझे एक अपमानकर्ता का जीवन जीने दो, और मेरी क़ब्र पर "अपमानकर्ता" का नाम खुदवा देना।" *xi*[2]

पृष्ठ 190 (125)

लेकिन जब स्थान नहीं बल्कि सिद्धान्त कर्म को ऊर्जस्वित करने वाला कारण बन जाता है, तो मैं देखता हूँ कि आदमी हर जगह एक ही जैसा हो जाता है।[3]

मृत्यु :

यदि हम अमर होते तो बहुत दुखी होते, इसमें कोई शक नहीं कि मरना कठिन है, पर यह सोचना मधुर लगता है कि हम हमेशा जीते ही नहीं रहेंगे।[4]

(पृष्ठ 45, एमिली)

समाजवादी व्यवस्था :

"प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।"[5]

1. टॉमस पेन, *राइट्स ऑफ़ मैन*
2. ब्रिटिश सरकार द्वारा राजद्रोह का मुक़दमा चलाये जाने पर टॉमस पेन द्वारा दिया गया प्रसिद्ध जवाब
3. और 4. ये दोनों उद्धरण मोटे अक्षरों में पेज पर तिरछे लिखे हुए हैं।
5. शोषण-विहीन, वर्ग-विहीन, राज्य-विहीन साम्यवादी समाज को अभिलक्षित करने वाला मार्क्स-एंगेल्स का प्रसिद्ध सूत्र वाक्य

साहसिकता क्रान्ति में सफलता की जान है।

———o———

दान्तों[1] का कहना था, "कार्रवाई, कार्रवाई। सत्ता पहले, बहस बाद में"।[2]

———o———

पृष्ठ 111 (126)

रूसी प्रयोग[3]

1917–27

1. *फ़ेस एण्ड माइण्ड ऑफ़ बोल्शेविज़्म*
ले. रेने फुलप-मिलर
2. *रशिया*
ले. माकीव-ओ'हारा
3. *रशियन रिवोल्यूशन*
ले. लैंसलॉट लोटन (मैकमिलन)
4. *बोल्शेविस्ट रशिया*
ले. एण्टन कार्लग्रीन
5. *लिटरेचर एण्ड रिवोल्यूशन*
– त्रात्स्की
6. *मार्क्स-लेनिन एण्ड साइंस ऑफ़ रिवोल्यूशन*
ले. एण्टन कार्लग्रीन

"बोल्शेविकों का दर्शन एकदम, आक्रामक रूप से भौतिकवादी है, जिसकी एक मुक्तिदायी विशेषता को उनके कट्टर से कट्टर दुश्मनों तक को स्वीकार करना पड़ेगा, और वह यह कि उनमें किसी भी प्रकार के विभ्रम का पूरी तरह अभाव है।

वे अपने संस्थापक के इस विश्वास पर पूरी दृढ़ता से क़ायम हैं कि "प्रत्येक चीज़ को प्राकृतिक नियमों द्वारा या, एक संकीर्णतर अर्थ में कहें तो, भौतिक क्रिया विज्ञान (फिजिऑलिजी) द्वारा व्याख्यायित किया जा सकता है।"

– पृष्ठ 30

---

1. जॉर्ज जाक दान्तों (1769–1794) : फ़्रांसीसी क्रान्तिकारी। प्रखर वक्ता और फ़्रांसीसी क्रान्ति के सबसे रैडिकल नेताओं में से एक। राजशाही को उखाड़ फेंकने (1792) में उसकी प्रमुख भूमिका थी। वह अस्थायी सरकार का प्रमुख बना और 'नागरिक सुरक्षा की कमेटी' की स्थापना की जो बाद में क्रान्तिकारी आतंक क़ायम करने का साधन बन गयी।
2. ये दोनों वाक्य मोटे अक्षरों में पेज पर तिरछे लिखे हुए हैं।
3. भगतसिंह ने एक ओर कुछ पुस्तकों और उनके लेखकों के नाम दर्ज किये हैं और उनके सामने एक उद्धरण लिखा है जिसका स्रोत स्पष्ट नहीं है।

मार्क्स ने कहा है, "दार्शनिकों ने, इस दुनिया की महज तरह-तरह से व्याख्या की है, दरअसल महत्त्वपूर्ण बात तो इसे बदलने की है।"[1]

पृष्ठ 112 (127)

धर्म और समाजवाद

"धर्म मानवता के लिए अफ़ीम है", मार्क्स का कहना था।[2]

———o———

"सारे के सारे भाववादी चिन्तन अन्ततः एक न एक प्रकार की दैवीयता की अवधारणा पर ही जा पहुँचते हैं, और इसीलिए, मार्क्सवादियों की नज़र में, वे शुद्ध बकवास हैं। यहाँ तक कि हेगेल[3] को भी इस दुनिया पर शासन करने वाली प्रत्येक अच्छी और तर्कसंगत चीज़ का ठोस रूप ईश्वर में ही दिखायी देता था। भाववादी सिद्धान्त प्रत्येक चीज़ को बरबस इसी अभागे पकी दाढ़ी वाले (अर्थात ईश्वर - स.) के कन्धों पर डाल देता है, जो उसके भक्तों की शिक्षाओं के अनुसार, पूर्ण है, और जिसने, आदम के अलावा, पिस्सुओं और वेश्याओं, क़ातिलों और कोढ़ियों, भूख और दुख, प्लेग और वोदका की सृष्टि की है, ताकि उन पापियों को सज़ा दे सके, जिनको उसने ख़ुद ही पैदा किया, और जो ख़ुद उसी की मर्ज़ी से पाप करते हैं...। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, यह सिद्धान्त वाहियात ही सिद्ध होता है। इस दुनिया की सभी परिघटनाओं की एकमात्र वैज्ञानिक व्याख्या तो पूर्ण भौतिकवाद ही देता है।

(पृष्ठ 32, बुख़ारिन)[4]

———o———

उनके (यानी भौतिकवादियों के - स.) अनुसार,
आरम्भ में थी प्रकृति; उससे जीवन; और जीवन से चिन्तन और वे सारी

---

1. मार्क्स की *थीसिस ऑन फ़ायरबाख़* से
2. देखें नोटबुक पृष्ठ 40 (37) का सन्दर्भ 1
3. गेओर्ग विल्हेल्म फ़्रेडरिक हेगेल (1770-183) : जर्मन दार्शनिक जिसने चिन्तन और व्याख्या की द्वन्द्वात्मक पद्धति दी, जिसे मार्क्स ने भौतिकवादी दर्शन के लिए अपनाया - परन्तु उलटकर, क्योंकि इस पद्धति से हेगेल ने चेतना या परम तत्त्व या ईश्वर को प्राथमिक कहा था जबकि इसी का इस्तेमाल कर मार्क्स ने पदार्थ को प्राथमिक और चेतना को उससे व्युत्पन्न सिद्ध किया।
4. देखें नोटबुक पृष्ठ 50 (47) का सन्दर्भ 2

अभिव्यक्तियाँ, जिन्हें हम मानसिक या नैतिक परिघटनाएँ कहते हैं। आत्मा जैसी कोई चीज़ है ही नहीं, और मन:चेतना पदार्थ की, एक ख़ास ढंग से संगठित, एक क्रिया के अलावा और कुछ नहीं है।[1]

(पृष्ठ) 33

पृष्ठ 113 (128)

आम बग़ावत के बारे में मार्क्स का दृष्टिकोण

पहली बात :

"अगर आम बग़ावत को उसके कड़वे अंजाम तक ले जाने (अर्थात – उसके सारे परिणामों को झेलने) का दृढ़संकल्प न हो, तो उसके साथ खेलो मत। आम बग़ावत एक ऐसा समीकरण है जिसके मान बहुत अनिश्चित होते हैं, जो हर दिन बदल सकते हैं। इसमें जिन शक्तियों का विरोध किया जाना होता है उनके पास संगठन, अनुशासन और परम्परागत सत्ता की सारी अनुकूल स्थितियाँ होती हैं।

"अगर आम बग़ावत करने वाले अपने शत्रुओं के ख़िलाफ़ भारी ताक़त नहीं जुटा पायें, तो वे कुचल डाले और नष्ट कर दिये जायेंगे।

दूसरी बात :

"यदि आम बग़ावत एक बार शुरू हो गयी, तो यह आवश्यक है कि पूरे संकल्प के साथ कार्रवाई की जाये और आक्रामक रुख़ अख़्तियार किया जाये। रक्षात्मक रुख़ हरेक सशस्त्र आम बग़ावत की मौत साबित होता है; यह दुश्मन से ज़ोर-आज़माइश करने से पहले ही तबाह हो जाता है। दुश्मन को उसी वक़्त हक्का-बक्का कर डालना आवश्यक है जब उसके सैनिक अभी बिखरे हुए हों, और हर रोज़ नयी-नयी सफलताएँ हासिल करना ज़रूरी है, चाहे वे कितनी भी छोटी क्यों न हों। पहली सफलता से बढ़े मनोबल को बनाये रखना ज़रूरी है। डाँवाँडोल तत्त्वों को आम बग़ावत के पक्ष में लामबन्द करना ज़रूरी है, जो हमेशा ही ताक़तवर के पीछे हो लेते हैं, और हमेशा अधिक सुरक्षित पक्ष तलाशते रहते हैं... एक शब्द में दान्तों – अब तक की जानकारी में क्रान्तिकारी नीति के सबसे बड़े विशारद – के इन शब्दों के अनुसार कार्रवाई करो : साहसिकता... साहसिकता...और एक बार फिर साहसिकता!"[2]

---

1. वही
2. एंगेल्स, *जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति* से। भगतसिंह ने यह उद्धरण मूल रचना से नहीं, बल्कि एक अन्य पुस्तक से लिया था और इसीलिए वह इस भ्रम में रहे कि वह मार्क्स को उद्धृत कर रहे हैं।

नोटबुक में अगली लिखावट पृष्ठ 273 (130) पर है। पृष्ठ 194 से पृष्ठ 272 तक सादे हैं। पीछे भी ऐसे ही सादे पृष्ठ या अन्तराल आये हैं।

हो सकता है कि भगतसिंह ने अपनी 404 पृष्ठों की नोटबुक में अपने अध्ययन के विभिन्न विषयों के अनुसार अलग-अलग हिस्से निर्धारित किये हों। यहाँ ख़त्म हुए हिस्से में पृष्ठ 165 (100) से 193 (128) तक उनके नोट्स राज्य के विज्ञान पर – स्वतन्त्रता और सम्प्रभुता की अवधारणाओं और उनके विकास पर, तथा उनकी निरन्तरता में फ़्रांसीसी क्रान्ति और सोवियत प्रयोग पर केन्द्रित रहे। अगले हिस्से में विभिन्न विविध विषयों पर उनकी टिप्पणियाँ और पुस्तकों के अवतरण दर्ज हैं। लेकिन इन सबमें एक सामान्य सूत्र यह है कि ज़्यादातर तत्कालीन भारतीय स्थितियों और अन्य सम्बन्धित मुद्दों के बारे में हैं। – स.

पृष्ठ 273 (130)

"...क्या तुम चाहते हो कि विधान परिषदों का और विस्तार हो? क्या तुम चाहते हो कि कुछेक भारतीय तुम्हारे प्रतिनिधियों के रूप में हाउस ऑफ़ कामंस में जाकर बैठें? क्या तुम चाहते हो कि भारतीयों की एक बड़ी संख्या सिविल सर्विस में भरती हो जाये? तो आओ देखें कि क्या 50, 100, 200, या 300 (भारतीय – स.) सिविलियन भरती हो जाने से सरकार हमारी हो जायेगी...। भले ही पूरी की पूरी सिविल सर्विस भारतीय हो जाये, लेकिन सिविल सर्वेण्ट्स को तो सिर्फ़ हुक्म की ही तामील करनी होगी – वे कोई निर्देश नहीं दे सकते, कोई नीति नहीं निर्धारित कर सकते। एक मुर्गा विहान नहीं लाता। ब्रिटिश सरकार की सेवा में एक सिविलियन, 100 सिविलियन या 1000 सिविलियन भरती होकर सरकार को भारतीय नहीं बना सकते। जो परम्पराएँ हैं, क़ानून हैं, नीतियाँ हैं, उनकी ताबेदारी तो हर सिविलियन को करनी होगी, चाहे वह काला हो, भूरा हो, गोरा हो, और जब तक ये परम्पराएँ नहीं बदली जातीं, जब तक इनके सिद्धान्तों में रद्दोबदल नहीं किया जाता, और जब तक इनकी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन नहीं किया जाता, तब तक यूरोपियनों के स्थान पर भारतीयों को भरती कर देने मात्र से ही इस देश में अपनी सरकार नहीं क़ायम हो सकती...।

अगर आज सरकार आकर मुझसे कहे कि, "स्वराज लो", तो मैं इस उपहार

के लिए धन्यवाद तो दे दूँगा, पर उस चीज़ को स्वीकार नहीं करूँगा जिसे मैंने स्वयं अपने हाथों से अर्जित नहीं किया है...।

"कोई भी सत्ता जो हमारे विरुद्ध जाती है, उसे हम बरबस अपनी मर्ज़ी के आगे झुकने के लिए मजबूर करेंगे।

"...बुनियादी चीज़ सरकार की गरिमा है। [पृष्ठ 274 (131) पर जारी]

"क्या साम्राज्य के भीतर स्व-शासन का होना वास्तव में एक व्यावहारिक आदर्श हो सकता है? इसका मतलब क्या होगा? इसका मतलब या तो हमारा कोई स्व-शासन नहीं होगा, या इंग्लैण्ड का हमारे ऊपर कोई वास्तविक आधिपत्य नहीं होगा। क्या हम स्व-शासन के मात्र छायाभास से ही सन्तुष्ट हो लेंगे? अगर नहीं तो क्या इंग्लैण्ड हमारे ऊपर अपने मात्र छायाभासी आधिपत्य से ही सन्तुष्ट हो लेगा? दोनों ही दशाओं में, इंग्लैण्ड एक छायाभासी आधिपत्यभर से ही सन्तुष्ट नहीं हो सकता, और हम भी मात्र छायाभासी स्व-शासन से सन्तुष्ट होने से इन्कार करते हैं। और इसीलिए भारत में स्व-शासन और इंग्लैण्ड के उस पर आधिपत्य के बीच ऐसी परिस्थितियों में कोई समझौता सम्भव नहीं है...। यदि स्व-शासन - वास्तविक - हो, तो सिर्फ़ भारत में ही नहीं, बल्कि स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर इंग्लैण्ड की स्थिति क्या होगी? स्व-शासन का मतलब है स्वयं टैक्स लगाने का अधिकार, इसका मतलब है अपना नियन्त्रण, इसका मतलब है अपनी जनता को विदेशी निर्यातों पर संरक्षणात्मक और निषेधात्मक चुंगी लगाने का अधिकार। जिस क्षण हमको ख़ुद टैक्स लगाने का अधिकार मिल जायेगा, उस क्षण हम क्या करेंगे? तब हम औद्योगिक बायकाट के इस कठिन काम में लगने की कोशिश नहीं करेंगे। बल्कि वही करेंगे जो हरेक राष्ट्र करता आया है। आज हम जिन परिस्थितियों में जी रहे हैं, उनके मद्देनज़र हम मैनचेस्टर से आने वाले कपड़े के एक-एक इंच पर, और लीड्स से आने वाली एक-एक ब्लेड या छुरी पर, भारी निषेधात्मक और संरक्षणात्मक चुंगी लगा देंगे। हम अपने देश में एक भी अंग्रेज़ को घुसने की अनुमति नहीं देंगे। आज जिस तरह ब्रिटिश पूँजी भारतीय संसाधनों के विकास के नाम पर यहाँ लगी हुई है, उसकी हम कतई अनुमति नहीं देंगे। हम ब्रिटिश पूँजीपतियों को देश की खनिज सम्पदा की खुदाई करने और उसे अपने देश उठा ले जाने का कोई अधिकार नहीं देंगे। [पृष्ठ 275 (132) पर जारी] हमें विदेशी पूँजी की ज़रूरत होगी। पर इसके लिए हम पूरी दुनिया के खुले बाज़ारों से विदेशी क़र्ज़ लेने की दरख़्वास्त करेंगे, और क़र्ज़ की वापसी के लिए भारतीय सरकार, भारतीय राष्ट्र की साख की गारण्टी देंगे...। और आज जिस तरह से इंग्लैण्ड के वाणिज्यिक हित सिद्ध हो रहे हैं, तब, जनता के स्व-शासन की दशा में, नहीं सिद्ध होंगे, भले ही यह सरकार साम्राज्य के अधीन ही क्यों न

रहे। लेकिन तब साम्राज्य के भीतर इसका क्या मतलब होगा? इसका मतलब यह होगा कि इंग्लैण्ड को चुंगी सम्बन्धी कुछ तरजीह पाने के लिए हमारे साथ कुछ क़रार करने को बाध्य होना पड़ेगा। अगर इंग्लैण्ड भारत के हमारे बाज़ारों में प्रवेश की खुली छूट चाहेगा, तो उसे हमारे द्वारा रखी गयी शर्तों के तहत ही आना होगा, और एक समय के बाद जब हम अपने संसाधनों का विकास कर लेंगे और अपने औद्योगिक जीवन को सुव्यवस्थित कर लेंगे, तब हम सिर्फ़ इंग्लैण्ड के लिए ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के हरेक हिस्से के लिए अपना दरवाज़ा खोल देंगे। और क्या तुम समझते हो कि इंग्लैण्ड जैसा मुट्ठीभर आबादी वाला एक छोटा-सा देश, जो चाहे कितना भी अधिक सम्पन्न क्यों न हो, निष्पक्षता और बराबरी की शर्तों पर, भारत जैसे प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर देश के साथ प्रतियोगिता कर सकेगा, जिसके पास इतनी भारी आबादी है, जो दुनिया के किसी भी भाग में सबसे शालीन और संयमी समझी जाती है?

"अगर साम्राज्य के भीतर सचमुच हमारी अपनी सरकार हो जाये, अगर 30 करोड़ लोगों को वही स्वतन्त्रता मिल जाये जो साम्राज्य को हासिल है, तब तो ब्रिटिश साम्राज्य रह ही नहीं जायेगा। भारतीय साम्राज्य हो जायेगा...।"

बि.च. पाल[1]

न्यू स्पिरिट, 1907 में

पृष्ठ 276 (133)

हिन्दू सभ्यता :

हमें ऐसा लग सकता है कि अपने कई पक्षों की दृष्टि से यह एक ऐसा लगभग अकल्पनीय-सा समुच्चय है जिसमें एक तरफ़ आध्यात्मिक भाववाद है तो दूसरी तरफ़ स्थूल भौतिकवाद भी है, एक तरफ़ इन्द्रियनिग्रह है तो दूसरी तरफ़ इन्द्रियलिप्सा भी है, एक तरफ़ यह मानवीय आत्मा को वैश्विक आत्मा के साथ एकाकार करने का दर्पभरा दावा करती है तथा मनुष्य को दैवीयता में और दैवीयता को मनुष्य में समाहित करती है, तो दूसरी तरफ़ वह हताश कर देने वाला निराशावाद भी है जिसके तहत यह उपदेश देती है कि जीवन अपनेआप में दुखदायी प्रतीति

1. बिपिनचन्द्र पाल (1858-1932) : स्वाधीनता संग्राम के दौरान बंगाल में एवं अन्यत्र स्वदेशी एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आन्दोलनों के प्रमुख नेता; बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिनचन्द्र पाल यानी 'लाल-बाल-पाल' की तिकड़ी ने कांग्रेस में 'गरम दल' का नेतृत्व किया। पाल ने कई अख़बारों जैसे न्यू इण्डिया, वन्देमातरम, स्वराज, द इण्डिपेण्डेण्ट एवं न्यू स्पिरिट का सम्पादन किया।

के अलावा और कुछ नहीं है और कि इससे मुक्ति का एवं सभी बुराइयों के अन्त का, एकमात्र उपाय अस्तित्वहीन हो जाने में ही है।

शिरोल पृष्ठ 26
इण्डियन अनरेस्ट[1]

शिक्षा नीति :

भारत में पश्चिमी शिक्षा को चालू करने का मूल मन्तव्य नौजवान भारतीयों की एक अच्छी-ख़ासी संख्या को प्रशिक्षित करना था, ताकि सरकारी दफ़्तरों में मातहती पदों को अंग्रेज़ी बोलने वाले देशज लोगों से भरा जा सके।

पृष्ठ 34[2]

पृष्ठ 277 (134)

ब्रिटिश नौकरशाही के अत्याचार के ख़िलाफ़ अपनेआप को राजनीतिक आन्दोलन में झोंक देने वाले कितने पश्चिमी शिक्षाप्राप्त भारतीयों ने अपने देशवासियों को उनकी सामाजिक बुराइयों की नृशंसता से मुक्त करने के लिए कभी अँगुली उठायी है? उनमें से कितने ऐसे हैं जो स्वयं इससे मुक्त हैं, या, यदि मुक्त भी हैं, तो क्या उनमें अपने विचार के अनुसार आचरण करने का साहस भी है?

इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू, पृष्ठ 107[3]

पृष्ठ 278 (135)

किसी भारतीय संसद की कल्पना करना कठिन है!

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस लगभग शुरू से ही एक संसद की कार्यशैली अख़्तियार कर चुकी थी। परन्तु भारत में संसद की न तो कोई गुंजाइश थी, और न है कारण

---

1. सर वैलेण्टाइन शिरोल (1858-1929) : एक मशहूर ब्रिटिश पत्रकार, जिन्होंने भारत का 17 बार दौरा किया; उन्होंने भारत सम्बन्धी दो प्रमुख किताबें लिखीं : *इण्डियन अनरेस्ट* और *इण्डिया : ओल्ड एण्ड न्यू*। वह 1890 से 1912 तक लन्दन के 'टाइम्स' अख़बार के विदेश विभाग के प्रभारी थे तथा 1912 से 1914 तक भारतीय लोक सेवा आयोग के सदस्य भी रहे।
2. *इण्डियन अनरेस्ट* से
3. शिरोल की पुस्तक

कि जब तक ब्रिटिश शासन एक वास्तविकता बना रहेगा, तब तक भारतीय सरकार, जैसाकि लॉर्ड मोसली ने साफ़तौर पर कहा है, एक निरंकुश तन्त्र ही हो सकता है – जो भले ही कल्याणकारी हो और भारतीय विचारों के साथ पूरी सहानुभूति रखे, फिर भी एक निरंकुशतन्त्र ही होगा।

154, अनरेस्ट[1]

कांग्रेस का उद्देश्य या लक्ष्य :

"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य भारतीय जनता को सरकार की एक ऐसी प्रणाली उपलब्ध कराना है जो ठीक वैसी ही हो जैसीकि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्व-शासित देश चला रहे हैं, जिसमें वे साम्राज्य के अधिकारों और दायित्वों में बराबर के भागीदार हों।"

मालवीय जी का अध्यक्षीय भाषण 1909[2]
(कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन)

पृष्ठ 276 (136)

स्वतन्त्र भारत का संविधान[1]

और कोई नहीं, बल्कि स्वयं (भारत) माँ ही यह तय करेगी और कर सकती है कि एक बार जब वह अपनी अस्मिता पा लेती है और आज़ाद हो जाती है तो इस क्रान्ति के सम्पन्न हो जाने के बाद वह अपने जीवन के मार्ग-दर्शन के लिए कौन-सा संविधान अपनायेगी...। बिना विस्तार में गये, हम इतना कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्र की इम्पीरियल सरकार का मुखिया राष्ट्रपति बनेगा या राजा, यह इस पर निर्भर करता है कि यह क्रान्ति स्वयं को कैसे आगे बढ़ाती है...। माँ का आज़ाद होना, उसका अखण्ड और एक होना, तथा उसकी इच्छा का सर्वोपरि रहना ज़रूरी है। उसके बाद ही वह अपनी इच्छा ज़ाहिर कर सकती है कि वह अपने सिर पर राजसी मुकुट धारण करे या अपनी पवित्र काया को गणतान्त्रिक परिधान से आवेष्ठित करे।

---

1. शिरोल की *इण्डियन अनरेस्ट;* भगतसिंह ने शिरोल की पुस्तक से विस्तृत नोट्स लिये हैं। ख़ासकर इसमें उद्धृत नेताओं के भाषणों और परचों से। पीछे आया बिपिनचन्द्र पाल का लम्बा उद्धरण और आगे आया मदनमोहन मालवीय का उद्धरण इसी पुस्तक से लिया गया है।
2. पण्डित मदन मोहन मालवीय (1861-1946)

पर मत भूलो हे राजाओ! कि तुम्हारे कृत्यों और अकृत्यों का कड़ा हिसाब लिया जायेगा, और नया जन्म पायी हुई जनता तुम्हारे साथ तुम्हारे ही ढंग से हिसाब चुकता करने में नहीं चूकेगी। हर कोई जो जनता के साथ सक्रिय रूप से विश्वासघात करेगा, अपने पुरखों का तिरस्कार करेगा, और माँ के ख़िलाफ़ जाकर अपने ख़ून को गन्दा करेगा...उसे कुचल कर धूल और गर्द में मिला दिया जायेगा...। क्या तुम्हें हमारे इस कठोर संकल्प पर शुबहा है? अगर है, तो सुन लो नाम धींगरा[1] का और चुप कर जाओ। उस शहीद का नाम लेकर कहते हैं कि अरे भारतीय राजाओ, इन शब्दों पर गम्भीरता से और गहराई से सोचो। जैसी मर्ज़ी हो करो, लेकिन तुम वही पाओगे जो बोओगे। चुन लो कि तुम राष्ट्र के संस्थापकों में पहला बनोगे या राष्ट्र के अत्याचारियों में आख़िरी।

पृष्ठ 196, इण्डियन अनरेस्ट
"तय करो, ओ भारतीय शासको"[2]

अछूत :

राजनीतिक दृष्टिकोण से भारतीय आबादी के लाखों-लाख लोगों का अपने शासकों की आस्था के अनुरूप धर्मान्तरण ऐसी सम्भावनाओं के द्वार खोल देगा कि मैं उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करने की ज़रूरत नहीं महसूस करता।

पृष्ठ 184[3]

---

1. मदनलाल धींगरा : लन्दन में 'इण्डियन होमरूल सोसायटी' तथा 'इण्डिया हाउस ग्रुप' से जुड़े युवा क्रान्तिकारी। इसकी स्थापना क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लाला हरदयाल, सावरकर और धींगरा जैसे देशभक्त युवाओं को साथ लेकर की थी। मदनलाल धींगरा ने बंग-भंग और उसके बाद देश में चले आन्दोलन पर बर्बर दमन के विरोध में सर विलियम कर्जन वार्यली की लन्दन में 1 जुलाई 1909 को गोली मार कर हत्या कर दी। उन्हें बाद में फाँसी दे दी गयी।
2. "तय करो, ओ भारतीय शासको" शीर्षक यह परचा राष्ट्रवादी क्रान्तिकारियों ने भारत के रजवाड़ों/रियासतों के शासकों के नाम भेजा था। एक शासक ने इसे शिरोल को दिया था जिसने इसके दो हिस्से अपनी पुस्तक *इण्डियन अनरेस्ट* में शामिल किये।
3. शिरोल, *इण्डियन अनरेस्ट*, अध्याय 'दलित जातियाँ' से

पृष्ठ 280 (137)

हत्या नॉय यज्ञ[1]

सोने की मुद्रा पाने के लालच में मानव वेषधारी कुछ देशी नरपिशाचों, भारत के कलंक – पुलिस – ने वारीन्द्र घोष[2] आदि उन महान सपूतों को गिरफ़्तार कर लिया, जो अपने निजी हितों का बलिदान करके और बम बनाने जैसे 'यज्ञ' के पवित्र अनुष्ठान को पूरा करने में अपने जीवन को समर्पित करके, अपने देश की आज़ादी के लिए काम कर रहे थे। इन नरपिशाचों में सबसे बड़ा नरपिशाच, आशुतोष विश्वास[3] इन बहादुर सपूतों को फाँसी के तख़्ते पर पहुँचाने का रास्ता साफ़ करने लगा। लेकिन शाबास चारु[4]! (आशुतोष विश्वास को ख़त्म करने वाले) तुम्हारे माँ-बाप सर्वपूज्य हैं। तुमने उनका गौरव बढ़ाया, सर्वोच्च साहस का परिचय दिया, जो इस क्षणभंगुर जीवन की परवाह न करते हुए, उस नरपिशाच की इस दुनिया से छुट्टी कर दी। अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए जब गोरों ने, छल-बल से भारत को भारतीयों (मूल पाठ में मुहम्मडनों – स.) से, उचक्कों की तरह झपट लिया था। और वह कमीना शम्स-उल-आलम[5], जिसने उस आलमगीर पादशा[6] का रास्ता

---

1. हत्या नहीं यज्ञ : यह पूरा अवतरण शिरोल की पुस्तक *इण्डियन अनरेस्ट* (मैकमिलन एण्ड कम्पनी, लन्दन से 1910 में प्रकाशित) के टिप्पणियों वाले हिस्से से लिया गया है। इसमें "द रिमूवल ऑफ़ इनफ़ार्मर्स" (भेदियों का सफाया) शीर्षक के अन्तर्गत लिखा गया है कि "शम्स-उल-आलम की हत्या के तुरन्त बाद निम्नलिखित अपील" क्रान्तिकारियों द्वारा कलकत्ते में जारी की गयी :

'हत्या नॉय यज्ञ' (हत्या नहीं यज्ञ)

नक़द इनाम : एक यूरोपीय या दो भेदियों का सिर काटने पर

50वाँ अंक, कलकत्ता, रविवार चैत्र अष्टमी 1316)

2. वारीन्द्र घोष : अरविन्दो घोष के छोटे भाई और क्रान्तिकारियों के मानिकतला ग्रुप के एक नेता, जो अलीपुर षड्यन्त्र केस (मई 1909) के अभियुक्त थे; वे 'युगान्तर' नामक क्रान्तिकारी पत्र भी प्रकाशित करते थे।

3. आशुतोष विश्वास : क्रान्तिकारियों को सज़ा दिलाने के लिए तमाम ग़लत तरीक़े अपनाने वाला अंग्रेज़परस्त एक सरकारी वकील जिसे अलीपुर पुलिस कोर्ट से बाहर क्रान्तिकारी चारु चन्द्र गुहा ने गोली मारकर मौत के घाट उतार दिया।

4. चारुचन्द्र गुहा : एक वीर तरुण जिसने दायें हाथ की हथेली जन्म से ही नहीं होने के बावजूद देशद्रोही सरकारी वकील आशुतोष विश्वास को गोली मार दी। उसे 10 मार्च 1909 को अलीपुर सेण्ट्रल जेल में फाँसी दे दी गयी।

5. शम्स-उल-आलम : ब्रिटिश पुलिस का सी.आई.डी. इंस्पेक्टर जो क्रान्तिकारियों की सुरागरशी करता था। उसे वीरेन्द्रनाथ दत्त ने 24 जनवरी, 1910 को गोली से उड़ा दिया; इस नौजवान क्रान्तिकारी को 21 फ़रवरी 1910 को फाँसी दे दी गयी।

6. आलमगीर पादशा : मुगल बादशाह औरगंजेब

अपनाया, जिसने सोने की मुद्रा पाने की लालच में पूर्वजों के नाम को कलंकित किया – आज उस दुराचारी को तुमने भारत की इस पवित्र धरती से मिटा दिया है। नरेन गोसाईं[1] से लेकर तलित चक्रवर्ती तक सभी उस कमीने जालसाज़ शम्स-उल-आलम की जालसाज़ियों और यातना के फलस्वरूप सरकारी गवाह बन गये थे। अगर तुमने नरपिशाचों के इस मददगार की छुट्टी नहीं कर दी होती, तो क्या भारत के लिए कोई उम्मीद बची रह जाती?

कई लोग यह चीख़-पुकार मचा रहे हैं कि विद्रोह करना महापाप है। लेकिन विद्रोह है क्या? क्या भारत में कोई ऐसी चीज़ है, जिसके ख़िलाफ़ विद्रोह किया जाए? क्या एक फिरंगी को भारत का राजा माना जा सकता है, जिसके स्पर्शमात्र से, जिसकी महज परछाईं पड़ जाने से ही हिन्दू अपना शुद्धिकरण करने के लिए बाध्य हो जाते हैं?

ये महज पश्चिमी लुटेरे हैं जो भारत को लूट रहे हैं...। उन्हें निकाल बाहर करो, हे भारत के सपूतो! वे तुम्हें जहाँ कहीं भी मिलें, उन पर और उनके साथी जासूसों और ख़ुफ़िया एजेण्टों पर कोई रहम मत करो। पिछले वर्ष, अकेले बंगाल में ही 19 लाख लोग बुखार, चेचक, हैजा, प्लेग और दूसरी बीमारियों से मर गये। तुम अपनेआप को भाग्यशाली समझो कि तुम बच गये, लेकिन याद रखो कि कल तुम भी प्लेग और हैजा की चपेट में आ सकते हो। क्या तुम्हारे लिए बेहतर नहीं होगा कि तुम बहादुरों की मौत मरो?

जब ईश्वर का यही विधान है, तो ज़रा सोचो, कि क्या इस शुभ बेला में भारत के हरेक सपूत का कर्त्तव्य नहीं है कि वह इन गोरे दुश्मनों का संहार करे? [पृष्ठ 282 (138) पर जारी][2] अपनेआप को प्लेग और हैजा से मत मरने दो, ऐसा करके भारत माँ की पवित्र धरती को दूषित मत करो। पुण्य और पाप में फ़र्क़ करने के लिए हमारे शास्त्र हमारे मार्गदर्शक हैं। हमारे शास्त्र बार-बार हमें बताते हैं कि इन गोरे कमीनों और उनके सहयोगियों एवं सहअपराधियों को क़त्ल करना अश्वमेध यज्ञ के बराबर है। आओ, सब के सब आओ। आओ हम सब मिलकर इस बलिवेदी पर अपनी यज्ञाहुति अर्पित करें, और प्रार्थना करें कि इस यज्ञ में सारे गोरे साँप इसकी ज्वाला में वैसे ही भस्म हो जायें जैसे जनमेजय यज्ञ में साँप नष्ट हो गये थे। याद रखो, यह हत्या नहीं, यज्ञ है।

(पृष्ठ 342, नोट्स) आइ.यू.[3]

---

1. पूरा नाम नरेन्द्रनाथ गोसाई : मुज़फ़्फ़रपुर बम काण्ड में (जिसके लिए खुदीराम बोस को फाँसी दे दी गयी) ब्रिटिश सरकार का मुख़बिर, जिसे 31 अगस्त 1908 को कनाई लाल दत्त और सत्येन्द्र नाथ दत्त ने मार डाला।

2. नोटबुक पृष्ठ संख्या 281 नहीं है, पर पृष्ठ (137) के बाद पृष्ठ (138) का क्रम ठीक है।

3. शिरोल की पुस्तक *इण्डियन अनरेस्ट*

"भारत में कुल मतदाता 62,00,000 अर्थात भारत की कुल आबादी का 2¾ प्रतिशत हैं जिसमें वे क्षेत्र शामिल नहीं, जिन पर 1919 का क़ानून नहीं लागू होता था।"

194

आइ.ओ.एन.[1]

पृष्ठ 283 (140)[2]

इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू : शिरोल वी.

"ब्रिटिश लोग यह जान लें कि यदि वे न्याय नहीं करना चाहते, तो यह प्रत्येक भारतीय का परम कर्त्तव्य बन जायेगा कि इस साम्राज्य को नष्ट कर दे।"

महात्माजी[3] *(नागपुर कांग्रेस)*

देहात और शहर का सवाल

कुछ सरकारी बुद्धिमत्ता इस रूप में दिखायी गयी थी कि भौगोलिक स्थिति पर बिना ध्यान दिये, दूर-दराज के शहरों को एक निर्वाचन क्षेत्र में रख दिया गया था, ताकि ऐसे शहरी व्यक्तियों को, जोकि (सरकार के) न चाहते हुए भी अधिक विकसित राजनीतिक दृष्टिकोण पा चुके थे, उन देहाती निर्वाचन क्षेत्रों से उम्मीदवार बनने से रोका जा सके, जिनमें यदि उपर्युक्त व्यवस्था न की गयी होती तो कई एक छोटे शहर भी स्वाभाविक तौर पर शामिल हो जाते। यह एक आख़िरी कोशिश थी जो इस विश्वास पर आधारित थी कि पंजाब की आबादी को बकरियों और भेड़ों के रूप में विभाजित किया जा सकता था, जिसमें बकरियाँ 'विश्वासघाती' शहरी लोग तथा भेड़ें 'विश्वासपात्र' किसान समुदाय के लोग माने गये थे।[4]

खालसा कालेज 1892 में स्थापित हुआ[5]

1. शिरोल की पुस्तक *इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू*
2. नोटबुक पृष्ठ 282 के बाद पृष्ठ 283 का क्रम तो ठीक है पर (138) के बाद (139) नहीं, बल्कि (140) दिया गया है।
3. महात्मा गाँधी; शिरोल की पुस्तक *इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू* से उद्धृत
4. *इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू* से ही उद्धृत
5. मूल में, पेज के नीचे की ओर हाशिये पर तिरछा लिखा हुआ

पृष्ठ 284 (141)

भारत जैसा मैंने इसे जाना[1]

एक 'महात्मा' का रास्ता सचमुच कठिन है, और यह आश्चर्यजनक नहीं है कि गाँधी ने हाल ही में इस उपाधि को – और इसकी ज़िम्मेदारियों को त्याग देने की कोशिश की है। भारत में उनका प्रभाव निरन्तर घटता जा रहा है, फिर भी उनका संन्यासी का बाना और महान नैतिक सच्चाइयों के रूप में उनके द्वारा अत्यन्त कुशलता से निरूपित किये जाने वाले अस्पष्ट और अव्यावहारिक तोलस्तोय मार्का सिद्धान्त बहुतेरे लोगों को सार्थक लगने का भ्रम देते हैं तथा भावुक इंग्लैण्ड के दुर्बल मन वाले तथा फ़्रांस के कुछ तर्कशील लोग भी इसी भ्रम में हैं, जो पूर्व से एक नयी रोशनी की उम्मीद लगाये हुए हैं। *पृष्ठ 65*

भेदिया[2] :

आयरिश षड्यन्त्रों में जो **घृणित लेकिन उपयोगी वर्ग** आमतौर पर (भेदियों की – स.) आपूर्ति किया करता था, वह जड़मूल से क्यों सूख गया, इसके मुख्य कारणों में से मैं समझता हूँ एक तो यही रहा है कि सत्ताधारी अपने भेदिये को छिपाने और बचाने में असफल रहे (जैसे जेम्स कैरी के मामले में, जबकि उसी ने क्रान्तिकारियों के अभेद्य गिरोह का रहस्योद्घाटन किया था और उसी के साक्ष्य पर ब्रैडी, फिट्ज़हरबर्ट और मुलेन को फीनिक्स पार्क की दो हत्याओं, अर्थात चीफ़ सेक्रेटरी और अण्डरसेक्रेटरी की हत्याओं के बदले फाँसी पर चढ़ा दिया गया। उस भेदिये की एक नौजवान क्रान्तिकारी ओ'डॉनेल ने, डरबन में, दिन-दहाड़े गोली मारकर हत्या कर दी।[3]) गो कि हत्या करने वाला पकड़ा गया। महायुद्ध से पहले

---

1. सर माइकेल ओ'ड्वायर (1864-1940) की पुस्तक *इण्डिया ऐज़ आई निउ इट* से उद्धृत, जो 1925/28 में लन्दन से प्रकाशित हुई। 1988 में मित्तल पब्लिकेशंस, दिल्ली से पुनर्मुद्रित। ओ'ड्वायर प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान पंजाब का लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर था, उसने पंजाब से बड़े पैमाने पर नौजवानों की ज़बरन सेना में भरती करायी, लोगों को युद्ध के लिए सरकार को ऋण देने पर बाध्य किया और राजनीतिक नेताओं को क्रूरतापूर्वक प्रताड़ित किया। जलियाँवाला बाग़ काण्ड का उसने समर्थन किया। बाद में, ऊधमसिंह ने लन्दन में उसकी हत्या कर दी।

2. इस हिस्से में ओ'ड्वायर ने आयरलैण्ड के क्रान्तिकारियों द्वारा ब्रिटिश सरकार के भेदियों के सफाये का उदाहरण देते हुए पंजाब में ख़ुद उसके द्वारा क्रान्तिकारियों के विरुद्ध अपनाये तरीक़ों की चर्चा की है।

3. जब आयरिश क्रान्तिकारियों ने फीनिक्स पार्क में चीफ़ और अण्डरसेक्रेटरियों की हत्या कर दी, तब उन्हें पकड़वाने और फाँसी चढ़वाने में जेम्स कैरी ने मुखबिर की भूमिका निभायी, हालाँकि उसकी भी पैट्रिक ओ'डोनेल नामक क्रान्तिकारी ने गोली मारकर हत्या कर दी, जिससे भारत के क्रान्तिकारियों को भारी मनोबल प्राप्त हुआ।

और उसके दौरान, पंजाब के लेफ़्टीनेण्ट गवर्नर के रूप में, मेरा कई क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों से पाला पड़ा, जिनका पर्दाफ़ाश करने में भेदियों की जाति ने एक बड़ी भूमिका अदा की, और हमारी सतर्कता इतनी मुकम्मल रही कि एक भी मामले में किसी भी भेदिये पर कोई आँच नहीं आयी।[1]

पृष्ठ 285 (142)

मैं समझ सकता हूँ कि अपनी नीचताभरी चालबाज़ी, असामान्य अहम्मन्यता, दुरभिसन्धि रचने की अपनी जन्मजात रुझान, और अरुचिकर तथ्यों पर पर्दा डालने की क्षमता से पूरी तरह लैस भारतीय षड्यन्त्रकारी कैसे इस माहौल में आराम से काम करते थे।

पृष्ठ 187
इण्डिया ऐज़ आइ निउ इट[2]

आर्यसमाज :

वास्तव में आर्यसमाज पश्चिमी प्रभाव के विरुद्ध एक राष्ट्रवादी पुनर्जागरण है। यह इस सम्प्रदाय के संस्थापक दयानन्द के आधिकारिक ग्रन्थ, *सत्यार्थ प्रकाश* में अपने अनुयायियों का आह्वान करता है कि वे वेदों की ओर लौटें और आर्यों के काल्पनिक स्वर्णिम अतीत में स्वर्णिम भविष्य की तलाश करें। *सत्यार्थ प्रकाश* ग़ैर-हिन्दू शासन के विरुद्ध दलीलें भी देता है, और कुछ वर्ष पहले, इस सम्प्रदाय के एक अग्रणी मुखपत्र ने तो दयानन्द को ही *स्वराज* के सिद्धान्त का असली प्रवर्तक होने का दावा भी किया।

लेकिन 1907 में जब कुछ शरारती लोगों ने आर्य समाज के विरुद्ध अफ़वाहें फैलाना शुरू किया, तब इस सम्प्रदाय ने अपने पुराने धर्म सिद्धान्त को दुहराते हुए इस आशय का एक प्रस्ताव प्रकाशित करने की बुद्धिमत्ता दिखायी कि इस संगठन का किसी भी क़िस्म के राजनीतिक निकाय या किसी भी क़िस्म के राजनीतिक आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब यदि एक **निकाय** के रूप में समाज द्वारा चरमपन्थी राजनीति से सम्बन्ध-विच्छेद के इस दावे को मान भी लिया जाये, तब भी कट्टर हिन्दुओं के लिए यह बात ग़ौरतलब होनी ही चाहिए कि भले ही, आर्य समाज में पंजाब की हिन्दू आबादी के 5 प्रतिशत से अधिक लोग शामिल नहीं हैं, फिर भी 1907 से लेकर आज तक हिन्दुओं की एक बड़ी आबादी जो राजद्रोह

1. ओ'ड्वायर की पुस्तक *इण्डिया ऐज़ आई निउ इट* से
2. ओ'ड्वायर की पुस्तक

और दूसरे राजनीतिक अभियोगों के तहत दण्डित होती रही है, वह इस समाज की ही सदस्य रही है।

पृष्ठ 184, वही

पृष्ठ 286 (143)

भारत के बारे में सांख्यिकीय आँकड़े :

इंग्लैण्ड और वेल्स में 4/5 आबादी शहरों में रहती है।

शहरी जीवन का मानक वहाँ से शुरू होता है जब 1000 लोग एक साथ रहने लगते हैं। केवल तभी नगरपालिका की ओर से जलनिकास, रोशनी और पानी की आपूर्ति की व्यवस्था की जा सकती है।

भारत (ब्रिटिश)
कुल
244,000,000
में से
226,000,000 लोग
गांवों में रहते हैं।

इंग्लैण्ड – सामान्य समयों में

मुहैया करता है	58 % (आबादी का – स.) उद्योग को
	8 % कृषि को
भारत देता है	71 % कृषि को
	12 % उद्योग को
	5 % व्यापार को
	2 % घरेलू सेवाओं को
	1) % स्वतन्त्र पेशों को
	1) % सेना समेत, सरकारी सेवा को।

– पूरे भारत में 31 करोड़ 50 लाख लोगों में से 22 करोड़ 60 लाख लोग भूमि पर आश्रित हैं।

– उनमें से 20 करोड़ 80 लाख लोग सीधे कृषि पर जीते या आश्रित हैं।

(मॉण्टफ़ोर्ड रिपोर्ट)[1]

---

1. मॉण्टफ़ोर्ड रिपोर्ट : भारतीय संवैधानिक सुधारों पर तैयार की गयी रिपोर्ट। इसे मॉण्टफ़ोर्ड रिपोर्ट इसलिए कहा गया कि इसे सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट, मॉण्टेग्यू, और गवर्नर जनरल चेम्सफ़ोर्ड ने मिलकर तैयार किया था। यह रिपोर्ट 8 जुलाई 1918 को प्रस्तुत की गयी।

पृष्ठ 288 (144)

कुल क्षेत्रफल – 1,800,000 वर्ग मील

ग्रेट ब्रिटेन से 20 गुना बड़ा

– 700,000 वर्गमील या 1/3 से अधिक राज्यों के अधीन है। भारतीय राज्यों की संख्या 600 है।

– बर्मा फ़्रांस से बड़ा है। मद्रास और बम्बई (प्रान्त), अलग-अलग इटली से बड़े हैं।

———o———

भारत की कुल जनसंख्या (1921 की जनगणना) –

318, 942, 000

अर्थात कुल मानवजाति का 1/5

– 247,000,000 आबादी ब्रिटिश भारत में और 71,900,000 राज्यों में है।

———o———

25 लाख लोग अंग्रेज़ी पढ़ना जानते हैं – प्रति एक हज़ार पुरुषों में से 16 और प्रति हज़ार स्त्रियों में से 2

देशी भाषाओं की कुल संख्या **222** है

गाँवों की कुल संख्या **500,000**[1]

पृष्ठ 288 (145)

स्वेज नहर 1869 में खुली।

उस समय भारत का कुल निर्यात था :

रु. 80 करोड़ = £ 80,000,000

1926-27 और उसके पहले के दो वर्षों में इसका औसत था :

रु. 350 करोड़, अर्थात लगभग £ 262,500,000

———o———

1. उपरोक्त सभी आँकड़ों का स्रोत सम्भवत: मॉण्टफ़ोर्ड रिपोर्ट

कुल जनसंख्या = 31 करोड़ 90 लाख
जिसमें से 3 करोड़ 20 लाख 50 हज़ार अर्थात 10.2 प्रतिशत लोग
क़स्बों और शहरों (शहरी क्षेत्र) में रहते हैं,
जबकि इंग्लैण्ड में यह 79 % है।[1]

———○———

और काम का सबसे कठिन हिस्सा होगा झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वालों के दिमाग़ में कुछ बेहतरी की इच्छा को बिठाना।

पृष्ठ 22
साइमन रिपोर्ट[2]

———○———

1. आँकड़ों का स्रोत अस्पष्ट
2. साइमन रिपोर्ट : *रिपोर्ट ऑफ़ द इण्डियन स्टैट्यूटरी कमीशन* (साइमन कमीशन) (लन्दन, 1930)

पृष्ठ 304[1]

भगतसिंह

के लघु हस्ताक्षर

दिनांक 12.9.1929

1. नोटबुक में पृष्ठ 289 से पृष्ठ 303 तक कुछ नहीं अंकित है। नोटबुक के प्रथम पृष्ठ पर नोटबुक में पृष्ठों की संख्या 404 अंकित है। परन्तु पृष्ठ 305 से लेकर पृष्ठ 404 तक के पन्नों का कोई अता-पता नहीं है। कुल 304 पृष्ठ उपलब्ध हैं जिन पर रबर की मुहर से नम्बर डाले गये हैं। ये नम्बर कब और किसने डाले यह स्पष्ट नहीं है। शेष 100 पृष्ठ क्या हुए? वे ग़ायब हो गये या किसी अन्य काम के लिए इस्तेमाल किये गये, यह भी स्पष्ट नहीं है।
भगतसिंह ने कुल 145 पृष्ठों पर नोट्स लिये हैं जिनमें बीच-बीच में ख़ाली पृष्ठ हैं।

परिशिष्ट - एक

क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास

(चापेकर बन्धुओं से भगतसिंह तक)

शिव वर्मा

स्वाधीनता संग्राम में क्रान्तिकारियों के प्रवेश की घोषणा करने वाला पहला धमाका 1897 में पूना में चापेकर बन्धुओं ने किया था। पूना शहर में उन दिनों प्लेग ज़ोरों पर था। रैण्ड नाम के एक अंग्रेज़ को वहाँ प्लेग कमिश्नर बनाकर भेजा गया। वह बड़ा ही ज़ालिम और तानाशाह क़िस्म का आदमी था। उसने प्लेग से प्रभावित मकानों को बिना कोई अपवाद ख़ाली कराये जाने का हुक्म जारी कर दिया। जहाँ तक उस हुक्म का सवाल है उसमें कोई ग़लत बात नहीं थी। लेकिन जिस तरह रैण्ड ने इस हुक्म पर अमल करवाया, उससे वह अलोकप्रिय हो गया। लोगों को उनके घरों से निकाला गया और उन्हें कपड़े, बरतन आदि तक ले जाने का समय नहीं दिया गया।

4 मई, 1897 को लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र *केसरी* में एक लेख लिखकर न सिर्फ़ नीचे के अफ़सरों पर बल्कि ख़ुद सरकार पर इल्ज़ाम लगाया कि वह जान-बूझकर जनता का उत्पीड़न कर रही है। उन्होंने रैण्ड को निरंकुश बतलाया और सरकार पर "दमन का सहारा लेने" का आरोप लगाया।

फिर आया शिवाजी समारोह। इस अवसर पर, 12 जून, 1897 को एक सार्वजनिक सभा में अध्यक्ष पद से बोलते हुए तिलक ने कहा : "क्या शिवाजी ने अफ़ज़ल ख़ाँ को मारकर कोई पाप किया था? इस प्रश्न का उत्तर महाभारत में मिल सकता है। गीता में श्रीमन कृष्ण ने अपने गुरुओं और बान्धवों तक को मारने का उपदेश दिया है। उनके अनुसार अगर कोई व्यक्ति निष्काम भाव से कर्म करता है तो वह किसी भी तरह पाप का भागी नहीं बनता है। श्री शिवाजी ने अपने उदर-पूर्ति के लिए कुछ नहीं किया था। बहुत ही नेक इरादे के साथ, दूसरों की भलाई के लिए उन्होंने अफ़ज़ल ख़ाँ का वध किया। अगर चोर हमारे घर में घुस

आयें और हमारे अन्दर उनको बाहर निकालने की ताक़त न हो तो हमें बेहिचक दरवाज़ा बन्द करके उनको ज़िन्दा जला देना चाहिए। ईश्वर ने हिन्दुस्तान के राज्य का पट्टा ताम्र-पत्र पर लिखकर विदेशियों को तो नहीं दिया है। शिवाजी महाराज ने उनको अपनी जन्मभूमि से बाहर खदेड़ने की कोशिश की। ऐसा करके उन्होंने दूसरों की वस्तु हड़पने का पाप नहीं किया। कुएँ के मेढ़क की तरह अपनी दृष्टि को संकुचित मत करो, ताजीराते-हिन्द की क़ैद से बाहर निकलो, श्रीमद्भगवद्गीता के अत्यन्त उच्च वातावरण में पहुँचो और महान व्यक्तियों के कार्यों पर विचार करो।"[1]

और 22 जून को चापेकर भाइयों ने रैण्ड व ऐवर्स्ट को मार दिया। इस तरह, ऊपरी तौर पर देखने से यही लगता है कि चापेकर भाइयों के कार्य के तात्कालिक प्रेरक तत्त्व रैण्ड की निरंकुशता और तिलक का भाषण थे। लेकिन यह सिर्फ़ अर्द्धसत्य है। दरअसल, चापेकर बन्धुओं के विचार महामारी फैलने या रैण्ड के पूना आने से बहुत पहले से ही एक शक्ल अख़्तियार करने लगे थे।

1894 में ही चापेकर भाइयों ने पूना में शारीरिक और सैनिक प्रशिक्षण के लिए 'हिन्दू धर्म अवरोध निवारण समिति' क़ायम कर रखी थी कि जिसे हिन्दू संरक्षिणी समिति भी कहा जाता था। यह समिति हर साल नियमपूर्वक शिवाजी व गणपति समारोह आयोजित करती थी। इन समारोहों में चापेकर भाइयों द्वारा पढ़े जाने वाले श्लोकों से उनकी भावना का पता चलता है। जनता से तलवार उठाने का आग्रह करते हुए 'शिवाजी श्लोक' कहता है :

"भाँड की तरह शिवाजी की कहानी दुहराने-मात्र से स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती। आवश्यकता इसकी है कि शिवाजी और बाज़ी की तरह तेज़ी के साथ काम किये जायें। आज हर भले आदमी को तलवार और ढाल पकड़नी चाहिए - यह जानते हुए कि हमें राष्ट्रीय संग्राम के युद्धक्षेत्र में जीवन का जोखिम उठाना होगा। हम धरती पर उन दुश्मनों का ख़ून बहा देंगे जो हमारे धर्म का विनाश कर रहे हैं। हम तो मारकर मर जायेंगे, लेकिन तुम औरतों की तरह सिर्फ़ कहानियाँ सुनाते रहोगे।"[2]

'गणपति श्लोक' तो 'शिवाजी श्लोक' से भी ज़्यादा उग्र था। गौ और धर्म की रक्षा के लिए उठ खड़े होने का आह्वान करते हुए इसमें हिन्दुओं से कहा गया है : "अफ़सोस, तुम ग़ुलामी की ज़िन्दगी पर शर्मिन्दा नहीं हो; जाओ, आत्महत्या कर लो। उफ़्! ये कमीने कसाइयों की तरह गाय और बछड़ों को मार रहे हैं; उसे (गौ को) इस संकट से मुक्त कराओ; मरो लेकिन अंग्रेज़ों को मारकर; नपुंसक होकर धरती पर बोझ न बनो। इस देश को हिन्दुस्तान कहा जाता है; अंग्रेज़ भला किस तरह यहाँ राज कर रहे हैं?[3]

इस तरह हम देखते हैं कि चापेकर बन्धु और उनके सहयोगी मुख्यत: तीव्र

धार्मिक भावनाओं से उत्प्रेरित थे और उनका दृष्टिकोण घोर कट्टरपन्थी था। सम्भवत: इसी कारण से वे ब्रिटिश विरोधी ही नहीं, मुस्लिम विरोधी भी थे।

चापेकर बन्धुओं की देशभक्ति हिन्दुत्व पर आधारित थी। वे हिन्दू धर्म और गौ की रक्षा के लिए अंग्रेज़ों को बाहर भगाना चाहते थे। रैण्ड की हत्या भी एक ऐसे व्यक्ति के प्रति उनकी गहरी नफ़रत का नतीजा थी जो अपनी दमन और निरंकुशता की कार्रवाइयों के कारण पूरी जनता की घृणा का पात्र बन गया था।

जहाँ तक उनको प्रेरित करने वाले दूसरे कारणों का सवाल है, इसका कोई सुबूत नहीं मिलता कि वे 1857 के भारतीय स्वाधीनता संग्राम से या फ़्रांसीसी व इतालवी क्रान्तियों से प्रभावित रहे हों।

इन तमाम सीमाओं के बावजूद मुक़दमे के दौरान या बाद में, चापेकर भाइयों ने जिस वीरता, साहस और आत्मबलिदान की भावना का परिचय दिया उसके महत्त्व को किसी भी तरह कम करके आँका नहीं जा सकता। सर ऊँचा किये हुए तीनों भाइयों ने फाँसी के फन्दे को चूमा।

गुलामी और आज़ादी की समस्याओं के प्रति यह धार्मिक दृष्टिकोण चापेकर भाइयों तक ही सीमित नहीं था। सावरकर बन्धु भी धार्मिक रहे...बंगाल के क्रान्तिकारियों ने भी धर्म के सहारे लोगों को उभाड़ा था। इस वाक्य से शायद यह ग़लतफ़हमी हो कि वे धर्म को न मानते थे केवल उभाड़ने का काम उससे लेते थे, इसलिए यह कह देना ज़रूरी है कि वे स्वयं धर्म के कट्टर मानने वाले थे।[4]

1902 में कलकत्ता में क़ायम अनुशीलन समिति की कार्यप्रणाली का वर्णन करते हुए तारिणीशंकर चक्रवर्ती लिखते हैं : "क्रान्तिकारी कार्य के लिए जो इस समिति में आते थे, उनको दो वर्गों में बाँटा जाता था। धर्म में जिनकी आस्था थी उनको एक वर्ग और धर्म-विशेष में, जिन्हें आस्था नहीं थी परन्तु क्रान्तिकारी कार्यों में विशेष निष्ठा थी, ऐसी लड़कों को दूसरे वर्ग में रखा जाता था।" "धर्म के प्रति जो श्रद्धावान थे वे इस बग़ीचे (मानिकतल्ला बागान - स.) में रहते थे...ये ही लड़के प्रथम कोटि के क्रान्तिकारी समझे जाते थे।"[5]

उस समय बंगाल के क्रान्तिकारियों का बहुमत बंकिमचन्द्र चटर्जी और स्वामी विवेकानन्द से बेहद प्रभावित था। "अनुशीलन समिति के सदस्यों को हिन्दू ग्रन्थों, ख़ासकर गीता को बहुत ध्यान से पढ़ना पड़ता था।"[6]

"बंकिमचन्द्र चटर्जी और स्वामी विवेकानन्द की बौद्धिक परम्परा में पले-बढ़े बंगाल के बीसवीं सदी के पहले दशक के ये क्रान्तिकारी धार्मिक उपादानों और कर्मकाण्डों से तथा प्राचीन व तात्कालिक हिन्दुत्व के पौराणिक उपाख्यानों, प्रतीकों, गीतों और नारों से प्रेरणा ग्रहण करते थे।"[7]

इस तरह, क्रान्तिकारी आन्दोलन के पहले चरण (1897-1913) के क्रान्तिकारी आमतौर पर हिन्दू धर्म के प्रति आस्थावान थे और उससे प्रेरणा ग्रहण

करते थे। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। इसके ऐतिहासिक कारण थे। पिछली सदी के आठवें दशक में तरुण भारत के दिलों को एक नयी भावना मथ रही थी। शिक्षित युवक राजनीतिक दृष्टिकोण से सोचने लगे थे। एक नयी क़िस्म का राष्ट्रवाद जन्म ले रहा था। यह नया राष्ट्रवाद पुराने राजनीतिवाद के मुक़ाबले ज़्यादा संजीदा, ज़्यादा खुले दिमाग़ वाला था। यह इस विचार से लैस और प्रेरित था कि पूरे राष्ट्रीय जीवन का पुनरुत्थान आवश्यक है। भारतीय मानस किस सीमा तक आन्दोलित हो उठा था, इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि सभी बेहतरीन सोच के लोगों की नयी भावनाएँ और विचार धर्म से अनुप्राणित थे। पुराने देवताओं की जगह घृणा और रक्त के नये देवताओं की पूजा होने लगी थी।[8]

इस सीमा तक, धर्म की एक सकारात्मक भूमिका अवश्य थी। लेकिन इसका एक नकारात्मक पहलू भी था। इस दौर में बाल गंगाधर तिलक, बिपिनचन्द्र पाल, ब्रह्म बान्धव उपाध्याय और अरविन्द घोष जैसे सभी जुझारू राष्ट्रीय नेता राजनीति को धर्म के रंग में रँग रहे थे। इस तरह अचेतन रूप में ही सही, उन्होंने साम्प्रदायिक राजनीति के विषवृक्ष लगाये। गाँधी और उनके अनुयायियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया और अन्त तक उससे चिपके रहे, जबकि क्रान्तिकारियों ने 1914 में ही, जब उनका आन्दोलन दूसरे चरण में प्रवेश कर रहा था, इसे छोड़कर धर्मनिरपेक्षता को अपना लिया था। धर्म और राजनीति का यह तालमेल तब से आज तक लगातार हमारे सार्वजनिक जीवन को तबाह करता रहा है, और अब तो इसके कारण हमारी राष्ट्रीय एकता का ढाँचा ही चरमराता नज़र आ रहा है।

हालाँकि महाराष्ट्र के चापेकर बन्धु और बंगाल के पहले दशक के क्रान्तिकारी, दोनों प्राचीन भारतीय संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करते थे लेकिन दोनों के बीच एक मार्के का अन्तर भी है।

30 अप्रैल, 1908 को किंग्सफ़ोर्ड की बग्घी पर एक बम आकर गिरा जिससे दो महिलाओं की मृत्यु हो गयी। इस घटना पर टिप्पणी करते हुए 22 जून के *केसरी* में लोकमान्य तिलक ने लिखा : "1897 की हत्या और बंगाल के बमकाण्ड के बीच काफ़ी अन्तर है। जहाँ तक दिलेरी और कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने का सवाल है, चापेकर भाइयों का दर्जा बंगाल की बम पार्टी के सदस्यों से ऊँचा है। लेकिन अगर साध्य और साधन के नज़रिये से देखें तो बंगालियों की ज़्यादा तारीफ़ करनी होगी...वर्ष 1897 में पूना निवासी प्लेग के समय के दमन के शिकार थे, और उस दमन से उत्पन्न उत्तेजना का कोई शुद्ध राजनीतिक चरित्र नहीं था। यह शासन-प्रणाली ही ख़राब है और जब तक अधिकारियों को छाँट-छाँटकर व्यक्तिगत रूप से आतंकित नहीं किया जाता, तब तक वे व्यवस्था को बदलने पर तैयार नहीं होंगे - ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न चापेकर भाइयों के सामने नहीं था।

उनका कर्म प्लेग के बाद जारी दमन के, यानी एक विशेष कार्य के ख़िलाफ़ था। निश्चय ही बंगाल की बम पार्टी की दृष्टि एक ज़्यादा व्यापक पटल पर थी जिसे बंगाल के विभाजन ने उभारा था।"[9]

इतना ही नहीं, बंगाल के क्रान्तिकारी धर्म को बहुत ज़्यादा महत्त्व देते थे, इस तथ्य के बावजूद आन्दोलन के अन्तिम लक्ष्य की दृष्टि से कहें तो, 1902 में ही उन्होंने एक बहुत महत्त्वपूर्ण घोषणा की थी। इसी वर्ष बंगाल के क्रान्तिकारियों ने अपने को 'अनुशीलन समिति' नाम की एक पार्टी के रूप में संगठित किया था। समिति की स्थापना के समय जारी घोषणापत्र में कहा गया था : "अनुशीलन की कल्पना के समाज में अनपढ़, ग़रीब लोग नहीं होंगे, कायर, दुष्ट लोग नहीं होंगे और अस्वस्थ लोग भी नहीं होंगे। ऐसे समाज के निर्माण के लिए सभी प्रकार की विषमताओं को समाप्त करना होगा। विषमता के बीच मानव की मानवता विकसित नहीं हो सकती। मानव समाज से धन की विषमता, सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिक विषमता और प्रादेशिक विषमता दूर कर सभी मनुष्यों में समानता लानी होगी। केवल राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही ऐसा किया जाना सम्भव है। पराधीनता की दशा में अनुशीलन के स्वप्न के समाज की स्थापना सम्भव नहीं है, इसीलिए अनुशीलन पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा करती है। अनुशीलन भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता चाहती है।"[10]

अनुशीलन समिति की यह घोषणा निश्चय ही आगे की तरफ़ एक बहुत बड़ा क़दम था। यहीं पर बंगाल के क्रान्तिकारी 1897 के पूना केन्द्र से आगे हैं। चापेकर बन्धु विदेशियों से नफ़रत तो करते थे मगर वे खुद क्या चाहते हैं इसके बारे में स्पष्ट नहीं थे। यह बात बंगाल के क्रान्तिकारियों के साथ नहीं थी। ये लोग मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे, हालाँकि वे धार्मिक लोग थे और हिन्दू ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त करते थे।

इसके विपरीत इस दौर के पंजाब के क्रान्तिकारी आरम्भ से ही साम्प्रदायिकता के दोष से मुक्त थे। सरदार अजीत सिंह, लालचन्द 'फ़लक', सूफ़ी अम्बा प्रसाद, लाला हरदयाल और उनके सभी सहयोगी धर्मनिरपेक्ष थे। धर्म उनके लिए एक निजी मामला था।

शताब्दी के पहले दशक के क्रान्तिकारी जिन स्रोतों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे उनमें धर्म के अलावा एक था 1857 का भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम। "इस विषय पर 1907 या 1908 में लन्दन में लिखी गयी वीर सावरकर की पुस्तक ने अपनी तमाम अपर्याप्तताओं के बावजूद, जो उस दौर में और उस समय के हालात में स्वाभाविक थी, बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस विषय पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा फैलाये गये लांछनों तथा उनके झूठे ऐतिहासिक लेखन की धज्जियाँ उड़ाकर इस पुस्तक ने बहुत बड़ा काम किया। इसने बातों को सही

तौर पर सामने रखा। इस किताब पर ब्रिटिश शासकों ने फ़ौरन प्रतिबन्ध लगा दिया, लेकिन फिर भी यह मेहनत से और गुप्त रूप से तैयार की गयी पाण्डुलिपि के रूप में भारत के उस समय के क्रान्तिकारियों के बीच घूमती रही।"[11]

वास्तविकता यह है कि 1857 का जन-विद्रोह पूरे स्वाधीनता संग्राम के दौरान सभी स्वाधीनता सेनानियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहा।

शताब्दी के पहले दशक में क्रान्तिकारियों के लिए प्रेरणा का दूसरा स्रोत था फ़्रांसीसी, इतालवी और रूसी क्रान्तिकारियों की कहानियाँ।

आन्दोलन के पहले चरण की कमज़ोरियाँ और सीमाएँ

आन्दोलन के पहले चरण के दौरान पूना और बंगाल के क्रान्तिकारियों की पहली कमज़ोरी थी उनका हिन्दू पूर्वाग्रह। इस पूर्वाग्रह ने मुस्लिम जनता को आन्दोलन से दूर रखा। हालाँकि बंगाल के क्रान्तिकारी मुस्लिम विरोधी नहीं थे, लेकिन मुस्लिम जनता से कार्यकर्ता भरती करने का कोई गम्भीर प्रयास उन्होंने कभी नहीं किया। इस कथन के कुछ अपवाद यहाँ-वहाँ मिल सकते हैं। लेकिन अपवाद कभी नियम नहीं बनते।

आन्दोलन के दायरे को सीमित करने वाली दूसरी कमज़ोरी थी जनता के साथ जीवन्त सम्बन्धों का न होना। स्वदेशी आन्दोलन के तीन या चार सालों को छोड़कर, जब बंगाल के क्रान्तिकारी जनता के बीच गये और लोगों को सक्रिय होने के लिए प्रोत्साहित किया, आमतौर पर क्रान्तिकारी व्यक्तिगत क्रियाशीलता में विश्वास रखते थे, जिसे सरकार आतंकवाद के ग़लत नाम से पुकारती थी। जनता इन क्रान्तिकारियों के आत्मबलिदान, निर्भीकता और साहस की प्रशंसा तो करती थी लेकिन अपनी रोज़मर्रा की समस्याओं के साथ उनकी कार्रवाइयों को जोड़ सकने में असमर्थ रहती थी। ऐसी स्थिति में साम्राज्यवादियों के लिए क्रान्तिकारियों का दमन कर सकना और भी आसान हो जाता था।

आन्दोलन की तीसरी सीमा थी उसके कार्यकर्ताओं का वर्ग-चरित्र। क्रान्तिकारी आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का एक बड़ा बहुमत निम्न-मध्यम वर्ग से सम्बन्धित था। इस चरण में यह एकदम स्वाभाविक था। यह वही दौर था जबकि नई पीढ़ी विदेशी शासन से पूर्ण मुक्ति का दावा करने लगी थी। यह पीढ़ी खुद को 'वयस्क' समझने लगी थी। नौजवान तबके में बेचैनी थी मगर पुराना नेतृत्व होम रूल के लिए प्रस्तावों और प्रार्थनापत्रों से आगे बढ़ने को तैयार न था। लेकिन शिक्षित नौजवान एक नयी दुनिया पाने के लिए अपना सब लुटा देने पर आमादा था। नौजवानों का विश्वास था कि वे जुझारू सशस्त्र संघर्ष के जरिये देश को आज़ाद करा सकते हैं। इसके लिए वे अपना जीवन तक होम कर देने को तैयार थे।

मध्यम वर्ग स्वभाव से ही व्यक्तिवादी होता है। यह एक शक्तिशाली सहयोगी

हो सकता है। अगर यह पूँजीपति वर्ग की तरफ़ जाता है तो प्रतिक्रियावाद का वाहक हो जाता है। अगर यह मज़दूर वर्ग के साथ खड़ा होता है तो, स्वयं नेतृत्व प्रदान कर सकने की क्षमता न होते हुए भी, एक क्रान्तिकारी शक्ति बन जाता है। इसकी स्वतन्त्र कार्रवाइयाँ प्राय: व्यक्तिगत कार्रवाइयों का रूप ले लेती हैं। जिस दौर की बात हम कर रहे हैं उस समय स्वाधीनता के लिए जनान्दोलन खड़ा कर सकने में न तो पूँजीपति वर्ग समर्थ था और न मज़दूर वर्ग ही। इस चुनौती का सामना अपने सपनों को साकार करने के लिए सबकुछ क़ुर्बान कर देने को तैयार इन मध्यमवर्गीय नौजवानों ने स्वभावत: अपने ढंग से किया जो आरम्भ में व्यक्तिगत कार्रवाइयों का ही रूप ले सकती थी। यह सीमा एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज थी।

ग़ुलामी की अपमानजनक स्थिति के सामने समर्पण करने से बेहतर होता है चोट करना और नष्ट हो जाना। किसी न किसी को पहली चोट करनी ही पड़ती है। पहली चोट का कोई नतीजा नहीं निकलता और पहली चोट करने वाले ज़्यादातर नष्ट हो जाते हैं। लेकिन उनकी क़ुर्बानियाँ कभी बेकार नहीं जातीं। झरना बढ़कर गरजता हुआ दरिया बन जाता है, चिनगारी ज्वालामुखी बनती है, व्यक्ति समष्टि से एकाकार हो जाता है। पुरानी व्यवस्था की जगह एक नयी व्यवस्था आती है, और सपना एक हक़ीक़त का रूप ले लेता है। क्रान्तियाँ इसी तर्ज़ पर आगे बढ़ती हैं। भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन भी ठीक इसी तर्ज़ पर आगे बढ़ा।

"भारतीय क्रान्तिकारियों ने, अकल्पनीय कठिनाइयों के बीच भी, आधुनिक युग की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी ताक़त को चुनौती देने की जुर्रत की। इतना ही नहीं, उस युग के क्रान्तिकारी शूरवीरों - चापेकर भाइयों, खुदीराम, कनाईलाल और मदनलाल धींगरा ने अपने आत्मबलिदान और शहादत के माध्यम से अपने ऊँघते हुए देशवासियों को जगाया और उन्हें राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा अपने जन्मसिद्ध जनवादी राजनीतिक अधिकारों के उच्च विचारों से भी परिचित कराया। क्रान्तिकारी आन्दोलन, ऐतिहासिक रूप से, अपने ढंग का वह पहला आन्दोलन था जिसने राष्ट्रीय स्वाधीनता और सम्प्रभुता के लिए भारत के संघर्ष के राजनीतिक उद्देश्य के रूप में पूर्ण स्वाधीनता तथा ब्रिटिश साम्राज्य से हर तरह के राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद के लक्ष्य को जनता के सामने रखा। ठीक इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने विदेशी साम्राजी शासन के विरुद्ध संगठित हथियारबन्द संघर्ष के लिए जनता का आह्वान किया।

"वे शुरू से ही भारतीय जनता के लिए पूर्ण राष्ट्रीय प्रभुसत्ता और लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के लिए अनवरत संघर्ष करते रहे और उस लक्ष्य से कभी डिगे नहीं।

"उनकी शहादतों ने उनके प्रति जनता की प्रशंसा को उभारकर विदेशी साम्राज्यवादी शासन के प्रति उसकी नफ़रत को और भी तीखा बनाया और उसके संघर्षशील साहस को और भी ऊँचा उठाया।"[12]

ग़दर पार्टी की स्थापना

क्रान्तिकारी आन्दोलन के पहले दौर में बहुत-से क्रान्तिकारी देश छोड़कर यूरोप और अमेरिका चले गये थे। उनका उद्देश्य था भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालन के लिए धन संग्रह करना, प्रचार करना और साहसी, आत्मत्यागी तथा समर्पित युवकों की एक टीम खड़ी करना। इस काम में उनको कुछ कम सफलता नहीं मिली। लेकिन जहाँ तक अन्तिम लक्ष्य का प्रश्न है, उनके विचार अभी तक भारत की आज़ादी की एक भावनात्मक धारणा तक ही सीमित थे। क्रान्ति के बाद स्थापित होने वाली सरकार की रूपरेखा क्या होगी, दूसरे देशों की क्रान्तिकारी शक्तियों के साथ उसके सम्बन्ध क्या होंगे, नई व्यवस्था में धर्म का क्या स्थान होगा, आदि प्रश्नों पर उस समय के अधिकांश क्रान्तिकारी स्पष्ट नहीं थे। यह सूरत कमोबेश 1913 तक जारी रही। इन सभी मुद्दों पर स्पष्ट रवैया अपनाने का श्रेय ग़दर पार्टी के नेताओं को जाता है।

इस शताब्दी के पहले दशक में भारत छोड़कर जाने वाले क्रान्तिकारियों को अंग्रेज़ सरकार के हाथों में पड़ने से बचने के लिए एक देश से दूसरे देश तक भटकना पड़ता था। अन्त में, उनमें से कइयों ने अमेरिका में बसने और उस देश को अपने कार्य का आधार-क्षेत्र बनाने का फ़ैसला किया। इनमें प्रमुख थे - तारकनाथ दास, शैलेन्द्र घोष, चन्द्र चक्रवर्ती, नन्दलाल कार, बसन्तकुमार राय, सारंगधर दास, सुधीन्द्रनाथ बोस तथा जी.डी. कुमार। पहले दशक के अन्त तक लाला हरदयाल भी उनसे आ मिले। इन लोगों ने अमेरिका और कनाडा में बसे भारतीय प्रवासियों से सम्पर्क किया, धन संग्रह किया, अख़बार निकाले, और कई जगहों पर गुप्त संस्थाएँ क़ायम कीं।

तारकनाथ दास ने *फ़्री हिन्दुस्तान* नाम से अख़बार निकाला और अमेरिका में रह रहे भारतीय छात्रों तथा भारतीय प्रवासियों के लिए व्याख्यान देते रहे। वे **समिति** नाम की एक गुप्त संस्था के प्रधान भी थे। इस संस्था के अन्य सदस्य थे - शैलेन्द्रनाथ बोस, सारंगधर दास, जी.डी. कुमार, लस्कर और ग्रीन नामक एक अमेरिकी।

रामनाथ पुरी ने 1908 में ओकलैण्ड में 'हिन्दुस्तान एसोसिएशन' नाम की एक संस्था क़ायम की, और *सर्कुलर ऑफ़ फ़्रीडम* नाम से एक अख़बार निकाला। ये इस अख़बार के माध्यम से अंग्रेज़ों को भारत से खदेड़े जाने की वकालत करते रहे। जी.डी. कुमार ने वैंकूवर से *स्वदेशी सेवक* नामक अख़बार निकाला। वे वहाँ की एक गुप्त संस्था के सदस्य भी थे। इस संस्था के सदस्य रहीम और सुन्दर सिंह भी थे। सुन्दर सिंह *आर्यन* नाम के एक अख़बार का सम्पादन भी करते थे और उसके जरिये लगातार ब्रिटिश-विरोधी प्रचार चलाते थे। रहीम और आत्माराम ने

वैंकूवर में 'यूनाइटेड इण्डिया लीग' का गठन किया।

लाला हरदयाल 1911 में अमेरिका पहुँचे और वहाँ स्टैनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गये। सैन फ़्रांसिस्को में 'हिन्दुस्तानी स्टूडेण्ट्स एसोसिएशन' नाम की एक संस्था उन्होंने गठित की। 1913 में एस्टोरिया की 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' का गठन हुआ। करीम बख़्श, नवाब ख़ान, बलवन्त सिंह, मुंशीराम, केसर सिंह और कर्तार सिंह सराभा इसके सदस्य थे। ठाकुरदास और उनके मित्रों ने सेण्ट जॉन में रहने वाले भारतीयों की एक संस्था गठित की। 1913 में शिकागो में 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ़ दि युनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका' का गठन हुआ।[13]

लाला हरदयाल ने महसूस किया कि संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न हिस्सों में कार्यरत इन संगठनों की गतिविधियों का समन्वय आवश्यक है। अत: उन्होंने कनाडा और अमेरिका में रहने वाले भारतीय क्रान्तिकारियों की एक मीटिंग बुलायी। इस मीटिंग में 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ़ द पैसिफ़िक कोस्ट' नाम की एक संस्था के गठन का फ़ैसला लिया गया। बाबा सोहन सिंह भकना और लाला हरदयाल इसके क्रमश: अध्यक्ष और सचिव चुने गये। लाला हरदयाल नौकरी से इस्तीफ़ा देकर अपना पूरा समय एसोसिएशन के काम में लगाने लगे।

मार्च 1913 में एसोसिएशन ने सैन फ़्रांसिस्को से *ग़दर* नाम से एक अख़बार निकालने का फ़ैसला किया। उसके बाद एसोसिएशन का नाम भी बदलकर 'ग़दर' पार्टी कर दिया गया।

आगे की तरफ़ एक बड़ा क़दम

1913 में ग़दर पार्टी का गठन क्रान्तिकारी आन्दोलन के विकास की दिशा में एक बहुत बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण क़दम था। इसने राजनीति को धर्म से मुक्त किया और धर्मनिरपेक्षता को अपनाया। धर्म को निजी मामला घोषित कर दिया गया।

अख़बार *ग़दर* ने हिन्दू-मुसलमान दोनों का आह्वान किया कि वे आर्थिक मसलों पर ज़्यादा ध्यान दें क्योंकि उनका दोनों के जीवन पर एक जैसा प्रभाव पड़ता है। प्लेग से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही मर रहे हैं। अकाल पड़ने पर अन्न से दोनों ही वंचित रहते हैं। पगार के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती दोनों पर की जाती है और दोनों को ही अत्यधिक ऊँची दरों पर भू-राजस्व तथा जल-कर देना पड़ता है। समस्या हिन्दू बनाम मुसलमान की नहीं बल्कि भारतीय बनाम अंग्रेज़ शोषकों की है। हिन्दू-मुस्लिम एकता को इतना मज़बूत बनाया जाना चाहिए कि कोई उसे तोड़ न सके।[14]

ग़दर पार्टी "धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करती थी और ठोस हिन्दू-मुस्लिम एकता की तरफ़दार थी। वह छूत और अछूत के भेदभाव को भी नहीं मानती थी। भारत की एकता और भारत के स्वाधीनता-संग्राम के लिए एकता, यही उसे प्रेरित

करने वाले प्रमुख सिद्धान्त थे।"[15] इस मामले में ग़दर पार्टी उस समय के भारतीय नेताओं से मीलों आगे थी। सोहन सिंह जोश के अनुसार, "ग़दर के क्रान्तिकारी राजनीतिक-सामाजिक सुधार के सवालों पर अपने समसामयिकों से आगे थे।"[16]

14 मई, 1914 को *ग़दर* में प्रकाशित एक लेख में लाला हरदयाल ने लिखा : "प्रार्थनाओं का समय गया; अब तलवार उठाने का समय आ गया है। हमें पण्डितों और क़ाज़ियों की कोई ज़रूरत नहीं है।"[17] 1913 में पोर्टलैण्ड में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि ग़दर के क्रान्तिकारियों को आगामी क्रान्ति के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें भारत जाकर और वहाँ से अंग्रेज़ों को भगाकर अमेरिका जैसी एक जनतान्त्रिक सरकार क़ायम करनी चाहिए जिसमें धर्म, जाति और रंग के अन्तर से परे सभी भारतीय समान और स्वतन्त्र हों।

लाला हरदयाल ने, जो अपनेआप को अराजकतावादी कहा करते थे, एक बार कहा था कि स्वामी और सेवक के बीच कभी कोई समानता नहीं हो सकती, भले ही वे दोनों मुसलमान हों, सिख हों, अथवा वैष्णव हों। अमीर हमेशा ग़रीब पर शासन करेगा...आर्थिक समानता के अभाव में भाईचारे की बात सिर्फ़ एक सपना है।[18]

हिन्दुस्तानियों के बीच साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ाने को ग़दर पार्टी ने अपना एक उद्देश्य बनाया। युगान्तर आश्रम नाम के ग़दर पार्टी के दफ़्तर में सवर्ण हिन्दू, अछूत, मुसलमान और सिख, सभी जमा होते और साथ-साथ भोजन करते थे।

धर्म जब राजनीति के साथ घुलमिल जाता है तो वह एक घातक विष बन जाता है जो राष्ट्र के जीवन्त अंगों को धीरे-धीरे नष्ट करता रहता है, भाई को भाई से लड़ाता है, जनता के हौसले पस्त करता है, उसकी दृष्टि को धुँधला बनाता है, असली दुश्मन की पहचान कर पाना मुश्किल कर देता है, जनता की जुझारू मन:स्थिति को कमज़ोर करता है, और इस तरह राष्ट्र को साम्राज्यवादी साज़िशों की आक्रमणकारी योजनाओं का लाचार शिकार बना देता है। भारत में इस बात को सबसे पहले ग़दर के क्रान्तिकारियों ने महसूस किया। उन्होंने दिलेरी के साथ एलान किया कि वे इस ज़हर को अपनी राजनीति से दूर ही रखेंगे। और उन्होंने जो कहा वैसा ही किया भी। भारतीय राजनीति में यह उनकी पहली महान उपलब्धि थी।

ग़दर के क्रान्तिकारियों की दूसरी महान उपलब्धि थी, उनका अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण। "ग़दर का आन्दोलन एक अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन था। उसकी शाखाएँ मलाया, शंघाई, इण्डोनेशिया, ईस्ट इण्डीज़, फिलीपींस, जापान, मनीला, न्यूज़ीलैण्ड, हांगकांग, सिंगापुर, फिजी, बर्मा और दूसरे देशों में कार्यरत थीं। ग़दर पार्टी के उद्देश्यों के प्रति इण्डस्ट्रियल वर्कर्स ऑफ़ द वर्ल्ड (आई.डब्ल्यू.डब्ल्यू.) की बहुत हमदर्दी थी...वे (ग़दर के क्रान्तिकारी) सभी देशों की आज़ादी के तरफ़दार थे।"[19]

कई कवियों की लिखी हुई कविताओं के संग्रह *ग़दर दी गूँज* में एक कवि कहता है : "भाइयो, चीन के ख़िलाफ़ जंग में न लड़ो। भारत, चीन और तुर्की के अवाम आपस में भाई हैं। दुश्मन को इसकी इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए कि वह इस भाईचारे को तहस-नहस कर सके।"[20]

वैंकूवर में 1911 में एक संस्था क़ायम हुई थी जिसका उद्देश्य था बाक़ी दुनिया के साथ भारतीय राष्ट्र के स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे के सम्बन्ध क़ायम करना। लाला हरदयाल ने भी कई बार अपने भाषणों में यह घोषणा की थी कि वे केवल भारत में ही नहीं बल्कि हर उस देश में क्रान्ति चाहते हैं जहाँ ग़ुलामी और शोषण मौजूद है।[21]

ग़दर के क्रान्तिकारियों के प्रचार का एक प्रमुख अंग था दुनिया की श्रमिक यूनियनों के नाम अपील जारी करना। उन्होंने पूरी दुनिया के जनसाधारण से अपील की कि वे साम्राजी निज़ाम को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट हों।[22]

विचारधारा और कार्यक्रम

ग़दर पार्टी ब्रिटिश शासन की विरोधी थी और उसका उद्देश्य था सशस्त्र संघर्ष के जरिये भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त करके यहाँ अमेरिकी ढंग का प्रजातन्त्र स्थापित करना। उसका विश्वास था कि प्रस्तावों, प्रतिनिधि-मण्डलों और प्रार्थना-पत्रों से हमें कुछ मिलने वाला नहीं है। अंग्रेज़ शासकों के सामने नरमदलीय नेताओं का नाचना भी वे पसन्द नहीं करते थे। जिस गणतन्त्र की बात वे करते थे उसमें किसी तरह के राजा की नहीं, बल्कि एक चुने हुए राष्ट्रपति की गुंजाइश थी।

भारत की आज़ादी हासिल करने के लिए ग़दर पार्टी व्यक्तिगत कार्रवाइयों पर उतना निर्भर नहीं करती थी जितना इस बात पर कि सेना में प्रचार करके सैनिकों को विद्रोह के लिए प्रोत्साहित किया जाये। उन्होंने सैनिकों से अपील की कि वे विद्रोह के लिए उठ खड़े हों।

ग़दर के क्रान्तिकारियों का वर्ग-चरित्र भी पहले के क्रान्तिकारियों से भिन्न था। पुराने क्रान्तिकारी मुख्यत: निम्न-मध्यम वर्ग के कुछ शिक्षित लोग थे जबकि ग़दर पार्टी के अधिकांश सदस्य किसान से मज़दूर बने लोग थे, और इसलिए उन्होंने विद्रोह के लिए किसानों से भी उठ खड़े होने की अपील की।

दो कमज़ोरियाँ

ग़दर पार्टी की स्थापना अमेरिका में हुई थी जहाँ लोगों को कुछ नागरिक स्वाधीनताएँ और अभिव्यक्ति की आज़ादी हासिल थी जबकि उस समय भारत में ये चीज़ें नहीं थीं। वहाँ ग़दर के नेता खुलकर अपनी योजनाओं, इरादों और कार्यक्रम पर बहस करते और उन पर लेख लिखते थे। इस तरह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को उनकी

योजनाओं की पूरी-पूरी जानकारी रहती थी और वे ग़दर के क्रान्तिकारियों की गतिविधियों से पैदा हो सकने वाली हर स्थिति से निपटने को तैयार थे। ग़दर के नेताओं और कार्यकर्ताओं की इस अगोपनीयता की बहुत बड़ी क़ीमत पार्टी को चुकानी पड़ी।

दूसरी प्रमुख कमज़ोरी उनका यह भ्रामक विश्वास था कि एक साम्राज्यवादी शक्ति उनको दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति के चंगुल से आज़ाद कराने में ईमानदारी के साथ सहायता करेगी। उनके दिमाग़ में यह बात साफ़ नहीं थी कि जर्मन हो या ब्रिटिश या कोई और – सभी साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रवृत्ति एक जैसी होती है। जब पहला विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तब ग़दर पार्टी और दूसरे क्रान्तिकारियों ने नारा दिया कि "ब्रिटेन की मुसीबत हमारे लिए सुनहरा अवसर है," और कि "दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है"। इस विश्वास के साथ उन्होंने जर्मनी के क़ैसर से सहायता के लिए सम्पर्क किया। क़ैसर के प्रतिनिधियों से बातचीत के दौरान स्वाधीन भारत की भावी व्यवस्था से सम्बन्धित कुछ शर्तें भी उन्होंने रखने की कोशिश की। मगर इस नुक्ते पर क़ैसर का जवाब हमेशा अस्पष्ट रहा। उसकी दिलचस्पी जंग के दौरान ब्रिटेन के ख़िलाफ़ ग़दर पार्टी के क्रान्तिकारियों का अधिक से अधिक इस्तेमाल कर सकने तक ही सीमित थी। उसके अपने जंगी उद्देश्य थे – ब्रिटेन और फ़्रांस से अधिक से अधिक उपनिवेश छीनना। इस तरह ग़दर के क्रान्तिकारी साम्राज्यवाद की वास्तविक प्रकृति से एकदम अनजान थे। वास्तविक और स्थायी मुक्ति के लिए ग़ुलाम देशों को पूरी साम्राज्यवादी व्यवस्था से लड़ाई लड़नी होगी। – यह बात रूस में अक्टूबर (नई प्रणाली में नवम्बर) 1917 की क्रान्ति के बाद ही पूरी तरह स्पष्ट हुई।

महान अक्टूबर क्रान्ति और उसका प्रभाव

1917 की अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति मानवता के इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना है। उसने केवल रूस में ही साम्राज्यवाद को पराजित नहीं किया बल्कि पूरी साम्राज्यवादी व्यवस्था को भी एक ज़बरदस्त झटका दिया। इस क्रान्ति ने रूस में मनुष्य द्वारा मनुष्य के और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र के शोषण पर आधारित व्यवस्था को समाप्त कर दिया। सोवियत जनता अपने भाग्य की स्वामी बन गयी। खेतों, कारख़ानों और वर्कशॉपों पर उसका सामूहिक स्वामित्व क़ायम हो गया। अक्टूबर क्रान्ति ने न सिर्फ़ रूस के अवाम को पूँजीपतियों और ज़मींदारों की ग़ुलामी से मुक्त किया बल्कि एक बिल्कुल नये समाज और नये इन्सान को भी जन्म दिया। उसने ग़ुलाम देशों के स्वाधीनता सेनानियों को प्रेरित किया और उनके अन्दर विश्वास जगाया कि उनकी लड़ाई क़ामयाब होकर रहेगी। उसने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में चल रहे मुक्ति-संघर्षों को नये आयाम भी दिये।

विश्वव्यापी साम्राज्यवाद-विरोधी संग्राम का अंग होने के नाते भारत का स्वाधीनता संग्राम भी इससे अछूता नहीं रहा। उसके दृष्टिकोण में भी एक फैलाव आया और महसूस किया गया कि आर्थिक और सामाजिक समानताओं के बिना आज़ादी का कोई अर्थ नहीं होगा।

अक्टूबर क्रान्ति और यूरोप तथा एशिया में साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्ति की लहर ने, और साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भारतीय जनता के क्रान्ति की तरफ़ बढ़ते क़दमों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को चौकन्ना कर दिया था। उन्होंने अप्रिय स्थिति से निपटने के लिए दोतरफ़ा नीति अपनायी। एक तरफ़ तो उन्होंने मॉण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधारों का ढकोसला खड़ा करके नरमपन्थी राष्ट्रीय नेताओं का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की और दूसरी तरफ़ राजद्रोह के मामलों की छानबीन करने और क्रान्तिकारियों के दमन के उपाय सुझाने के लिए न्यायमूर्ति रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी की सिफ़ारिशें बड़ी ही पाशविक थीं। उसने साधारण राजनीतिक गतिविधियों तक को राजद्रोह क़रार दे दिया था। रौलट कमेटी की दमनकारी सिफ़ारिशों के विरोध में गाँधीजी ने एक दिन आम हड़ताल का आह्वान किया। इस आह्वान के अप्रत्याशित प्रभाव हुए और जनता अपना क्रोध व्यक्त करने के लिए एकजुट होकर सामने आ गयी। यह सरकार के लिए ही नहीं, हमारे नेताओं के लिए भी एक नयी बात थी। अंग्रेज़ों ने भारतीयों को सबक सिखाने का निश्चय किया और 13 अप्रैल, 1919 को जलियाँवाला बाग़ में इस निश्चय को अमली रूप भी दे दिया गया। इसके बाद तो जनता में गुस्से की लहर दौड़ गयी और पंजाब के लगभग सभी शहरों में लोग सड़कों पर निकल आये। सरकार ने उसे संगठित विद्रोह की संज्ञा दी। लेकिन वास्तव में गाँधीजी भी इस सबके लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने एलान किया कि एक दिन की आम हड़ताल का नारा देकर उन्होंने भयंकर भूल की थी। उन्होंने लोगों से आन्दोलन बन्द करने और सुधारों पर अमल करने का अनुरोध किया।

सितम्बर, 1920 में लाला लाजपत राय ने कांग्रेस को आगाह करते हुए कहा था कि जनता क्षुब्ध एवं परेशान है और कुछ कर गुज़रने के मूड में है। उन्होंने कांग्रेस से यह भी कहा कि अगर जनता के इस गुस्से को सही रास्ते पर न डाला गया तो वह अपना रास्ता अपनायेगी जो देश के लिए अहितकर होगा। "इस तथ्य की ओर से आँखें बन्द करने से कोई लाभ नहीं होगा कि हम क्रान्तिकारी युग से होकर गुज़र रहे हैं।" उन्होंने एलान किया और कहा, "प्रकृति से और परम्परा से हम क्रान्तियों को पसन्द नहीं करते हैं।"[23] कांग्रेस ने नागपुर अधिवेशन में लाला जी की उस चेतावनी पर भी विचार किया और गाँधीजी को निर्देश दिया गया कि वे स्वराज्य के लिए असहयोग आन्दोलन आरम्भ करें। आन्दोलन शुरू करने से पहले महात्मा जी बंगाल गये और कुछ क्रान्तिकारी नेताओं से मिलकर उनसे एक साल

का समय माँगा और कहा कि अगर वे एक साल के अन्दर स्वराज्य न प्राप्त कर लें तो क्रान्तिकारियों को अपने रास्ते पर चलने की पूरी छूट होगी। क्रान्तिकारी नेताओं ने गाँधीजी की बात मान ली। सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ। देखते-देखते वह सारे देश में फैल गया और गाँवों की छोटी-छोटी झोंपड़ियों तक में 'स्वराज्य' शब्द गूँजने लगा। आन्दोलन में भाग लेने के लिए गाँधीजी ने जो भी रोकथाम की शर्तें लगाई थीं उन सबको भी तोड़कर किसान पूरे जोश के साथ आन्दोलन में कूद पड़े। "सरकार परेशान और घबरायी हुई थी, उसके हाथ-पैर फूलने लगे थे। यदि सरकार की चौमुखी अवज्ञा की छूत शहरों से चलकर करोड़ों किसानों तक पहुँच जाती है तो अंग्रेज़ी हुकूमत के पास बचत के लिए कोई चारा नहीं रह जायेगा; तीस करोड़ जनता के विद्रोह की खौलती हुई हाँडी से उनकी सारी तोपें और हवाई जहाज़ भी उन्हें बचा नहीं सकेंगे।"[24] गाँधीजी भी खुश नहीं थे और उतने ही घबराये हुए थे। वे आन्दोलन वापस लेने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा में थे और फ़रवरी, 1922 में चौरी-चौरा की घटना से उन्हें यह अवसर मिल गया। बजाय इसके कि वे उस घटना का स्वागत करते और जनता से उसी प्रकार की हज़ारों और घटनाओं की माँग करते, उन्होंने किसी से सलाह लिये बग़ैर चुपचाप आन्दोलन वापस ले लिया और राजनीति से अलग हो गये। इस पृष्ठभूमि में क्रान्तिकारियों ने, जिन्होंने गाँधीजी के कहने पर हथियार रख दिये थे, अपने को संगठित करके फिर से हथियार उठाने का फ़ैसला किया।

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन

सभी क्रान्तिकारियों को एक अखिल भारतीय पार्टी में संगठित करने में पहल की शचीन्द्रनाथ सान्याल ने। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1923 के अन्त में 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ' (हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन) की बुनियाद डाली। उन्होंने पार्टी का संविधान भी तैयार किया जो पीले काग़ज़ पर छपा था और इसीलिए वह 'पीला परचा' के नाम से मशहूर है। एक और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ जो उन्होंने तैयार किया वह था 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ' का घोषणापत्र जिसका शीर्षक था (दि रिवोल्यूशनरी)। यह दस्तावेज़ पहली जनवरी, 1925 की रात में पूरे उत्तर भारत में बाँटा गया था। 1917 की अक्टूबर क्रान्ति से प्रभावित होकर घोषणापत्र में भारतीय क्रान्तिकारियों के उद्देश्य का एलान नीचे लिखे शब्दों में किया गया था :

"राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी पार्टी का तात्कालिक उद्देश्य संगठित सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत के संयुक्त राज्यों का एक संघीय गणराज्य (फ़ेडरल रिपब्लिक ऑफ़ यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ इण्डिया) स्थापित करना है। इस गणराज्य के अन्तिम संविधान का निर्माण एवं घोषणा तब होगी जब सम्पूर्ण भारत के प्रतिनिधि अपने निर्णयों को लागू करने में सक्षम होंगे। लेकिन इस गणराज्य का मूलभूत सिद्धान्त

सार्वजनिक मताधिकार पर और शोषण पर आधारित ऐसी समस्त व्यवस्थाओं की समाप्ति पर आधारित होगा जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को सम्भव बनाती हैं। इस गणराज्य में मतदाताओं को, यदि वे चाहें तो, प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार होगा, अन्यथा प्रजातन्त्र एक मखौल बनकर रह जायेगा।"

घोषणापत्र में कहा गया था कि "यह क्रान्तिकारी पार्टी इन अर्थों में राष्ट्रीय न होकर अन्तरराष्ट्रीय है कि इसका अन्तिम उद्देश्य विश्व में मेल एवं सामंजस्य स्थापित करना है। यह विभिन्न राष्ट्रों और राज्यों के बीच प्रतिद्वन्द्विता के बजाय सहयोग चाहती है; और इन अर्थों में वह भारत के उज्ज्वल अतीत के महान ऋषियों एवं आज के बोल्शेविक रूस का अनुसरण करेगी।"[25]

घोषणापत्र में साम्प्रदायिक समस्या के बारे में, जनता के आर्थिक एवं सामाजिक हितों के सवाल पर और कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक पार्टियों के बारे में क्रान्तिकारियों के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया था।

इन सभी सवालों पर घोषणापत्र का दृष्टिकोण निश्चित रूप से अतीत का दामन छोड़कर समाजवाद का और सोवियत को 'विजयी समाजवाद का पहला देश' कहकर उसका स्वागत करता है। उसमें हमें राष्ट्रीय आज़ादी के लिए चलने वाले आन्दोलनों के अन्तरराष्ट्रीय चरित्र की समझ भी देखने को मिलती है। हालाँकि यह समझ अभी बहुत साफ़ नहीं है। स्वतन्त्र भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था कैसी होगी, घोषणापत्र में उस पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मज़दूरों और किसानों को संगठित करने की आवश्यकता को भी स्वीकार किया गया है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि घोषणापत्र का लेखक मार्क्सवादी था या उसने वैज्ञानिक समाजवाद के सारतत्त्व को आत्मसात कर लिया था। उसका झुकाव ख़ासतौर पर ईश्वर और रहस्यवाद की ओर है। घोषणापत्र के अनुसार, "पार्टी का उद्देश्य सत्य को प्रस्थापित करना और उसका प्रचार करना है। विश्व न माया है न भ्रम कि उसकी तरफ़ से आँख बन्द कर ली जाये और उसकी उपेक्षा की जाये। वह एक अविभाज्य आत्मा का प्रकट स्वरूप है, आत्मा जो शक्ति, ज्ञान और सौन्दर्य का सर्वोच्च उद्गम है।" लेखक मार्क्सवाद के आर्थिक पक्ष को स्वीकार करता है, जो काकोरी से पहले के क्रान्तिकारियों के मुक़ाबले निश्चय ही एक आगे बढ़ा हुआ क़दम है। लेकिन जहाँ तक मार्क्सवाद के दार्शनिक पक्ष का सवाल है, लेखक भौतिकवाद को न मानकर भगवान और धैर्य पर अडिग रहता है। आगे चलकर सान्याल जी स्वयं लिखते हैं : "कम्युनिस्ट दर्शन में इतिहास के भौतिकवादी विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। और इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में वर्ग-संघर्ष की अवधारणा शुरू से आख़िर तक लगातार मौजूद है...मैं आज भी इन सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं कर पाया हूँ...।"[26]

एक और महत्त्वपूर्ण मुद्दा जिस पर उनका कम्युनिज़्म से मतभेद था, वह था

सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व की अवधारणा। उनका यह मत था कि "सिर्फ़ मध्यम वर्ग के नौजवान ही नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता रखते हैं, जबकि मज़दूर और किसान क्रान्तिकारी सेना के सिपाही का काम करेंगे।"[27]

शचीन्द्रनाथ सान्याल और उनके समय के अन्य क्रान्तिकारियों की सैद्धान्तिक मान्यताओं का सत्येन्द्र नारायण मजूमदार ने अपनी पुस्तक *इन सर्च ऑफ़ ए रिवोल्यूशनरी आइडियोलोजी एण्ड रिवोल्यूशनरी प्रोग्राम* में संक्षेप में बड़ा अच्छा खुलासा प्रस्तुत किया है। दोनों दस्तावेज़ों (*क्रान्तिकारी* और संविधान) पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है : "ये दोनों दस्तावेज़ उन क्रान्तिकारियों की सोच का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उन दिनों साम्यवाद की तरफ़ आकर्षित हो रहे थे।"[28] इसके बाद दोनों दस्तावेज़ों की विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं : "इन दोनों दस्तावेज़ों की विशिष्टताएँ हैं – (क) समाजवाद की विजय-पताका फहराने वाले पहले देश के रूप में बोल्शेविक रूस के प्रति और साम्यवाद के प्रति स्पष्ट झुकाव; (ख) राष्ट्रीय मुक्ति के लिए क्रान्ति के अन्तरराष्ट्रीय चरित्र को समझने की शुरुआत, हालाँकि यह समझ अभी बहुत साफ़ नहीं थी; (ग) स्वतन्त्र भारत की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की रूपरेखा तैयार करने की कोशिश; (घ) मज़दूरों और किसानों को संगठित करने के लिए कृत-संकल्प होना; (ङ) पार्टी में जनवादी-केन्द्रीयता के सिद्धान्त का प्रवेश।"[29]

दोनों दस्तावेज़ों की कमज़ोरियों को मजूमदार ने इस प्रकार गिनाया है : "(क) साम्यवाद के प्रति झुकाव अवश्य था, लेकिन अभी तक साम्यवाद के अध्ययन का ठोस आधार उसे नहीं मिला था; (ख) राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष में मज़दूरों और किसानों की भूमिका के वास्तविक महत्त्व को स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया था; (ग) घोषणापत्र का लेखक अभी तक धार्मिक रहस्यवाद के प्रभाव से ग्रस्त है; (घ) घोषणापत्र यह समझने में असफल रहा कि आतंकवाद का मुक़ाबला करने के लिए जवाबी आतंकवादी अभियान का मज़दूरों और किसानों को संगठित करने के कार्य से सामंजस्य बैठाना अव्यावहारिक है; (ङ) राष्ट्रीय स्थिति का ग़लत विश्लेषण देते हुए घोषणापत्र में कहा गया था कि 'हमारे जीवन के हर क्षेत्र में चरम असहायता की भावना विद्यमान है और आतंकवाद उसमें यथोचित उत्साह पैदा करने का प्रभावकारी साधन' आदि। जबकि उस समय तक भारत की मेहनतकश जनता संघर्ष की राह पर कूच कर चुकी थी। उसका अगुवा दस्ता मज़दूर वर्ग निर्मम पुलिस-दमन के बावजूद लगातार और बहादुरी के साथ शानदार लड़ाइयाँ लड़ रहा था।"[30]

बंगाल में भी उसी दिशा में विकास हो रहा था। वहाँ अनुशीलन और युगान्तर के कई नेताओं ने सोवियत रूस तथा कम्युनिज़्म में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। लेकिन यह दिलचस्पी साम्यवाद के अध्ययन पर या अक्टूबर क्रान्ति और

उसकी विशिष्टता की ठीक समझ पर आधारित नहीं थी। वे सोवियत यूनियन और कोमिण्टर्न को "हथियार तथा अन्य प्रकार की सहायता, मसलन बम बनाने की शिक्षा आदि, प्राप्त करने के एक सम्भावित स्रोत के रूप में देखते थे। लेकिन जब उन्हें पता चला कि सोवियत यूनियन और कम्युनिस्ट इण्टरनेशलन दोनों ही जनता से अलग किसी प्रकार की सशस्त्र गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं देते हैं तो उनकी दिलचस्पी ठण्डी पड़ गयी।"[31]

उस समय, अर्थात तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष में कम्युनिस्ट विचारधारा जनप्रिय हो रही थी। अक्टूबर क्रान्ति और रूस के ख़िलाफ़ साम्राज्यवादी हस्तक्षेप की पराजय के अलावा इस बदलाव के कुछ अन्य कारण भी थे। जैसे : (क) पेशावर और कानपुर के बोल्शेविक षड्यन्त्र केस; (ख) देश के कई भागों में किसानों के जुझारू संघर्ष; (ग) मज़दूरों की देशव्यापी बड़ी-बड़ी हड़तालें (घ) मज़दूर-किसान पार्टी का गठन; (ङ) देश के विभिन्न कम्युनिस्ट ग्रुपों को मिलाकर एक अखिल भारतीय पार्टी के गठन का प्रयास। राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर घटित इन घटनाओं से प्रभावित होकर अनुशीलन के कुछ कार्यकर्ता पार्टी से अलग होकर कम्युनिस्ट आन्दोलन में चले गये। अनुशीलन में उनका अच्छा सम्मान था और क्रान्तिकारी युवकों में साम्यवाद को जनप्रिय बनाने में उन लोगों की काफ़ी हद तक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ का गठन

संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) में 1925 में क्रान्तिकारी पार्टी के प्राय: सभी प्रमुख नेता काकोरी षड्यन्त्र केस के सिलसिले में पकड़कर जेल में बन्द कर दिये गये थे। इससे हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ के संगठन को बहुत बड़ा धक्का लगा। केवल चन्द्रशेखर आज़ाद और कुन्दनलाल गुप्त ही पुलिस के चंगुल से बचकर निकल पाये थे। इनके अतिरिक्त बाहर जो साथी रह गये थे वे सब दूसरी पंक्ति के सिपाही थे। पार्टी को फिर से संगठित करने का दायित्व इन्हीं दूसरी पंक्ति के साथियों पर पड़ा। उस समय अर्थात 1925 में कुछ क्रान्तिकारी लाहौर में सक्रिय थे और कुछ कानपुर में फिर से काम आरम्भ करने का प्रयास कर रहे थे। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उस समय तक इन दोनों केन्द्रों के साथियों के दिमाग़ साफ़ नहीं थे। हाँ, एक सही सिद्धान्त की तलाश अवश्य आरम्भ हो गयी थी। इस दिशा में दोनों केन्द्रों के साथियों को योग्य मार्गदर्शक भी मिल गये थे।

इस समय (1925-26) लाहौर के साथी, ख़ासकर भगतसिंह और सुखदेव, रूसी अराजकतावादी बाकुनिन से प्रभावित थे। भगतसिंह को अराजकतावाद से समाजवाद की ओर लाने का श्रेय दो व्यक्तियों को है - कामरेड सोहन सिंह जोश जो अब हमारे बीच में नहीं हैं और लाला छबीलदास। जोश एक मशहूर कम्युनिस्ट

नेता और *किरती* नाम की पंजाबी मासिक पत्रिका के सम्पादक थे। वे भगतसिंह से विभिन्न विषयों पर बातचीत करते और उन्हें *किरती* में लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे। लाला छबीलदास 'तिलक स्कूल ऑफ़ पोलिटिक्स', जो नेशनल कॉलेज के नाम से भी प्रसिद्ध था, के प्रधानाचार्य थे। वे नौजवान क्रान्तिकारियों को बतलाते रहते थे कि क्या पढ़ें और कैसे पढ़ें। भगवतीचरण वोहरा का समाजवाद की तरफ़ आरम्भ से ही रुझान था। सोहन सिंह जोश का सारा मार्ग-दर्शन और लाला छबीलदास के किताबों के बारे में सारे सुझाव पुस्तकों के अभाव में व्यर्थ ही रह जाते। इस आवश्यकता को कुछ हद तक पूरा किया लाला लाजपत राय की 'द्वारकादास लाइब्रेरी' ने। इस पुस्तकालय में राजनीति-सम्बन्धी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था जिनमें मार्क्सवादी और सोवियत रूस पर ऐसी पुस्तकें भी शामिल थीं जिन्हें सरकार ने ज़ब्त नहीं किया था।

लाहौर के क्रान्तिकारियों ने उस पुस्तकालय से पूरा लाभ उठाया। उस काम में उन्हें पुस्तकालय के अध्यक्ष और क्रान्तिकारियों के हमदर्द श्री राजाराम शास्त्री (अब स्वर्गीय) से काफ़ी सहायता मिलती थी। पुस्तकें प्राप्त करने का एक और भी सोर्स था रामकृष्ण एण्ड सन्स नाम की किताबों की एक दूकान। यह दूकान अनारकली बाज़ार में थी और उसके पास इंग्लैण्ड से ज़ब्तशुदा पुस्तकें मँगवाने की अच्छी व्यवस्था थी। पंजाब के क्रान्तिकारियों ने, ख़ासकर भगतसिंह और भगवतीचरण वोहरा ने, इन सुविधाओं से पूरा लाभ उठाया। श्री राजाराम शास्त्री ने एक बार इन पंक्तियों के लेखक से कहा था कि भगतसिंह वस्तुतः पुस्तकों को पढ़ता नहीं निगलता था, लेकिन फिर भी उसकी ज्ञान की पिपासा सदा अनबुझी ही रहती थी। भगतसिंह पुस्तकों का अध्ययन करता, नोट्स बनाता, अपने साथियों से उन पर विचार-विमर्श करता, अपनी समझ को नये ज्ञान की कसौटी पर आत्मालोचनात्मक ढंग से परखने का प्रयास करता और इस प्रक्रिया में अपनी समझ में जो-जो ग़लतियाँ दिखलायी पड़तीं उन्हें सुधारने की कोशिश करता। इन सब बातों ने पंजाब ग्रुप को तेज़ी के साथ आगे बढ़ने में मदद की। परिणामस्वरूप 1928 के आरम्भ में उन्होंने अराजकतावाद को छोड़कर समाजवाद को ध्येय के रूप में स्वीकार कर लिया। इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने मार्क्सवाद को पूरी तरह से समझ लिया था। अतीत के प्रभाव से अभी पूरी तरह छुटकारा नहीं मिल पाया था।

कानपुर के साथी भी ठीक उसी दिशा में आगे बढ़ रहे थे, हालाँकि उनकी आगे बढ़ने की गति में वह तेज़ी नहीं थी जो लाहौर के साथियों में थी। कानपुर में राधामोहन गोकुलजी, सत्यभक्त और मौलाना हसरत मोहानी अपने को कम्युनिस्ट कहते थे। इनमें से राधामोहन जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके पास पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। अध्ययनशील व्यक्ति होने के साथ ही वे एक सशक्त

लेखक भी थे। 1927 में उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी – *कम्युनिज़्म क्या है?* सरल और सीधी-सादी भाषा में इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के पाठकों के सामने कम्युनिस्ट सिद्धान्त के प्रमुख मुद्दों को प्रस्तुत किया था। इन पंक्तियों के लेखक को भी कम्युनिज़्म का पहला सबक राधामोहन जी से ही मिला था। राधामोहन जी कट्टर नास्तिक थे। ईश्वर, धर्म, अन्धविश्वास आदि पर उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में काफ़ी कुछ लिखा था। उनका यह रूप देखकर हिन्दी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने उन्हें 'आधुनिक चार्वाक' कहकर पुकारा था।

सत्यभक्त का कम्युनिज़्म अध्यात्मवादी रंग का था और मौलाना हसरत मोहानी के विचार कम्युनिज़्म और इस्लाम की खिचड़ी कहे जा सकते हैं। इन कमज़ोरियों के बावजूद सोवियत रूस और साम्यवाद को हिन्दी भाषा-भाषी जनता के बीच जनप्रिय बनाने में इन तीनों की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। कानपुर के युवा क्रान्तिकारियों ने समाजवाद की प्रथम दीक्षा इन्हीं महानुभावों से प्राप्त की थी। शौक़त उस्मानी भी विजयकुमार सिन्हा के माध्यम से कानपुर ग्रुप के सम्पर्क में थे, लेकिन हम लोगों को उनसे किसी प्रकार का सैद्धान्तिक मार्गदर्शन नहीं मिल सका था। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से भी, जो कानपुर की बहुत बड़ी मशहूर हस्ती थे, क्रान्तिकारियों को हर तरह की सहायता मिलती रहती थी। वे राजनीतिक अध्ययन और जनता के बीच काम पर विशेष रूप से बल देते थे।

इस सबके परिणामस्वरूप कानपुर के साथियों का झुकाव भी समाजवाद की तरफ़ हो गया था। लेकिन यह झुकाव बुद्धिसंगत होने के बजाय भावात्मक अधिक था। उस समय तक कानपुर ग्रुप चन्द्रशेखर आज़ाद और कुन्दनलाल गुप्त से सम्पर्क स्थापित कर चुका था। ये दोनों साथी काकोरी षड्यन्त्र केस में फ़रार घोषित किये जा चुके थे।

यह थी पृष्ठभूमि, जब 1928 के आरम्भ में भगतसिंह ने विभिन्न दलों को मिलाकर क्रान्तिकारियों का एक अखिल भारतीय संगठन बनाने का विचार अपने साथियों के सामने रखा। उनके प्रस्ताव इस प्रकार थे : (क) समय आ गया है कि हम समाजवाद को साहस के साथ अपना अन्तिम लक्ष्य घोषित करें; (ख) पार्टी का नाम तदनुसार बदला जाना चाहिए ताकि लोग जान सकें कि हमारा अन्तिम लक्ष्य क्या है; (ग) हमें सिर्फ़ उन्हीं कामों को हाथ में लेना चाहिए जिनका सीधा सम्बन्ध जनता की ज़रूरतों और भावनाओं से हो सकता है, और हमें मामूली पुलिस अधिकारियों अथवा भेदियों को मारने में अपनी शक्ति और समय का अपव्यय नहीं करना चाहिए; (घ) धन के लिए हमें सरकारी ख़ज़ाने पर ही हाथ डालना चाहिए और यथासम्भव निजी घरों पर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए; और (ङ) सामूहिक नेतृत्व के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन करना चाहिए।

भगतसिंह ने इन सब मुद्दों पर लाहौर और कानपुर के अपने साथियों के साथ

विचार-विमर्श किया और चन्द्रशेखर आज़ाद तथा कुन्दनलाल की सहमति भी ले ली। इसके बाद यह तय किया गया कि विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों की एक बैठक 8 और 9 सितम्बर, 1928 को दिल्ली में आयोजित की जाये। पाँच प्रान्तों के प्रतिनिधियों को इसके लिए आमन्त्रित किया गया, लेकिन इनमें से चार प्रान्तों ने ही अपनी स्वीकृति दी। बंगाल को मीटिंग में भाग लेने के लिए हम राज़ी नहीं कर पाये।

इस सम्बन्ध में एस.एन. मजूमदार ने लिखा है कि "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के बंगाल के प्रतिनिधियों ने मीटिंग में भाग नहीं लिया क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि वे आतंकवाद तथा हिंसा के ख़िलाफ़ थे।" यह सही नहीं है। पार्टी की ओर से स्वयं मुझे ही अगस्त 1928 के अन्तिम सप्ताह में कलकत्ता भेजा गया था ताकि बंगाल के साथियों के साथ प्रस्तावों पर बातचीत करके उन्हें दिल्ली मीटिंग में आने के लिए आमन्त्रित किया जा सके। सम्पर्क मिला था वाराणसी के एक तारापद भट्टाचार्य से। कलकत्ते में मेरा परिचय जिन सज्जन से कराया गया उनके बारे में कहा गया कि वे अभी-अभी जेल से छूटकर आये हैं। देखने से वे बुज़ुर्ग लगते थे, उनका शरीर मोटा और थुलथुला था और उनका व्यवहार बड़ा ही अरुचिकर था। उनकी बातचीत और हाव-भाव से मुझे यह समझने में देरी नहीं लगी कि मैं जिस व्यक्ति से मिल रहा हूँ, वह तानाशाही प्रवृत्ति वाला एक दम्भी एवं बड़ा अहंकारी व्यक्ति है। चार-पाँच नौजवान लड़के जो बराबर वहाँ मौजूद रहे, उन्हें सुशील दा कहकर सम्बोधित करते थे। मैंने जैसे ही उनके कमरे में प्रवेश किया वैसे ही उन्होंने यू.पी. ग्रुप को काकोरी काण्ड के लिए डाँटना-फटकारना शुरू कर दिया, "तुम लोगों ने यह काम हम लोगों से पूछे बग़ैर क्यों किया? और अब सारा संगठन चौपट कर देने के बाद हमसे सहायता माँगने आने से क्या फ़ायदा?" मैंने उनसे कहा कि मैं आपसे कोई सहायता माँगने नहीं आया हूँ बल्कि कुछ मुद्दों पर बातचीत करने और आपको दिल्ली मीटिंग के लिए आमन्त्रित करने आया हूँ। इसके बाद मैंने एक-एक करके सभी प्रस्तावों के बारे में उन्हें बतलाया और उनसे दिल्ली मीटिंग में भाग लेने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि वे अपनी शर्तों पर ही मीटिंग में भाग ले सकेंगे और मुझसे यह आश्वासन माँगा कि उनकी शर्तें मान ली जायेंगी। उनकी शर्तें इस प्रकार थीं : (क) कि हम लोग समाजवाद या कम्युनिज़्म से कोई सरोकार नहीं रखेंगे; (ख) कि पार्टी का नाम नहीं बदला जायेगा; (ग) कि हमें सरकार से सीधे भिड़ा देने वाले काकोरी जैसे काम भविष्य में हमसे पूछे बग़ैर नहीं किये जायेंगे; (घ) कि केन्द्रीय कमेटी जैसी कोई चीज़ नहीं होगी और हम लोगों को केवल उन्हीं के माध्यम से बंगाल के मातहत रहकर काम करना होगा; (ङ) कि हम लोगों को अपनी गतिविधियाँ सिर्फ़ संगठन बनाने, हथियार और पैसा जमा करने तक ही सीमित रखनी होंगी; (च) कि पैसे के लिए सिर्फ़

अराजनीतिक कामों की ही इजाज़त होगी। मैंने उन्हें इस बात पर राजी करने की कोशिश की कि वे बग़ैर किसी प्रकार की शर्तें लगाये खुले दिल से मीटिंग में आयें और सभी बातों पर बहस में हिस्सा लें। उन्होंने मेरी बात मानने से साफ़ इन्कार कर दिया। चूँकि उनकी सभी शर्तें हमारे प्रस्तावों से बिल्कुल भिन्न थीं इसलिए मैंने विनम्रतापूर्वक उनकी शर्तें मानने से इन्कार कर दिया। इन कारणों से दिल्ली मीटिंग बंगाल के साथियों की अनुपस्थिति में ही करनी पड़ी।

दिल्ली मीटिंग और उसके बाद

आठ सितम्बर, 1928 को मीटिंग में भाग लेने के लिए चार प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करने वाले कुल मिलाकर दस साथी कोटला फ़िरोज़शाह में जमा हुए थे। इनमें दो बिहार से, दो पंजाब से, एक राजस्थान से और पाँच संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) से थे। यू.पी. के पाँच साथियों में से भी दो ने मीटिंग में बैठने से इन्कार कर दिया क्योंकि बाक़ी साथियों ने उनकी कुछ शर्तें नहीं मानीं। इस प्रकार केवल आठ साथियों ने ही बातचीत में भाग लिया। आज़ाद को सुरक्षा की दृष्टि से दिल्ली नहीं लाया गया था। लेकिन उनसे सभी मुद्दों पर पूर्वस्वीकृति प्राप्त कर ली गयी थी। मीटिंग में दो दिन की बहस के बाद भगतसिंह द्वारा रखे गये सभी प्रस्तावों को दो के ख़िलाफ़ छह के बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। फणीन्द्रनाथ घोष और मनमोहन बनर्जी (दोनों बिहार से) ने समाजवाद को पार्टी के अन्तिम लक्ष्य के रूप में अपनाये जाने और पार्टी का नाम बदलने के प्रस्ताव का विरोध किया। आगे चलकर जब दिसम्बर 1928 में भगतसिंह कलकत्ता गये और त्रैलोक्य चक्रवर्ती तथा प्रतुल गांगुली, जो उस समय तक जेल से छूटकर बाहर आ चुके थे, से मिले तो उन्होंने बताया कि दिल्ली मीटिंग के लिए बंगाल को आमन्त्रित करने जो साथी पहले आये थे, उनको दुर्भाग्यवश एक ग़लत आदमी से मिला दिया गया था। भगतसिंह ने दोनों नेताओं को दिल्ली के फ़ैसलों से अवगत कराया और सभी मुद्दों पर उनकी सहमति भी प्राप्त कर ली। वे हममें से कुछ साथियों को बम बनाने का प्रशिक्षण देने के लिए यतीन्द्रनाथ दास को आगरा भेजने के लिए भी सहमत हो गये।

1928 के आते-आते हम लोगों ने समाजवाद को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया था, लेकिन अमल में हम पर अतीत का साया अब भी हावी था। फिर भी यह कहना ग़लत होगा कि साण्डर्स वध और केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने के पीछे भगतसिंह की किसी प्रकार की मानसिक कुण्ठा या निराशा काम कर रही थी, जैसाकि एस.एन. मजूमदार ने साबित करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं : "त्रैलोक्य चक्रवर्ती ने उन्हें (भगतसिंह को) पाँच हज़ार की एक युवा वालण्टियर वाहिनी संगठित करने की सलाह दी, जैसीकि

कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के समय (दिसम्बर 1928) संगठित की गयी थी। चक्रवर्ती ने आगे लिखा है कि भगतसिंह ने उनकी सलाह पर अमल करने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। इसने उसके दिमाग़ में कुण्ठा और निराशा को जन्म दिया और कुछ सनसनीख़ेज़ काम की अनिवार्य आवश्यकता के बारे में उसके विश्वास को और पक्का कर दिया। शीघ्र ही उसके बाद असेम्बली में बम फेंकने की घटना हुई।"[32]

यह सारी कहानी तथ्यों से मेल नहीं खाती है। पहली बात तो यह कि भगतसिंह ने कभी कोई बड़ा राजनीतिक क़दम पार्टी की केन्द्रीय कमेटी को विश्वास में लिये बग़ैर नहीं उठाया। पाँच हज़ार नौजवानों की एक वालण्टियर सेना गठित करने का प्रश्न कभी भी केन्द्रीय समिति के सामने बहस के लिए नहीं आया। दूसरी बात यह कि इस प्रकार की किसी वालण्टियर सेना का विचार हवा में पुल बाँधने जैसा विचार था। चार-पाँच दिनों के लिए थैलियों के सहारे खुलेतौर पर पाँच हज़ार की वालण्टियर सेना (कांग्रेस द्वारा - स.) खड़ी कर लेना एक बात थी, लेकिन गुप्त क्रान्तिकारी काम के लिए राजनीतिक तौर पर सजग, प्रशिक्षित और अनुशासित नौजवानों की इतनी बड़ी सेना कुछ महीनों में खड़ी कर लेना सम्भव भी नहीं था। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि भगतसिंह कलकत्ते से जनवरी 1929 के पहले सप्ताह में वापस आये। फ़रवरी में जब यतीन्द्रनाथ दास आगरा आये तो हममें से हर कोई किसी न किसी रूप में बम फ़ैक्टरी स्थापित करने के काम में व्यस्त हो गया था। फिर मेरठ की गिरफ़्तारियों से पहले फ़रवरी के अन्त में आगरा में ही असेम्बली में बम फेंकने का फ़ैसला लिया गया। ऐसी स्थिति में भगतसिंह का त्रैलोक्य बाबू की सलाह पर अमल करने का प्रयास करना, विफल होना, निराशा और पस्ती का शिकार होना आदि का प्रश्न नहीं उठता था। इस प्रकार की असफलता, निराशा, कुण्ठा आदि की मनगढ़न्त बातों से असेम्बली में बम फेंकने के काम का राजनीतिक महत्त्व ही समाप्त हो जाता है और वह एक व्यक्ति की कुण्ठा और निराशा का परिणाम-मात्र रह जाता है।

ऐसी ही हानिकारक और असेम्बली में बम फेंकने के महत्त्व को कम करने वाली कहानी मन्मथनाथ गुप्त ने दी है। सुखदेव राज (शहीद सुखदेव नहीं - स.), जो 1928 और '29 के पूर्वार्द्ध में कहीं भी तस्वीर में नहीं था, द्वारा प्रसारित एक सौ फ़ीसदी मनगढ़न्त कहानी को आधार बनाकर गुप्त जी ने कहा है कि पार्टी असेम्बली में बम फेंकने के लिए सुखदेव तथा बटुकेश्वर दत्त को भेजने के पक्ष में थी। लेकिन भगतसिंह के प्रति व्यक्तिगत ईर्ष्या के कारण उसने भगतसिंह को बी.के. दत्त के साथ जाने के लिए मजबूर कर दिया। चन्द्रशेखर आज़ाद और दूसरे लोग निकल आने के पक्ष में थे। लेकिन भगतसिंह इसके लिए राज़ी नहीं हुए। उनका तर्क था कि जनता को जगाने के लिए उच्चतम बलिदान की आवश्यकता है।[33]

यहाँ पर यह कहना ही ग़लत है कि असेम्बली में बम फेंकने के लिए सुखदेव को चुना गया था। आगरे में केन्द्रीय कमेटी की पहले दिन की मीटिंग में जो दो नाम तय हुए थे, वे थे बटुकेश्वर दत्त और विजयकुमार सिन्हा। इस काम के लिए किसी भी स्तर पर सुखदेव का नाम कमेटी में विचारार्थ नहीं आया। हमारे सामने विचार-विमर्श का मुख्य विषय राजनीति था न कि व्यक्तिगत ईर्ष्या या वैरभाव, जो सौभाग्यवश उस समय हमारे बीच में नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि असेम्बली में बम फेंकने के लिए विजयकुमार सिन्हा के स्थान पर भगतसिंह को भेजने के लिए सुखदेव पूरी तरह उत्तरदायी था। उसने यह इसलिए किया क्योंकि वह ईमानदारी के साथ विश्वास करता था कि भगतसिंह के अलावा और किसी के जाने से काम का राजनीतिक उद्देश्य पूरा नहीं होगा। जहाँ तक उच्चतम बलिदान का सवाल है, क्रान्तिकारी आन्दोलन में बलिदान की कमी नहीं रही (और हर बलिदान उच्चतम होता है)। ऐसा नहीं था कि भगतसिंह एक निराश एवं विफल मनोरथ नौजवान था, जिसने असेम्बली में बम फेंककर आत्महत्या करने का एक आसान रास्ता निकाल लिया था।

असेम्बली में बम फेंकने का फ़ैसला कैसे और कब लिया गया?

राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष के इतिहास में तीसरे दशक के अन्तिम वर्ष, ख़ासकर 1928-30 के वर्ष, बड़े ही महत्त्वपूर्ण थे। यही समय था जब वामपन्थी शक्तियों ने संगठित रूप से एवं दृढ़तापूर्वक बोलना आरम्भ कर दिया था। सर्वहारा वर्ग की बड़ी-बड़ी जुझारू हड़तालों ने देशव्यापी रूप धारण कर लिया था। मज़दूरों की संगठित ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ बढ़ती जा रही थीं, जिसके फलस्वरूप मज़दूर काम के हालात में सुधार और मज़दूरी में बढ़ोत्तरी के लिए और अधिक मुस्तैदी के साथ संघर्ष करने की स्थिति में आ गये थे। मज़दूरों, नौजवानों और विद्यार्थियों में कम्युनिस्टों का प्रभाव तेज़ी के साथ बढ़ रहा था : देश में पहली बार बायें बाज़ू का राजनीतिक आन्दोलन सर उठा रहा था। उस समय की युवा पीढ़ी की सोच की दिशा का वर्णन करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, "बुद्धिजीवियों, यहाँ तक कि सरकारी अफ़सरों में भी साम्यवाद और समाजवाद के अस्पष्ट विचार फैल चुके थे। कांग्रेस के नौजवान पुरुष और महिलाएँ, जो पहले 'ब्राइस ऑन डेमोक्रेसी', मार्ले और कीथ और मैज़िनी को पढ़ा करते थे, अब जब भी उन्हें उपलब्ध होतीं तो समाजवाद, कम्युनिज़्म और रूस पर किताबें पढ़ते थे : इन नये विचारों की तरफ़ लोगों का रुझान पैदा करने में मेरठ षड्यन्त्र केस ने काफ़ी सहायता पहुँचाई थी। विश्व-आर्थिक संकट ने भी लोगों को इस तरफ़ ध्यान देने के लिए मजबूर कर दिया था। चारों तरफ़ जिज्ञासा की एक नयी भावना स्पष्ट दिखलायी पड़ रही थी

– मौजूदा संस्थाओं के प्रति एक प्रश्नवाचक और चुनौती भरी जिज्ञासा। उस मानसिक तूफ़ान का आम रुख स्पष्ट था। लेकिन वह अभी एक हलकी बयार थी – स्वयं अपने से अनभिज्ञ।"[34]

अंग्रेज़ साम्राज्यवादियों को इस सबसे चिन्ता हुई और उन्होंने आन्दोलन को प्रारम्भ में ही कुचल देने का फ़ैसला किया। अधिकारी कितने घबराये हुए थे और सरकार का दिमाग़ किस तरह काम कर रहा था, यह देखने के लिए एक मिसाल ही पर्याप्त होगी। गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक सर डेविड पैट्रिक ने 'भारत में कम्युनिज़्म' पर अपनी रिपोर्ट में, जिसे उन्होंने 1929 में तैयार किया था, 'बोल्शेविक अभिशाप' के स्वरूप का नीचे लिखे शब्दों में वर्णन किया है : "सन् 1920 में तीसरी इण्टरनेशनल ने अपनी दूसरी कांग्रेस में जो थीसिस पास की थी उसमें सर सेसिल केए ने भारत के ख़िलाफ़ एक सुनिश्चित षड्यन्त्र के कीटाणुओं को ठीक ही पहचाना था। उस थीसिस में कहा गया था, 'उपनिवेशिक और अर्द्ध-उपनिवेशिक देशों का राष्ट्रीय आन्दोलन वस्तुगत दृष्टिकोण से और बुनियादी तौर पर क्रान्तिकारी संघर्ष है, और इसलिए वह विश्व-क्रान्तिकारी संघर्ष का हिस्सा है।' इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि ग्रेट ब्रिटेन ने बोल्शेविक हमले का मुख्य प्रहार अपने ऊपर लिया है...क्योंकि वह विश्व-क्रान्ति, जिसे बोल्शेविक लोग अपनी अन्तिम सफलता के लिए ज़रूरी शर्त मानते हैं, के ख़िलाफ़ मुख्य क़िलों में से एक है। बोल्शेविकों का यह विश्वास है कि ब्रिटिश साम्राज्य में भारत सबसे कमज़ोर बिन्दु है। और वे इसे धार्मिक विश्वास के रूप में दिल में सँजोये हुए हैं कि जब तक भारत आज़ाद नहीं हो जाता तब तक रूस इंग्लैण्ड के अभिशाप से मुक्त नहीं हो सकेगा।"[35]

जे. क्रेरर ने, जो उस समय भारत सरकार के होम मेम्बर थे, कहा था कि एक व्यवस्थित समाज के लिए कम्युनिज़्म के सिद्धान्त और अमल से अधिक विध्वंसक और कोई चीज़ नहीं हो सकती।[36]

कम्युनिज़्म, बायें बाज़ू की शक्तियों और श्रमिक वर्ग के आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल पेश करने का फ़ैसला किया – पब्लिक सेफ़्टी बिल और ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल। पहला बिल उन लोगों के ख़िलाफ़ था जो ब्रिटिश-भारत या किसी भारतीय रजवाड़े के निवासी नहीं थे। पहले बिल में गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया था कि वह अंग्रेज़ या अन्य विदेशी कम्युनिस्ट को भारत से निकाल दें। दूसरे बिल का उद्देश्य मज़दूरों के ट्रेड यूनियन अधिकारों की कटौती करना था।

असेम्बली में पूरे विरोध पक्ष ने, जनता ने और प्रेस ने दोनों बिलों का जमकर विरोध किया। इस चौमुखी विरोध को नज़रअन्दाज़ करते हुए सरकार ने 6 सितम्बर, 1928 को पब्लिक सेफ़्टी बिल असेम्बली में पेश किया। 24 सितम्बर को सदन

ने उसे नामंज़ूर कर दिया। जनवरी 1929 में कुछ फेर-बदल के साथ सरकार ने उसे फिर असेम्बली के सामने रखा।[37]

जिस समय समाचारपत्रों में यह ख़बर छपी कि सरकार ने बिल को असेम्बली में फिर से पेश करने का फ़ैसला कर लिया है उस समय भगतसिंह आगरे में था। समाचार पर उसकी जो प्रतिक्रिया हुई वह बड़ी तीखी थी। उसने कहा कि सरकार के इस मनमानेपन के ख़िलाफ़ प्रतिवाद के रूप में कुछ न कुछ ज़रूर करना चाहिए। वह लाहौर गया, सुखदेव के साथ अपने प्रस्तावों पर बात की, वापस आया, केन्द्रीय कमेटी की बैठक बुलायी और उसके सामने अपने प्रस्ताव रखे। संक्षेप में उसके प्रस्ताव इस प्रकार थे : (1) पार्टी को असेम्बली में बम फेंककर सरकार के इस सख़्त एवं हठी रवैये का विरोध करना चहिए; (2) इस काम को करने के लिए जो साथी तैनात किये जायें वे काम के बाद भागने की कोशिश करने के बजाय वहीं आत्मसमर्पण कर दें और केस के दौरान अदालत को पार्टी के उद्देश्यों के प्रचार के लिए मंच के तौर पर इस्तेमाल करें; और (3) इस फ़ैसले को कार्यान्वित करने के लिए एक और साथी के साथ उसे स्वयं जाने की अनुमति दी जाये। भगतसिंह के पहले दो सुझावों का केन्द्रीय कमेटी के सभी सदस्यों ने स्वागत किया। लेकिन उसका तीसरा सुझाव किसी ने भी नहीं माना। यह मीटिंग आगरे में हुई थी और पहले दिन सुखदेव उसमें उपस्थित नहीं था। वह दूसरे दिन आया। सुखदेव के आ जाने पर भगतसिंह को बल मिला और काफ़ी बहस के बाद अन्त में कमेटी ने भगतसिंह का तीसरा प्रस्ताव भी मान लिया।

दूसरा बिल (ट्रेड डिस्प्यूट बिल) असेम्बली में 4 सितम्बर, 1928 को पेश किया गया था। सदन ने उसे सेलेक्ट कमेटी के पास भेज दिया। वहाँ से कुछ फेर-बदल के साथ उसे 2 अप्रैल, 1929 को बहस के लिए असेम्बली के सामने फिर लाया गया। सदन ने 8 अप्रैल को 38 के ख़िलाफ़ कुछ वोटों से उसे पास कर दिया। जैसे ही अध्यक्ष महोदय वोटिंग का परिणाम घोषित करने के लिए उठे वैसे ही भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दर्शक दीर्घा से असेम्बली भवन में बम फेंके और नारे लगाने के साथ-साथ परचे भी गिराये, जिनमें बम फेंकने के राजनीतिक उद्देश्य को स्पष्ट किया गया था। यह परचा उसी दिन *हिन्दुस्तान टाइम्स* के सन्ध्याकालीन परिशिष्ट में प्रकाशित हो गया था। यह हमें क्रान्तिकारी आन्दोलन के एक छोटे दौर में पहुँचा देता है, जिसका ज़िक्र लोग कभी-कभी आतंकवादी-साम्यवाद या टेरो-कम्युनिज़्म के नाम से करते हैं।

टेरो-कम्युनिज़्म या आतंकवादी-साम्यवाद

लाहौर तथा कानपुर के क्रान्तिकारियों ने 1926-27 से ही समाजवाद की ओर बढ़ना शुरू कर दिया था। आठ-नौ सितम्बर 1928 की दिल्ली मीटिंग में हालाँकि

समाजवाद को सिद्धान्त के रूप में और समाजवादी समाज की स्थापना को अन्तिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था, अमल में हम लोग उसी पुराने व्यक्तिवादी ढंग के कामों में ही लगे रहे। हम मज़दूरों, किसानों, युवकों और मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों को संगठित करने की बात तो करते थे लेकिन पंजाब में नौजवान भारत सभा के गठन को छोड़कर और कहीं भी संजीदगी के साथ उस दिशा में क़दम उठाने की कोशिश नहीं की गयी। उस मायने में हमारी वैज्ञानिक समाजवाद अर्थात मार्क्सवाद की समझ अधकचरी थी। मार्क्सवाद अमल को सिद्धान्त से अलग करने की इजाज़त नहीं देता, यह बात हम समझ नहीं पाये थे और यह कि उसमें व्यक्तिगत कामों के लिए कोई स्थान नहीं है। हम हिंसात्मक गतिविधियों को, जिसमें ज़ालिम सरकारी अधिकारियों की हत्या और छुटपुट विद्रोह शामिल थे, मज़दूरों, किसानों, युवकों और विद्यार्थियों के जन-संगठन बनाने के काम में मिलाना चाहते थे। लेकिन अमल में हमारा ज़ोर हिंसात्मक गतिविधियों और सशस्त्र कामों की तैयारी तक ही सीमित रहा। हमारा विश्वास था कि लोगों को नींद से जगाने के लिए और सरकारी दमन का जवाब देने के लिए यह सब आवश्यक है। कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के अवसर पर दिसम्बर, 1928 में भगतसिंह ने का. सोहन सिंह जोश से कहा था, "हम आपकी पार्टी के कामों से और उसके कार्यक्रम से सौ फ़ीसदी सहमत हैं, लेकिन कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते हैं जब जनता में विश्वास की भावना जागृत करने के लिए दुश्मन के प्रहार का सशस्त्र कामों द्वारा तत्काल जवाब देना आवश्यक हो जाता है।"[38] उस समय हमारे दिमाग़ इसी तरह काम कर रहे थे। हमारी समझ में निहित अन्तरविरोध का अपना तर्क था। मज़दूरों-किसानों को संगठित करने का हमारा फ़ैसला केवल एक पवित्र इरादा बनकर ही रह गया। हमारी शक्ति का अधिकांश हिस्सा प्रतिशोधात्मक कामों को संगठित करने में ही ज़ाया हुआ।

हमारी ग़लत समझ को ठीक करने का एक प्रयास तीसरे इण्टरनेशनल ने किया था। यह प्रयास विदेश में गठित भारत की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा "राष्ट्रवादियों से अपील" के ज़रिये किया गया था। यह अपील 15 दिसम्बर, 1924 के *वैनगार्ड* के परिशिष्ट में प्रकाशित हुई थी। अपील में क्रान्तिकारियों के बारे में कहा गया था :

"गुप्त सभाओं द्वारा किये जाने वाले छुटपुट आतंकवादी काम भी कुछ कम प्रभावहीन नहीं हैं। इस प्रकार के व्यर्थ उग्रवाद को अपनाने वालों की क्रान्ति की समझ भी उतनी ही ग़लत है। समाज की मौजूदा स्थिति में ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती है कि राजनीतिक और सामाजिक क्रान्तियाँ अहिंसात्मक होंगी या उनमें रक्तपात नहीं होगा। लेकिन हर रक्तपात या हिंसात्मक काम को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता। एक ख़ास सामाजिक व्यवस्था को या राजनीतिक संस्था को उसके चन्द समर्थकों को मारकर कभी भी समाप्त नहीं किया जा सकता है। और

यह तो और भी नामुमकिन है कि थोड़े से सरकारी अफ़सरों को मारकर या ब्रिटिश पार्लियामेण्ट से बहुत से सुधार पास करवाकर देश की आज़ादी हासिल की जा सके। ये दोनों उपाय समान रूप से प्राणहीन हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी बुराई की जड़ पर चोट नहीं करता। दोनों ही राजनीतिक भूल हैं। लेकिन आतंकवादियों को 'क्रान्तिकारी अपराधी' कहना निपट मूर्खता है, क्योंकि 'संवैधानिकतावादी' निश्चित रूप से ग़ैर-क्रान्तिकारी हैं और निर्णायक घड़ी आते ही वे प्रतिक्रियावादी हो जायेंगे।"[39]

उसी लेख में दूसरी जगह पर क्रान्ति की सही-सही परिभाषा दे दी गयी थी :

"क्रान्ति क्या है? भारत के राष्ट्रीय हलकों में इसके बारे में एक बड़ी ग़लत धारणा बनी हुई है। आमतौर पर क्रान्ति को बम, रिवाल्वर और गुप्त संस्थाओं से जोड़ दिया जाता है। भारतीय राजनीतिक शब्दकोष में बहु-प्रचलित वाक्य 'क्रान्तिकारी अपराध' क्रान्ति की इसी ग़लत अवधारणा की उपज है। बहरहाल, क्रान्ति इस सबसे कहीं अधिक गम्भीर समस्या है। क्रान्ति एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, जो प्रस्तुत ऐतिहासिक युग का अन्त और उसके स्थान पर एक नये युग का शुभारम्भ करती है। चूँकि जाने वाले समाज के प्रतिनिधि या दलाल, आर्थिक वर्ग और राजनीतिक संस्थाएँ, जो उस समाज में प्रचलित हालात से लाभान्वित होते रहे हैं, एक भयानक प्रतिरोध के बग़ैर ऐसा कोई परिवर्तन नहीं होने देंगे जिससे उनके प्रभुत्व का अन्त हो जाये और, जैसाकि आमतौर पर होता है, जिसका अन्त उनके चौमुखी विनाश में हो जाये। इसीलिए आमतौर पर राजनीतिक हिंसा और सामाजिक उथल-पुथल 'क्रान्ति' कहलाने वाली ऐतिहासिक घटना के अंग बन जाते हैं।"[40]

सन् 1925 में यंग कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल ने बंगाल के युवा क्रान्तिकारी संगठन के नाम एक अपील शाया की थी। यह यंग कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के घोषणापत्र के रूप में थी जो *मासेज़* के जिल्द 1, नम्बर 7 में प्रकाशित हुआ था। घोषणापत्र में इस बात को स्वीकार किया गया था कि पूर्व के क्रान्तिकारी नौजवान राष्ट्रीय आज़ादी की लड़ाई में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। जनता के लिए अपना जीवन बलिदान करने वाले 'हीरो-आतंकवादी' के साहस और बहादुरी के प्रति गहरा आदर व्यक्त करते हुए घोषणापत्र ने कहा था कि "एक क्रान्तिकारी जो जनता के लिए लड़ रहा है उसे नैतिक अधिकार है कि वह जनता का गला घोंटने वालों और जल्लादों को रास्ते से हटा दे।"[41]

दुर्भाग्यवश इनमें से कोई भी दस्तावेज़ उस समय हमें नहीं मिला और हमें अपने अनुभवों के सहारे ही आगे बढ़ना पड़ा। व्यक्तिगत कामों का दायरा बहुत सीमित है यह समझने में हमें तीन साल लग गये। हम क़दम-ब-क़दम समाजवाद की तरफ़ बढ़ रहे थे। गिरफ़्तारी के बाद जेल में काफ़ी समय मिला, पढ़ने के लिए

काफ़ी सामग्री मिली, आपस में बहस करने और अपने अतीत पर संजीदगी से सोचने का काफ़ी मौक़ा मिला और तब कहीं जाकर हम सही नतीजे पर पहुँच पाये।

इसका यह मतलब नहीं कि जिस दौर की समीक्षा की जा रही है उसमें सकारात्मक कुछ था ही नहीं। उसकी कमज़ोरियों के साथ ही उसके कुछ सकारात्मक और मज़बूत पहलू भी थे। मैं अपनी और अपने साथियों की समझ की ख़ास कमियों पर रोशनी डाल चुका हूँ। संक्षेप में फिर से दोहरा दूँ, पहली बात तो यह कि हमारा कम्युनिज़्म को स्वीकार करना मार्क्सवाद के सही अध्ययन पर आधारित नहीं था। दूसरी कमज़ोरी थी मज़दूरों और किसानों को संगठित करने और जवाबी आतंकवाद के बीच तालमेल बिठलाने की अव्यावहारिकता को न समझ पाना।

इन सारी कमियों और सीमाओं के बावजूद इस थोड़े समय चलने वाले चर्चित दौर के खाते में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हैं। लाहौर की 'नौजवान भारत सभा का घोषणापत्र' (1928), असेम्बली बम केस के दौरान भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा अदालत के सामने दिया गया बयान (1929), कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के समय बाँटा गया 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ का घोषणापत्र' (दिसम्बर 1929) और 'बम का दर्शन' (जनवरी 1930) उस युग के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि दस्तावेज़ हैं। इन दस्तावेज़ों के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' (हिसप्रस) का पहला आगे बढ़ा हुआ क़दम था मार्क्सवाद को सिद्धान्त के रूप में और समाजवाद को अन्तिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार करना। बंगाल में भी आन्दोलन का रुख़ यही था, हालाँकि गति अपेक्षाकृत धीमी थी। जिस समय हिसप्रस ने समाजवाद को डंके की चोट पर अपना अन्तिम उद्देश्य घोषित कर दिया था, उस समय बंगाल के लगभग सभी क्रान्तिकारी दल और प्रमुख पार्टियाँ इस सवाल पर अनिश्चितता की स्थिति में थे।

समाजवाद को ध्येय के रूप में स्वीकार करने के अलावा इस दौर के क्रान्तिकारी मनुष्य द्वारा मनुष्य के और एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण से मुक्त वर्गहीन समाज के पक्ष में थे। उन्होंने एलान किया कि उनकी लड़ाई सिर्फ़ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ ही नहीं है, बल्कि विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ है। उनके दिलों में सोवियत यूनियन के प्रति प्रगाढ़ आदर और अपनापन था। उनका विश्वास था कि क्रान्ति के बाद जो सरकार बनेगी उसका रूप एक प्रकार की सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का होगा। उन्होंने ईश्वर, धर्म और रहस्यवाद से पूरी तरह छुटकारा पा लिया था। वे धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करते थे और उनका दृष्टिकोण घोर साम्प्रदायिकतावाद विरोधी था।

असेम्बली बमकाण्ड के बाद हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ के अधिकांश साथी गिरफ़्तार कर लिये गये। उन्होंने अपने मुक़दमे की सुनवाई के दौरान अपने

दृष्टिकोण को प्रचारित करने, समाजवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाने और क्रान्तिकारी पार्टी के उद्देश्यों तथा प्रयोजनों को जनता के सामने रखने के लिए अदालत का मंच के रूप में जमकर इस्तेमाल किया।

उनकी यह रणनीति क़ामयाब हुई। इसके बारे में एस.एन. मजूमदार ने लिखा है : "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन की तमाम ग़लतियों और कमज़ोरियों के बावजूद समूचे राष्ट्रीय आन्दोलन में और तरुण क्रान्तिकारियों को साम्यवाद की ओर आकर्षित करने में इस पार्टी के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।"[42]

जी.एस. देओल के अनुसार, "क्रान्तिकारी आन्दोलन का कार्यक्षेत्र चाहे जितना सीमित रहा हो उसने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की गति को एक दूसरी धारा के माध्यम से और तेज़ किया। बेशक यह कहा जा सकता है कि उनके (भगतसिंह और उनके साथियों के - शि.व.) कार्यकलापों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए दिसम्बर 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करने और पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास करने का पथ प्रशस्त किया।"[43]

देओल के अनुसार क्रान्तिकारियों के कार्यकलापों और संघर्षों ने देश में अत्यन्त विस्फोटक स्थिति पैदा कर दी थी, जिसके कारण कांग्रेस 1930 का असहयोग आन्दोलन शुरू करने के लिए मजबूर हो गयी थी। "यह आन्दोलन भगतसिंह और उनके साथियों के उग्र आन्दोलन के विकल्प के रूप में शुरू किया गया था। इस मत की पुष्टि महात्मा गाँधी द्वारा 2 मार्च, 1930 को वायसराय को लिखे गये एक पत्र के इस अंश से होती है : 'हिंसावादी पार्टी अपनी जगह बनाती जा रही है और उसने अपने अस्तित्व का अहसास कराना शुरू कर दिया है।' उन्होंने आगे स्पष्ट किया था कि वे जिस तरह का अहिंसक आन्दोलन शुरू करना चाहते हैं, उससे न सिर्फ़ ब्रिटिश हुकूमत की हिंसक शक्ति का बल्कि उभरते हुए हिंसावादी दल की संगठित हिंसक शक्तियों का भी प्रतिरोध किया जा सकेगा।"[44]

वैज्ञानिक समाजवाद की ओर

'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' के अधिकांश प्रमुख नेता 1929 के मध्य तक गिरफ़्तार करके जेलों में बन्द कर दिये गये थे, जहाँ उन्हें पढ़ने और विचार-विमर्श करने का भरपूर मौक़ा मिला। इससे उनके अन्दर जो नयी समझ पैदा हुई थी, उसके आधार पर उन्होंने अपने पूरे अतीत को, ख़ासकर वैयक्तिक कार्यकलापों और शौर्य प्रदर्शन के आदर्श को नये सिरे से जाँचा-परखा और अपनी अब तक की कार्यप्रणाली को छोड़कर समाजवादी क्रान्ति का रास्ता अपनाने का निश्चय किया। गहन अध्ययन और बोर्स्टल जेल में दूसरे साथियों से लम्बे विचार-विमर्श के बाद भगतसिंह इस निर्णय पर पहुँचे कि यहाँ-वहाँ कुछ भेदियों और सरकारी अफ़सरों

की वैयक्तिक हत्याओं से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

भगतसिंह ने 19 अक्टूबर, 1929 को पंजाब स्टूडेण्ट्स की कांग्रेस के नाम एक सन्देश भेजा था जिसमें उन्होंने कहा था – "आज हम नौजवानों को बम और पिस्तौल अपनाने के लिए नहीं कह सकते।...इन्हें औद्योगिक क्षेत्रों की गन्दी बस्तियों में और गाँवों के टूटे-फूटे झोंपड़ों में रहने वाले करोड़ों लोगों को जगाना है।"

2 फ़रवरी, 1931 को उन्होंने 'युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' एक अपील लिखी थी जिसमें उन्होंने जनसाधारण के बीच काम करने के महत्त्व को बारम्बार रेखांकित किया था। उन्होंने कहा था, "गाँवों और कारख़ानों में किसान और मज़दूर ही असली क्रान्तिकारी सैनिक हैं।"

इसी अपील में भगतसिंह ने बलपूर्वक इस बात से इन्कार किया था कि वे आतंकवादी हैं। उनका कहना था, "मैंने एक आतंकवादी की तरह काम किया है। लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं तो ऐसा क्रान्तिकारी हूँ जिसके पास एक लम्बा कार्यक्रम और उसके बारे में सुनिश्चित विचार होते हैं। मैं पूरी ताक़त के साथ बताना चाहता हूँ कि मैं आतंकवादी नहीं हूँ और कभी था भी नहीं, कदाचित उन कुछ दिनों को छोड़कर जब मैं अपने क्रान्तिकारी जीवन की शुरुआत कर रहा था। मुझे विश्वास है कि हम ऐसे तरीक़ों से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।" उन्होंने नौजवान राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सलाह दी कि वे मार्क्स और लेनिन का अध्ययन करें, उनकी शिक्षा को अपना मार्गदर्शक बनायें, जनता के बीच जायें, मज़दूरों, किसानों और शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानों के बीच काम करें, उन्हें राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करें, उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न करें, उन्हें यूनियनों में संगठित करें, आदि। उन्होंने नवयुवकों से यह भी कहा कि यह सारा काम तब तक सम्भव नहीं है जब तक जनता की एक अपनी पार्टी न हो। वे किस तरह की पार्टी चाहते थे इसका खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा था, "हमें पेशेवर क्रान्तिकारियों की ज़रूरत है – यह शब्द लेनिन को बहुत प्रिय था – पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की, जिनकी क्रान्ति के सिवा और कोई आकांक्षा न हो, और न जीवन का कोई दूसरा लक्ष्य हो। ऐसे कार्यकर्ता जितनी बड़ी संख्या में एक पार्टी के रूप में संगठित होंगे, उतनी ही तुम्हारी सफलता की सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी।"

उन्होंने आगे कहा :

"व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ने के लिए आपको जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है, वह है एक पार्टी जिसके पास जिस टाइप के कार्यकर्ताओं का ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है वैसे कार्यकर्ता हों – ऐसे कार्यकर्ता जिनके दिमाग़ साफ़ हों और समस्याओं की तीखी पकड़ हो और पहल करने और तुरन्त फ़ैसला लेने की क्षमता हो। इस पार्टी का अनुशासन बहुत कठोर होगा और यह ज़रूरी नहीं है कि वह भूमिगत पार्टी हो, बल्कि भूमिगत नहीं होनी चाहिए...पार्टी को अपने काम

की शुरुआत अवाम के बीच प्रचार से करनी चाहिए। किसानों और मज़दूरों को संगठित करने और उनकी सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यह बहुत ज़रूरी है। इस पार्टी को कम्युनिस्ट पार्टी का नाम दिया जा सकता है।"

यहाँ भगतसिंह खुल्लम-खुल्ला मार्क्सवाद, साम्यवाद और एक साम्यवादी पार्टी की वकालत करते दिखायी देते हैं।

क्रान्ति की परिभाषा

क्रान्ति के सम्बन्ध में भगतसिंह के विचार बहुत स्पष्ट थे। निचली अदालत में जब उनसे पूछा गया कि क्रान्ति शब्द से उनका क्या मतलब है, तो उत्तर में उन्होंने कहा था, "क्रान्ति के लिए ख़ूनी संघर्ष अनिवार्य नहीं है, और न ही उसमें व्यक्तिगत प्रतिहिंसा का कोई स्थान है। वह बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय यह है कि वर्तमान व्यवस्था, जो खुलेतौर पर अन्याय पर टिकी हुई है, बदलनी चाहिए।" अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था, "क्रान्ति से हमारा अभिप्राय अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से है जिसको इस प्रकार के घातक ख़तरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुसत्ता को मान्यता हो तथा एक विश्वसंघ मानवजाति को पूँजीवाद के बन्धन से और साम्राज्यवादी युद्धों से उत्पन्न होने वाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सके।"

समाजवाद की दिशा में भगतसिंह की वैचारिक प्रगति की रफ़्तार बहुत तेज़ थी। उन्होंने 1924 से 1928 के बीच विभिन्न विषयों का विस्तृत अध्ययन किया था। लाला लाजपत राय की द्वारकादास लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष राजाराम शास्त्री के अनुसार उन दिनों भगतसिंह वस्तुतः "किताबों को निगला करता था।" उनके प्रिय विषय थे रूसी क्रान्ति, सोवियत संघ, आयरलैण्ड, फ़्रांस और भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन, अराजकतावाद और मार्क्सवाद। उन्होंने और उनके साथियों ने 1928 के अन्त तक समाजवाद को अपने आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य घोषित कर दिया था और अपनी पार्टी का नाम भी तदनुसार बदल दिया था। उनकी यह वैचारिक प्रगति उनके फाँसी पर चढ़ने के दिन तक जारी रही।

ईश्वर और धर्म के बारे में

ईश्वर, धर्म तथा रहस्यवाद पर भगतसिंह के विचारों के बारे में कुछ शब्द कहे बग़ैर यह भूमिका अधूरी रह जायेगी। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि आज हर तरह के प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी और साम्प्रदायिकतावादी लोग भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आज़ाद के नाम और यश को अपनी निज की राजनीति और विचारधारा के पक्ष में इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहे हैं।

अपनेआप को नास्तिक बताते हुए "भगतसिंह ने शुरू के क्रान्तिकारियों के तरीक़े और दृष्टिकोण के लिए पूरा सम्मान प्रदर्शित किया है और उनकी धार्मिकता के स्रोतों की पड़ताल की है। वे संकेत करते हैं कि अपने स्वयं के राजनीतिक कार्यों की वैज्ञानिक समझ के अभाव में उन क्रान्तिकारियों को अपनी आध्यात्मिकता की रक्षा करने, वैयक्तिक प्रलोभनों के विरुद्ध संघर्ष करने, अवसाद से उबरने, भौतिक सुखों और अपने परिवारों तथा जीवन तक को त्यागने की सामर्थ्य जुटाने के लिए विवेकहीन विश्वासों एवं रहस्यवादिता की आवश्यकता थी। एक व्यक्ति जब निरन्तर अपने जीवन को जोखिम में डालने और दूसरे सारे बलिदान करने के लिए तत्पर होता है तो उसे प्रेरणा के गहरे स्रोत की आवश्यकता होती है। शुरू के क्रान्तिकारी, आतंकवादियों की यह अनिवार्य आवश्यकता रहस्यवाद और धर्म से पूरी होती थी। लेकिन उन लोगों को ऐसे स्रोतों से प्रेरणा लेने की ज़रूरत नहीं रह गयी थी जो अपने कामों की प्रकृति को समझते थे, जो क्रान्तिकारी विचारधारा की दिशा में आगे बढ़ चुके थे, जो कृत्रिम आध्यात्मिकता की बैसाखी लगाये बिना अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सकते थे, जो स्वर्ग और मोक्ष के प्रलोभन और आश्वासन के बिना ही विश्वास के साथ और निर्भीक भाव से फाँसी के तख़्ते पर चढ़ सकते थे, जो दलितों की मुक्ति और स्वतन्त्रता के पक्ष में इसलिए लड़े क्योंकि लड़ने के अलावा और कोई रास्ता ही न था।"[46]

असेम्बली बमकाण्ड के केस की अपील के दौरान लाहौर हाईकोर्ट में बयान देते हुए भगतसिंह ने विचारों की महत्ता पर बल देते हुए कहा था : "इन्क़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ की जाती है," और उसके आधार पर उन्होंने यह सूत्र प्रस्तुत किया कि "आलोचना और स्वतन्त्र विचार किसी क्रान्तिकारी के दो अपरिहार्य गुण हैं," और यह कि "जो आदमी प्रगति के लिए संघर्ष करता है उसे पुराने विश्वासों की एक-एक बात की आलोचना करनी होगी, उस पर अविश्वास करना होगा और उसे चुनौती देनी होगी। इस प्रचलित विश्वास के एक-एक कोने में झाँककर उसे विवेकपूर्वक समझना होगा।" उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा था कि "निरा विश्वास और अन्धविश्वास ख़तरनाक है, इससे मस्तिष्क कुण्ठित होता है और आदमी प्रतिक्रियावादी हो जाता है।"

भगतसिंह स्वीकार करते थे कि "ईश्वर में कमज़ोर आदमी को ज़बरदस्त आश्वासन और सहारा मिलता है और विश्वास उसकी कठिनाइयों को आसान ही नहीं बल्कि सुखकर भी बना देता है।" वे यह भी जानते थे कि "आँधी और तूफ़ान में अपने पाँवों पर खड़े रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है।" लेकिन वे सहारे के लिए किसी भी बनावटी अंग के विचार को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते थे। वे कहते थे, "अपनी नियति का सामना करने के लिए मुझे किसी नशे की ज़रूरत

नहीं है।" उन्होंने एलान किया था कि "जो आदमी अपने पाँवों पर खड़े होने की कोशिश करता है और यथार्थवादी हो जाता है, उसे धार्मिक विश्वास को एक तरफ़ रखकर, जिन-जिन मुसीबतों और दुखों में परिस्थितियों ने उसे डाल दिया है, उनका एक मर्द की तरह बहादुरी के साथ सामना करना होगा।"

ईश्वर, धार्मिक विश्वास और धर्म को यह तिलांजलि भगतसिंह के लिए न तो आकस्मिक थी और न ही उनके अभिमान या अहं का परिणाम थी। उन्होंने बहुत पहले 1926 में ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार कर दिया था। उन्हीं के शब्दों में, "1926 के अन्त तक मुझे इस बात पर यक़ीन हो गया था कि सृष्टि का निर्माण, व्यवस्थापन और नियन्त्रण करने वाली किसी सर्वशक्तिमान परम सत्ता के अस्तित्व का सिद्धान्त एकदम निराधार है।"

भावना कभी नहीं मरती

वह जुलाई, 1930 का अन्तिम रविवार था। भगतसिंह लाहौर सेण्ट्रल जेल से हमें मिलने के लिए बोर्स्टल जेल आये थे। वे इस तर्क पर सरकार से यह सुविधा हासिल करने में क़ामयाब हो गये थे कि उन्हें दूसरे अभियुक्तों के साथ बचाव के तरीक़ों पर बातचीत करनी है। तो उस दिन हम किसी राजनीतिक विषय पर बहस कर रहे थे कि बातों का रुख़ फ़ैसले की तरफ़ मुड़ गया, जिसका हम सबको बेसब्री से इन्तज़ार था। मज़ाक़-मज़ाक़ में हम एक-दूसरे के ख़िलाफ़ फ़ैसले सुनाने लगे, सिर्फ़ राजगुरु और भगतसिंह को इन फ़ैसलों से बरी रखा गया। हम जानते थे कि उन्हें फाँसी पर लटकाया जायेगा।

"और राजगुरु और मेरा फ़ैसला? क्या आप लोग हमें बरी कर रहे हैं?" मुस्कुराते हुए भगतसिंह ने पूछा।

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

"असलियत को स्वीकार करते डर लगता है?" धीमे स्वर में उन्होंने पूछा। चुप्पी छाई रही।

हमारी चुप्पी पर उन्होंने ठहाका लगाया और बोले, "हमें गरदन से फाँसी के फन्दे से तब तक लटकाया जाये जब तक कि हम मर न जायें। यह है असलियत। मैं इसे जानता हूँ। तुम भी जानते हो। फिर इसकी तरफ़ से आँखें क्यों बन्द करते हो?"

अब तक भगतसिंह अपने रंग में आ चुके थे। वे बहुत धीमे स्वर में बोल रहे थे। यही उनका तरीक़ा था। सुनने वालों को लगता था कि वे उन्हें फुसलाने की कोशिश कर रहे हैं। चिल्लाकर बोलना उनकी आदत नहीं थी। यही शायद उनकी शक्ति भी थी।

वे अपने स्वाभाविक अन्दाज़ में बोलते रहे, "देशभक्ति के लिए यह सर्वोच्च

पुरस्कार है, और मुझे गर्व है कि मैं यह पुरस्कार पाने जा रहा हूँ। वे सोचते हैं कि मेरे पार्थिव शरीर को नष्ट करके वे इस देश में सुरक्षित रह जायेंगे। यह उनकी भूल है। वे मुझे मार सकते हैं, लेकिन मेरे विचारों को नहीं मार सकते। वे मेरे शरीर को कुचल सकते हैं, लेकिन मेरी भावनाओं को नहीं कुचल सकेंगे। ब्रिटिश हुकूमत के सिर पर मेरे विचार उस समय तक एक अभिशाप की तरह मँडराते रहेंगे जब तक वे यहाँ से भागने के लिए मजबूर न हो जायें।"

भगतसिंह पूरे आवेश में बोल रहे थे। कुछ समय के लिए हम लोग भूल गये कि जो आदमी हमारे सामने बैठा है वह हमारा सहयोगी है। वे बोलते जा रहे थे : "लेकिन यह तस्वीर का सिर्फ़ एक पहलू है। दूसरा पहलू भी उतना ही उज्ज्वल है। ब्रिटिश हुकूमत के लिए मरा हुआ भगतसिंह जीवित भगतसिंह से ज़्यादा ख़तरनाक होगा। मुझे फाँसी हो जाने के बाद मेरे क्रान्तिकारी विचारों की सुगन्ध हमारे इस मनोहर देश के वातावरण में व्याप्त हो जायेगी। वह नौजवानों को मदहोश करेगी और वे आज़ादी और क्रान्ति के लिए पागल हो उठेंगे। नौजवानों का यह पागलपन ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को विनाश के कगार पर पहुँचा देगा। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं बेसब्री के साथ उस दिन का इन्तज़ार कर रहा हूँ जब मुझे देश के लिए मेरी सेवाओं और जनता के लिए मेरे प्रेम का सर्वोच्च पुरस्कार मिलेगा।"

भगतसिंह की भविष्यवाणी एक साल के अन्दर ही सच साबित हुई। उनका नाम मौत को चुनौती देने वाले साहस, बलिदान, देशभक्ति और संकल्पशीलता का प्रतीक बन गया। समाजवादी समाज की स्थापना का उनका सपना शिक्षित युवकों का सपना बन गया और 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' का उनका नारा समूचे राष्ट्र का युद्धनाद हो गया। 1930-32 में जनता एक होकर उठ खड़ी हुई। कारागार, कोड़े और लाठियों के प्रहार उसके मनोबल को तोड़ नहीं सके। यही भावना, इससे भी ऊँचे स्तर पर, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान दिखायी दी थी। भगतसिंह का नाम होंठों पर और उनका नारा अपने झण्डों पर लिये हुए किशोरों और बच्चों ने गोलियों का सामना इस तरह किया मानो वे मक्खन की बनी हुई हों। पूरा राष्ट्र पागल हो उठा था। और फिर आया 1945-46 का दौर जब विश्व ने एक सर्वथा नये भारत को करवटें बदलते देखा। मज़दूर, किसान, छात्र, नवयुवक, नौसेना, थलसेना, वायुसेना और पुलिस तक - सब कड़ा प्रहार करने के लिए आतुर थे। निष्क्रिय प्रतिरोध की जगह सक्रिय जवाबी हमले ने ले ली। बलिदान और यातनाओं को सहन करने की जो भावना 1930-31 तक थोड़े से नौजवानों तक सीमित थी, अब समूची जनता में दिखायी दे रही थी। विद्रोह की भावना ने पूरे राष्ट्र को अपनी गिरफ़्त में जकड़ लिया था। भगतसिंह ने ठीक ही तो कहा था, "भावना कभी नहीं मरती।" और उस समय भी वह मरी नहीं थी।

सन्दर्भ

1. Quoted in the Sedition Committee (Rowlatt) Report 1919, p. 3
2. वही, पृष्ठ 2
3. वही, पृष्ठ 2
4. मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, दूसरा संस्करण, 1960, पृष्ठ 44
5. तारिणी शंकर चक्रवर्ती : भारत में सशस्त्र क्रान्ति की भूमिका, क्रान्तिकारी प्रकाशन, मिर्ज़ापुर, पृष्ठ 142
6. Budhadeva Bhattacharya (ed.), Freedom Struggle & Anushilan Samiti, p. 48
7. वही, पृष्ठ 68
8. J. C. Car: Political Troubles in India 1907-1917, Preface, 1973, p. XIII
9. Quoted in Sedition Committee Report, p. 7
10. तारिणी शंकर चक्रवर्ती : पृष्ठ 93
11. G. Adhikari: Challenge, PPH, New Delhi, Jan. 1984, p. 3
12. Tridib Chaudhary: Freedom Struggle and Anushilan Samiti, Introduction, p. XVI-XVII
13. अमेरिका के भारतीय क्रान्तिकारियों की गतिविधियों के बारे में अधिकतर सामग्री एल.पी. माथुर की पुस्तक Indian Revolutionary Movement in United States of America से ली है। यह पुस्तक एस. चाँद एण्ड क., नयी दिल्ली से 1970 में प्रकाशित हुई थी।
14. Paraphrased from Ghadar Weekly, Vol. 1, No. 3 (Dec. 30, 1913) by Sohan Singh Josh, Hindustan Ghadar Party, A Short History, p. 160
15. वही, पृष्ठ 189
16. वही, पृष्ठ 175
17. वही, पृष्ठ 192
18. वही, पृष्ठ 177
19. वही, पृष्ठ 193
20. वही, पृष्ठ 193
21. L.P. Mathur, op. Cit., p. 23
22. वही, पृष्ठ 29
23. Presidential Address to Special (Calcutta) Session of the Indian National Congress, September 1920. Quoted by R.P. Dutt; India Today, p. 280
24. वही, पृष्ठ 284
25. देखिये परिशिष्ट न. 1
26. शचीन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक *बन्दी जीवन से* विश्वमित्र उपाध्याय द्वारा *शचीन्द्रनाथ सान्याल और उनका युग* में उद्धृत, पृष्ठ 195
27. वही, पृष्ठ 156
28. S.N. Mazumdar: In Search of a Revolutionary Theory and a Revolutionary Program. p. 178
29. वही, पृष्ठ 177

30. वही, पृष्ठ 178
31. वही, पृष्ठ 154
32. वही, पृष्ठ 181–2
33. वही, पृष्ठ 183
34. Jawaharlal Nehru: An Autobiography, John Lane, The Bodley Head, London, 1936, p. 164-5
35. Quoted by Pratima Ghosh, Meerut Conspiracy Case & the Left-Wing in India, p. 47
36. वही, पृष्ठ 53
37. यह बिल सदन में बहस के लिए 21 मार्च को पेश किया गया। लेकिन अध्यक्ष ने उसे 2 अप्रैल, 1929 तक के लिए स्थगित कर दिया। 2 अप्रैल को उन्होंने निर्णय दिया कि चूँकि बिल का आधार और मेरठ षड्यन्त्र केस में अभियुक्तों के ख़िलाफ़ लगाये गये अभियोग एक जैसे हैं, इस स्थिति में बिल पर जो बहस होगी उससे अभियुक्तों के बचाव पर असर पड़ेगा। इन कारणों से उन्होंने बिल पर बहस की अनुमति नहीं दी। 4 अप्रैल को भारत सरकार ने उसे फिर सदन के सामने पेश किया और बहस की अनुमति माँगी। 11 अप्रैल को अध्यक्ष ने सरकार की अपील ठुकरा दी और अपना निर्णय बरक़रार रखा। 13 अप्रैल को वायसराय ने उसे अध्यादेश के रूप में लागू कर दिया।
38. Quoted by G. Adhikari in an article in Mainstream, April 29, 1981
39. G. Adhikari (ed.): Documents of the History of the Communist Party of India, Vol. II, p. 443
40. वही, पृष्ठ 442
41. वही, पृष्ठ 473
42. S.N. Mazumdar, op. Cit. p. 176
43. G. S. Deol, Sardar Bhagat Singh
44. वही, पृष्ठ 113
45. B

परिशिष्ट - दो

जयदेव के नाम पत्र

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
24 जुलाई, 1930

मेरे प्रिय जयदेव!

कृपया निम्नलिखित किताबें द्वारकानाथ पुस्तकालय से मेरे नाम पर जारी करवाकर शनिचरवार को कुलबीर के हाथ भेज देना :

मैटीरियेलिज़्म : कार्ल लीब्नेखत
व्हाईमैन फाइट - बी. रसेल
सोवियट्स एट वर्क
कोलेप्स ऑफ़ सेकिण्ड इण्टरनेशनल
लेफ़्ट विंग कम्युनिज़्म
म्यूचुअल एण्ड प्रिन्स क्रोपोटकिन
फ़ील्ड्स फ़ेक्ट्रीज एण्ड वर्कशाप्स
सिविल वार इन फ़्रांस : मार्क्स
लैण्ड रिवोल्यूशन इन एशिया, और
अप्टन सिंक्लेयर की 'स्पाई'

कृपया यदि हो सके तो मुझे एक और किताब भेजने का प्रबन्ध करना, जिसका नाम 'थ्योरी ऑफ़ हिस्टोरिकल मैटिरियेलिज़्म : बुख़ारिन' है। (यह पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी से मिल जायेगी)। और पुस्तकालयाध्यक्ष से यह मालूम करना कि कुछ किताबें क्या बोर्स्टल जेल में भेजी गयी हैं? उन्हें किताबों की बहुत ज़रूरत है। उन्होंने सुखदेव के भाई जयदेव के हाथों एक सूची भेजी थी, लेकिन उनको अभी तक किताबें नहीं मिलीं। अगर उनके (पुस्तकालय) पास कोई सूची न हो तो कृपया लाला फ़िरोज़चन्द से जानकारी ले लेना और उनकी पसन्द के अनुसार कुछ रोचक किताबें भेज देना। इस रविवार जब मैं वहाँ जाऊँ तो उनके पास किताबें

पहुँची हुई होनी चाहिए। कृपया यह काम किसी भी हालत में कर देना। इसके साथ ही डार्लिंग की 'पंजाब पेजेण्ट्री इन प्रॉसपैरिटी एण्ड डैट' और इसी तरह की एक-दो अन्य किताबें किसान समस्या पर डॉ. आलम के लिए भेज देना।

आशा है तुम इन कष्टों को ज़्यादा महसूस न करोगे। भविष्य के लिए तुम्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि तुम्हें कभी भी कोई कष्ट न दूँगा। सभी मित्रों को मेरी याद कहना और लज्जावती जी को मेरी ओर से अभिवादन। उम्मीद है कि अगर दत्त की बहन आयीं तो वे मुझसे मुलाक़ात करने का कष्ट करेंगी।

आदर के साथ,
भगतसिंह

---

* अपने बचपन के मित्र जयदेव के नाम भगतसिंह का यह पत्र किताबों की उनकी भूख का प्रमाण है। इनमें से अनेक किताबों के नोट्स इस नोटबुक में मिलते हैं जिससे पता चलता है कि ये उनतक पहुँच गई थीं। पत्र से यह भी पता चलता है कि भगतसिंह अपने साथियों के अध्ययन के बारे में भी सचेत थे और उसमें जेल से ही यथासम्भव मदद करने की कोशिश करते रहते थे।

• • •

सुधरी हुई राजनीतिक संस्थाएं, पूँजी और श्रम के बीच समझौता कराने वाली परिषदें, परोपकार और विशेषाधिकार जो पूँजीपतियों की खैरातों के अलावा और कुछ नहीं हैं—इनमें से कोई भी चीज उस सवाल का जवाब नहीं दे सकती जो मंदिरों, सत्ता के सिंहासनों और संसदों को कंपकंपा रहा है। जो लोग दबे-कुचले हैं, और जो उनकी पीठ पर सवार होकर आगे बढ़े हुए हैं, अब इन दोनों के बीच कोई अमन-चैन नहीं रह सकता। अब वर्गों का सिर्फ़ अन्त ही हो सकता है। जबतक पहले न्याय न हो, तब तक सद्भावना की बात करना अनर्गल प्रलाप है, और जबतक इस दुनिया का निर्माण करने वालों का अपनी मेहनत पर अधिकार न हो तब तक न्याय की बात करना बेकार है।

(नोटबुक से)

राहुल फाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN 978-81-87728-92-4
मूल्य : रु. 65.00

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2021

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिंगारी।
घर-घर तक चिंगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

तीन दशक से भी पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। अपने प्रदर्शनी वाहनों के माध्यम से भी जनचेतना कई राज्यों के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी, मराठी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइए, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिए।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

नयी

1. **पहला अध्यापक**/चिंगीज़ आइत्मातोव 50.00
2. **तरुणाई का तराना**/याङ मो ...
3. **तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ...
4. **माँ**/मक्सिम गोर्की 275.00
5. **वे तीन**/मक्सिम गोर्की 75.00
6. **मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की ...
7. **जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की ...
8. **मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की ...
9. **फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की 55.00
10. **अभागा**/मक्सिम गोर्की 40.00
11. **बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की 25.00
12. **असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई 260.00
13. **तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव (दो खण्डों में) 160.00
14. **गोदान**/प्रेमचन्द ...
15. **निर्मला**/प्रेमचन्द ...
16. **पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र ...
17. **चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र ...
18. **गृहदाह**/शरत्चन्द्र ...
19. **शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र ...
20. **इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का ...
21. **इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव ...
22. **दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव 70.00
23. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
24. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
25. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव 30.00
26. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
27. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
28. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
29. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00

30. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 70.00

31. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00

32. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00

2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

नयी 3. **इटली की कहानियाँ** 150.00

4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00

5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 200.00

6. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) 150.00

7. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 15.00

8. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** 10.00

अन्तोन चेख़व

9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00

10. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 150.00

11. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...

12. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00

13. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...

14. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00

15. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00

16. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00

17. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00

18. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00

19. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00

20. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00

21. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00

22. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00

23. **समय के पंख**/ कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...

24. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...

25. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00

26. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00

27. **दोन की कहानियाँ**/ मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00

28. **अब इन्साफ़ होने वाला है** (भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन) (ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/ स. **शकील सिद्दीक़ी** ...

29. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...

30. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/ मदन मोहन 35.00

कविताएँ

नयी 1. **कौन देखता है कौन दिखता**/लाल्टू 150.00
नयी 2. **अनिश्चय के गहरे धुएँ में**/
निर्मला गर्ग 100.00
3. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/
पाब्लो नेरूदा 60.00
4. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/
लैंग्सटन ह्यूज़ 60.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट** (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल) 130.00
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित)
6. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो**
(फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) ...
7. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ**
(राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
8. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/
हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
9. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
10. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/
होसे मारिया सिसों 25.00
11. **इन्तिफ़ादा :** फ़िलस्तीनी कविताएँ/
स. रामकृष्ण पाण्डेय 100.00
12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :**
फ़िलस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood
(Palestinian Poems) ...
13. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश 125.00
14. **समर तो शेष है...**
(इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
15. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00
16. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/
विष्णु खरे 60.00
17. **वाचाल दायरों से दूर**/मलय 125.00
18. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00
19. **देखते न देखते**/मलय 65.00
20. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00
21. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00
22. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...
23. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00
24. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00
25. **कविता का जीवन**/असद ज़ैदी 75.00
26. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00
27. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/
शशिप्रकाश 50.00
28. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00
29. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/
कात्यायनी 120.00
30. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 120.00
31. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी 150.00
32. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00
33. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00
34. **नगर में बर्बर**/कविता कृष्णपल्लवी 100.00
(अँधेरे समय की कुछ कविताएँ और कुछ क़िस्से)

35. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
36. **यह जो वक़्त है**/कपिलेश भोज 60.00
37. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/ नरेश चन्द्रकर 60.00
38. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
39. **तो**/शैलेय 75.00
40. **पानी है तो फूटेगो**/ राजेश सकलानी 100.00
41. **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ) 100.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00
3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/ अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/ व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/ निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री – विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच** (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य – विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00
5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**
   कात्यायनी, सत्यम 25.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

——::——

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/ पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/ भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़** स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक** भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए** एस. इरफ़ान हबीब 160.00 (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 25.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 25.00
4. **यश की धरोहर**/भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 100.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/ स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है** ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 80.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 100.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 30.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 20.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 20.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 20.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 25.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00
6. **मार्क्सवाद-लेनिनवाद और राष्ट्रीय प्रश्न** (एक बहस)/शिवानी, अभिनव 150.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 20.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00
3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की ...
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 10.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** ...
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 20.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 120.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह 150.00
19. **तीन कृषि विधेयक और मज़दूर वर्ग का नज़रिया**/अभिनव 40.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

एक प्रति : 5 रुपये

(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स ...
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र** मार्क्स-एंगेल्स 50.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उज़रती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/ कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/ कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
11. **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. **समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स ...
13. **पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन 15.00
14. **एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन ...
15. **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन 25.00
16. **समाजवाद और युद्ध**/लेनिन 20.00
17. **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन 30.00
18. **राज्य और क्रान्ति**/लेनिन ...
19. **सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन ...
20. **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन 15.00
21. **गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन 50.00
22. **मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन 20.00
23. **कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन ...
24. **क्या करें?**/लेनिन ...
25. **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन ...
26. **पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन 15.00
27. **जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन 70.00
28. **धर्म के बारे में**/लेनिन ...
29. **तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन 10.00
30. **मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ** जी. प्लेख़ानोव 30.00
31. **जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव 35.00
32. **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन 50.00
33. **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास** 90.00

34. **माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में) ...

35. **कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ ...

36. **सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/ माओ त्से-तुङ ...

37. **दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/ माओ त्से-तुङ 70.00

38. **कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़**/माओ त्से-तुङ 15.00

39. **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण** 50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

नयी

1. **दर्शन कोई रहस्य नहीं** 50.00
(जब किसानों ने अपने अध्ययन को व्यवहार में उतारा)

2. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** 300.00

3. **खुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00

4. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00

5. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00

6. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/ डी. रियाज़ानोव ...
(विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)

7. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ डेविड गेस्ट ...

8. **इतिहास ने जब करवट बदली**/ विलियम हिण्टन 25.00

9. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ वी. अदोरात्स्की 50.00

10. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन** अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00
(महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)

11. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00

2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन 40.00

3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/ राहुल सांकृत्यायन 65.00

4. **राहुल निबन्धावली**/ राहुल सांकृत्यायन 50.00

5. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/ गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/ गणेशशंकर विद्यार्थी ...
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता** राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 80.00
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** 35.00
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा** (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/ एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/ लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक ...
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ...

——::——

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1. **A Contribution to the Critique of Political Economy** …
2. **The Civil War in France** …
3. **The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte** 80.00
4. **Critique of the Gotha Programme** 50.00
5. **Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy** 25.00
6. **The Poverty of Philosophy** 80.00
7. **Wages, Price and Profit** 50.00
8. **Class Struggles in France** 50.00

FREDERICK ENGELS

9. **The Peasant War in Germany** 70.00
10. **Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy** 65.00
11. **On Capital** 80.00
12. **The Origin of the Family, Private Property and the State** 100.00
13. **Socialism: Utopian and Scientific** 60.00
14. **On Marx** 30.00
15. **Principles of Communism** 5.00

MARX and ENGELS

16. **Historical Writings** (Set of 2 Vols.) 700.00
17. **Manifesto of the Communist Party** 50.00
18. **Selected Letters** 75.00

V. I. LENIN

19. **Theory of Agrarian Question** 160.00
20. **The Collapse of the Second International** 25.00
21. **Imperialism, the Highest Stage of Capitalism** 80.00
22. **Materialism and Empirio-Criticism** 150.00
23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 50.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** …
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** 75.00
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 75.00

30. **One Step Forward, Two Steps Back** …
31. **The State and Revolution** 80.00

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat,** ***Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat:** ***Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** …

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 60.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** …
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 70.00
40. **The Essential Stalin** … *Major Theoretical Writings 1905–52* (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** 30.00

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 80.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00
45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** …
46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** …

OTHER MARXISM

1. **Political Economy,** ***Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 375.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 150.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/ *Howard Selsam & Harry Martel* …
4. **Socialism and Ethics**/ *Howard Selsam* …
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)/*Howard Selsam* 100.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics**/*Maurice Cornforth* 70.00

George Thomson

7. **From Marx to Mao Tse-tung** 120.00
8. **Capitalism and After** 100.00
9. **The Human Essence** 80.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions**/*Bob Avakian* …
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00

12. **The Lessons of the Paris Commune**/*Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

13. **Subversive Interventions** (An Anthology) *Abhinav Sinha* 500.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) …
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov 150.00
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* 80.00

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle Red Papers 7** 175.00
2. **Preface of Class Struggles in the USSR**/*Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University *William Hinton* …
2. **The Cultural Revolution at Peking University**/*Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** *William Hinton* 50.00
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* 50.00

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 *Joshua S. Horn* 125.00
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China / *Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* …
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) …

ON THE CASTE QUESTION

1. **On the Caste Question: Towards a Marxist Understanding** *Abhinav Sinha* 200.00
2. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint /** Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 30.00
2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism? /** *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?** 20.00
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality /** *Alok Ranjan* 20.00

"The books that help you most are those which make you think the most. The hardest way of learning is that of easy reading; but a great book that comes from a great thinker is a ship of thought, deep freighted with truth and beauty."

– Pablo Neruda

BIGUL REPRINT SERIES

1.	**Still Ablaze is the Torch of October Revolution**	30.00
2.	**Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan	75.00

WOMEN QUESTION

1.	**The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin*	100.00
2.	**Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** / *Mary Lou Greenberg*	50.00

MISCELLANEOUS

1.	**Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin*	…
2.	**An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin*	20.00

The Anvil

A Journal of Marxist Theory

Editor: Shashi Prakash

Editorial Office

69 A-1, Baba ka Purwa
Paper Mill Road, Nishatgunj, Lucknow 226 006, India
Phone: 9560130890, Email: editor.anvil@gmail.com

Website: http://anvilmag.in

FB: facebook.com/anvilmag

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलन: निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलन: दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद** (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना इन पुस्तकों की भी मुख्य वितरक है

1. **बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (मार्क्स की 'पूँजी' पर आधाारित पाठ)**/रंगनायकम्मा 120.00
2. **घरेलू काम और बाहरी काम**/रंगनायकम्मा 40.00
3. **For the Solution of the 'Caste' Question, Buddha is not enough, Ambedkar is not enough either, Marx is a must**/Ranganayakamma 100.00
4. **Economics for Children [Lessons based on Marx's 'Capital']**/Ranganayakamma 150.00
5. **Household Work and Outside Work** 60.00

अनुराग ट्रस्ट

1. **बच्चों के लेनिन** 35.00
2. **Stories About Lenin** 35.00
3. **सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर 25.00
4. **औज़ारों की कहानियाँ** 20.00
5. **गुड़ की डली** /कात्यायनी 20.00
6. **फूल कुण्डलाकार क्यों होते हैं**/सनी 20.00
7. **धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव ...
8. **कज़ाकी**/प्रेमचन्द 35.00
9. **नीला प्याला**/अरकादी गैदार 40.00
10. **गड़रिये की कहानियाँ**/ क़यूम तंगरीकुलीयेव 35.00
11. **चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/ अ. मित्यायेव 35.00
12. **अन्धविश्वासी शेकी टेल**/ सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
13. **चलता-फिरता हैट**/ एन. नोसोव, होल्कर पुक्क 20.00
14. **चालाक लोमड़ी** (लोककथा) 20.00
15. **दियांका-टॉमचिक** 20.00
16. **गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
17. **गुफ़ा मानवों की कहानियाँ**/ मैरी मार्स 20.00
18. **हम सूरज को देख सकते हैं**/ मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच 20.00
19. **मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
20. **नन्हे आर्थर का सूरज**/ हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा 20.00
21. **आकाश में मौज-मस्ती**/ चिनुआ अचेबे 20.00
22. **ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन 40.00
23. **एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की 20.00
24. **बहादुर**/अमरकान्त 15.00
25. **बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/ शस्या हर्ष ...
26. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/ मक्सिम गोर्की 10.00
27. **नन्हा राजकुमार**/ आतुआन द सैंतेक्यूपेरी 40.00
28. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/ मक्सिम गोर्की 30.00
29. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/ मक्सिम गोर्की 15.00
30. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
32. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
33. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
34. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00

35. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
36. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
37. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
38. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
39. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
40. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
41. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
42. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
43. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
44. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
45. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
46. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
47. **उल्टा दरख़्त**/कृशनचन्दर 35.00
48. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
49. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
50. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी 30.00
51. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
52. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
53. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
54. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00
55. **हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक 25.00
56. **घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव 10.00
57. **बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव 20.00
58. **मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन 35.00
59. **पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की 20.00
60. **कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय 30.00
61. **मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव 30.00
62. **सदानन्द की छोटी दुनिया**/ सत्यजीत राय 15.00
63. **छत पर फँस गया बिल्ला**/ विताउते जिलिन्सकाइते 35.00
64. **गोलू के कारनामे**/रामबाबू 25.00
65. **दो साहसिक कहानियाँ**/ होल्गर पुक्क 15.00
66. **आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क 20.00
67. **कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क 20.00
68. **रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क 20.00
69. **अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क ...
70. **नये ज़माने की परीकथाएँ**/ होल्गर पुक्क 25.00
71. **किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/ मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन 15.00
72. **पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन) / कमला पाण्डेय 30.00
73. **यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण) / कमला पाण्डेय 100.00
74. **हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ) / कमला पाण्डेय 60.00
75. **कालमन्थन** (उपन्यास) / कमला पाण्डेय 60.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन: 9936650658, 8853093555

वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com

वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय

बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094

ईमेल : ahwan@ahwanmag.com, ahwan.editor@gmail.com

वेबसाइट : ahwanmag.com

फ़ेसबुक : facebook.com/muktikamiahwan

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!
(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास और **ऐरण प्रकाशन** की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्रोतों - सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और देशी-विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

हमसे पुस्तकें मँगाने के लिए इन बातों का ध्यान रखें

- प्रत्येक पत्र तथा आदेश-पत्र पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) और फ़ोन नम्बर साफ़-साफ़ लिखें।
- मनीऑर्डर के पीछे सन्देश वाले स्थान पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) साफ़-साफ़ ज़रूर लिखें।
- चेक/ड्राफ़्ट 'जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति' (JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI) के नाम से लखनऊ में देय भेजें। बैंक खाते की जानकारी :
  खाता सं. 0762002109003796
  पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज, लखनऊ
  IFSC: PUNB0076200
- पुस्तकों पर डाक-व्यय तथा रेल या ट्रांसपोर्ट का भाड़ा अलग से देय होगा।
- पुस्तक विक्रेताओं तथा वितरकों द्वारा पुस्तकें मँगाने की शर्तों के लिए हमसे पत्र, ईमेल अथवा फ़ोन से सम्पर्क करें।

जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति द्वारा संचालित